युग-परिवर्तन

श्रीमान् कृष्णलालजी गोयनका

ही उदार आश्रय से यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है।

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम् ।
सञ्जीवयत्यखिल शक्तिधरः स्वधाम्नाम् ॥
अन्यांश्च हस्तचरण श्रवण त्वगादीन ।
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१॥

प्रतिज्ञापत्र ।

(१) ईश्वरकी प्रेरणासे उद्भूत वेद, आरण्यक ब्राह्मण तथा श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और स्मृति, धर्मशास्त्र, उपनिषद् व भारत, पुराण आदि समस्त आर्य ग्रंथोंकी तात्त्विक बातों व आज्ञाओंको शिरोधार्य करके,

(२) यह पवित्र भारतभूमि हमारे पूर्वाचार्य, ऋषि, महर्षियोंकी जन्मभूमि है। आज संसारमें मानव जातिमात्रके अद्वितीय हितकारक वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है। और यहाँ के परिशोधित बारह हजार वर्ष के चतुर्युग के प्राकृतिक लक्षण इतिहास अनुसार भारतही नहीं सारे संसारमें दृष्टि गोचर होरहे हैं, तब अब ऋतु परिवर्तन के अनुसार वास्तवमें युग परिवर्तन होगया। ऐसे अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे इस विषयको छान करके,

(३) संवत् ७८१ से कलियुगका आरंभ होनेपर इन बारहसौ वर्षोंमें विधर्मियोंके अत्याचारोंसे कर्तव्य विमूढ हो, इस युगको चिरस्थायी मानकर, उसमें शुरू की हुई कलिवर्ज्य प्रकरणोक्त बातोंके आचरण से देश समाज एवं चातुर्वर्ण जातिमात्रका जो अध पतन हुआ और हो रहा है; किंतु अब संवत् १९८१ से यह कलियुग समाप्त हो चुका अब सतयुगकी संधिका आरंभ होने परभी हमें वही मरियल कलिकल्पनाका कायम रखना योग्य नहीं ? इस तरह युगधर्मसे प्रेरित होके,

(४) कलियुगके बहाने लाखों वर्ष बीतनेतक कलिवर्ज्यकी दुर्व्यवस्थाओंको रचकर मानव जातिका जीवनप्राण सनातन धर्मको उलट पुलट एवं उसे खाकमें मिलाने वाले स्वार्थ सेवियोंकी अन्याय, अपहार, छल, ठगविद्या, विडंबना आदि धधकती हुई लपटोंसे सनातन धर्म और मातृभूमिको बचाना यह प्रत्येक भारतीयका ही नहीं वरन मानव जातिमात्रका परम कर्तव्य है। ऐसा समझके,

(५) जिस कलिवर्ज्य प्रकरणके कारण देशके अन्दर (करोडों) अनाथ, गरीब, निराश्रित बालक जन्मभर अविवाहित और विधुर अवस्थाही में नाना दुःखोंको सहनकर अपने जीवनको स्वाहा कररहे हैं। उनकी आहभरी सम वेदनासे भारत को व्यथित देख कर,

(६) जिस कलि कल्पना की ओटमें स्त्रीशिक्षण और स्त्री स्वातंत्र्य का अपहार किया जाने से देश की लाखों करोडों अबलाओं के अधिकार हीन दुरवस्थाओं से एवं विधवाओं के करुणा क्रंदन से भारत माता को दुःखित देख कर,

(७) इसी कलियुग में साम्प्रदायिक आपसी फूटने चातुर्वर्ण्य को छिन्न विछिन्न कर अनेकानेक जाति पांति के खानपान और बेटी व्यवहार के तथा

स्पर्शास्पर्श आदि नानाप्रकार के खण्ड खण्ड बना, उनके परस्पर में झगडे आरंभ करके स्मृति प्रोक्त गुण कर्मानुसार जाति के उत्कर्षापकर्ष की जाति भेद व बहिष्कार की सूली पर लटकाए रखने के फल स्वरूप में आज है हिन्दू धर्मान्तर में त्यागे गए। इस असह्य पीड़ा से तिलमला कर,

(८) हमारा देश, हमारी भाषा, हमारा झण्डा, हमारी स्वातंत्र्यता को हमारा राष्ट्रीयत्व नहीं इस निर्बलतासे भारत माताके नेत्रसे टपकनेवाले आंसुओंकी करुणासे आर्द्रीभूत हृदय होकर,

(९) स्वातंत्र्य सुख और धर्म, अर्थ और कामके उपभोगके लिये, यानी परम कल्याणकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। किंतु कलि कल्पित बन्धकी शृंखलाओंसे जकडे हुये भारतको हाथ पर हाथ दिये बैठनेसे मुक्त नहीं कर सकने ऐसी नितांत आवश्यकता को देख कर।

(१०) वेदकालीन आदर्श और गंभीर ऐसी समुज्ज्वल एवं पवित्र संस्कृति का अभ्युत्थान किए बिना हमारी ही नहीं, बल्कि मानव जाति की समुन्नति नहीं होसकती ऐसे सामयिक कर्तव्य को यादकर,

(११) ईश्वरसे प्राप्तहुये साक्षात्कार और संकेत के बलपर मिलाईहुई तथा ऐतिहासिक प्रमाणोंद्वारा प्रकटमें आई हुई 'कलियुग बीतकर अब सतयुग का आरंभ होगया' इस कल्पना को शास्त्रीय कसौटी पर कसे हुये शोध [खोज] से यदि मैंने संसारको सचेत नहीं किया तो सर्वान्तर्यामी परमेश्वर का मैं अक्षम्य अपराधी समझा जाऊंगा। आदि बातोंको अच्छी तरह सोच विचार कर,

मैं संसारके समस्त विद्वानोंको विनम्र भावसे कर जोड़, प्रार्थनारूपमें निवेदन करता हूं कि—"अनर्थकारी कलियुगी ग्रहण का अब मोक्ष होगया है और सतयुग की किरणें तथा सतयुग के पूर्व संधीकी छटा आरंभ होगई है, इसलिए सतयुगी धर्म याने सनातन वैदिक धर्म स्वीकारनेमें ही सबोंका कल्याण है। और इसी सिद्धान्त पर आरूढ होना मानव जातिमात्रका परम एवं आदिका धर्म है। और इसी तरह मेरे परम पूज्य पिता का सदुपदेश है। अतः मैं प्रतिज्ञापूर्वक सतयुगकी प्रतिष्ठा और शुद्धांतःकरणसे उसकी स्थापना करता हूं। इससे आशाही नहीं किन्तु मुझे अखण्ड विश्वास है कि सर्वव्यापी आत्मतत्व का कल्याण चाहने वाली, सब मनुष्योंके अन्तर्गर्भित आत्माः इसी सत्ययुगीन तत्वमें मिलकर धीरे धीरे परमात्म तत्वमें प्रकल्पित होगी और इसीकेद्वारा ही संसारमें अद्भुत और अलौकिक ऐसी निरंतर कल्याण की प्राप्ति और सिद्धि होगी।

भवदीय—

युग-परिवर्तन में सूचित एक आत्मा

गोपीनाथ शास्त्री चुलैट (गौड़)

कालः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ॥
उत्तिष्ठन्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
(ऐतरेय ब्राह्मण)

विषय-सूची ।

अनुक्रम नंबर	विषय	पृष्ठ
१	युगों के विषय में विद्वानों के मत ।	१
२	युग शब्दका पूर्व रूप ।	७
३	युगोंके भेद ।	८
४	युग-भेद उद्देश्य और अर्थ ।	१२
५	मूल युगमान ।	१३
६	स्थिति पर युगका तौल ।	१६
७	युगोंके संबन्धमें भीष्मका उपदेश	१७
८	कृतयुगारंभकी पहिचान ।	२०
९	भागवत पुराण में युग व्यवस्था ।	२०
१०	सत्ययुग में सत्य और ज्ञान की क्रांति ।	२३
११	वैदिक पंचांग और युग-पद्धतिपर आक्षेप ।	२७
१२	वैदिक पंचांगोंका स्वरूप ।	३१
१३	वैदिक पंचांगो की रचना ।	३३
१४	नक्षत्र और देवताओंसे महीनोंके वैदिक नाम ।	४४
१५	वेदोक्त देवताओंका क्रम और नाम ।	४६
१६	ज्योतिर्गोलके सत्ताईस देवताओंका मण्डल ।	४८
१७	वैदिक पंचांगोंकी रचना ।	५१

अनुक्रम नंबर	विषय	पृष्ठ
१८	सतयुग के कुछ लक्षण ।	६९
१९	त्रेतायुग के कुछ लक्षण ।	७०
२०	द्वापर युग के कुछ लक्षण ।	७१
२१	कलि युग के कुछ लक्षण ।	७१
२२	सतयुग कैसे ?	७२
२३	युगारंभ और कल्पारंभ कालका दिग्दर्शन ।	७२
२४	महाभारत और कलियुग ।	८५
२५	पुराणोंमें कलियुग के प्रमादसे घुसी हुई प्रक्षिप्त लीला ।	९१
२६	अट्ठाईसवें कलिका आरंभ काल ।	९७
२७	कृतयुग के संधिका आरंभ ।	१०४
२८	वेदोंमें विश्वके उत्पत्ति का प्रकार ।	११०
२९	मन्वंतरावतार और वर्ष संख्या ।	११३
३०	कृतयुग की आरंभ संधि ।	११५
३१	कृतयुगारंभ मुख्य युग ।	११६
३२	कृतयुग की अंतिम संधि ।	११७
३३	त्रेतायुग की आरंभ संधि ।	११८
३४	त्रेतायुगारंभ मुख्य युग ।	११९
[illegible]	[illegible] तिम संधि ।	१२०

अनुक्रम नंबर	विषय	पृष्ठ
३६	द्वापरयुग की आरंभ संधि ।	१२१
३७	द्वापर युगारंभ मुख्य युग ।	१२२
३८	द्वापरयुग की अंतिम संधि ।	१२३
३९	कलियुग की आरंभ संधि ।	१२४
४०	कलि युगारंभ मुख्य युग ।	१२५
४१	कलियुग की अंतिम संधि ।	१२६
४२	युगानुकूल मनुष्योंकी आयुष्य ।	१२८
४३	श्रीरामचद्रके [वंशवृक्ष] गण ।	१३४
४४	संकल्प बदलो !!!	१३७
४५	सतयुग विरोधी मण्डल ।	१३८
४६	कलियुग को हटानेका पहिला प्रयत्न ।	१३९
४७	प्रलापका परिणाम	१४१
४८	वैदिक परंपरामें परिवर्तन ।	१४२
४९	विषयान्तर और प्रक्षिप्त लीला ।	१४३
५०	कलिवर्ज्य प्रकरण स्मृति बाह्य है ।	१४५
५१	कलिवर्ज्य प्रकरण की निराधारता ।	१४७
५२	विवाहकी पुरानी आदर्शता ।	१५५
५३	मुख्य कन्यादान है ! या पाणिग्रहण ?	१५६

अनुक्रम नंबर	विषय	पृष्ठ
५४	क्षणभर भी अनाश्रमी मत रहो।	१६०
५५	विधवाको सिवा गृहस्थाश्रमके दूसरा आश्रम नहीं।	१६४
५६	गृहस्थाश्रम धर्महो मुख्य है।	१६७
५७	पुनर्विवाह की प्राचीन प्रणाली।	१७१
५८	कलि कृपासे वैवाहिक प्रथामें हेर-फेर।	१७२
५९	स्त्री की स्वतंत्रताका संहार।	१७५
६०	स्त्रियोंके अधिकारों में विक्षेप।	१७९
६१	स्त्रियोंमें नैसर्गिक शुद्धताका एक लक्षण।	१८०
६२	चातुर्वर्ण्य में कलियुगके किये हुए उत्पात।	१८३
६३	क्या? वैदिक कालमें पशु हिंसा थी।	१९०
६४	वेदार्थ के संबंध में नया आविष्कार।	१९३
६५	ब्राह्मणोंपर भी कलिकी वक्र दृष्टि।	१९६
६६	वैदिक कालमें जात्युत्कर्ष।	१९९
६७	सतयुग संधिका कुछ परिचय।	२०३
६८	युग-परिवर्तन यही है।	२०५
६९	युग-परिवर्तन की प्रत्यक्षता में अभीका एक ताजा नमूना।	२०७
७०	भविष्यत् में ज्ञान क्रांति क्या होगी?	२०९
७१	अंतिम निवेदन।	२१४

प्रस्तावना।
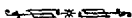
प्रधान कारण तो यही है—

१ उन्नति के शिखर पर चढने के लिए हम लोग कमर कसकर ज्योंही तयार होते हैं त्योंही, यह दृश्य दृष्टि सम्मुख एक दम उपस्थित हो जाता है कि "यह तो कलियुग है; इसम अन्याय, अत्याचार, छल कपट झूँट होनेही वाला है" फिर ऐसी मरियल एवं मुड़दाड़ भावनासे कई धुरंधर पुरुषभी हतोत्साही बन जाता है और उसकी आगेकी भवितव्य गति कुंठित हो जाती है।

२ यही कारण है कि जो भी कुछ हम आगे बढना चाहते हैं; वैसे ही हतोत्साही वृत्तिके तुषार उछल कर उसके सिद्धिमय द्वारोंको खटाखट बन्द कर देते हैं। जैसे किसीने पृथ्वी प्रदक्षिणा का विचार किया कि वह कलियुगमें बन्द। समुद्र यात्रा के लिए तैयारी की तो वह भी कलियुगमें बन्द। दीर्घ काल (पचीस तीस वर्षकी अवस्था का) ब्रह्मचर्य के लिए तैयारी की तो वह भी कलियुग में बन्द! दूर देशकी यात्रा करना हो तो वह भी बन्द! देह पतन तक किसी चीजका आविष्कार करनेमें मौका आजाय तो वह भी बन्द। मानव जाति मात्रको वेद पढने पढाने का अधिकार भी बन्द। कहांतक कहें इसकी परम सीमा यहांतक बढ गई है कि आजकल के विद्वानोंके बनाये निबंध-पुस्तक-संग्रह आदिकी बातें प्रमाण। और पुराने वेद वेदान्त, आरण्यक, ब्राह्मण, श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र आदि पुराने ग्रंथोंकी आज्ञा भी बन्द! क्योंकि वहभी युगांतर विषय कहकर टरका दी जाती हैं। आईये प्रिय पाठक! आज आपको इस युगी संसारसे परिचित करता हूँ।

३ समस्त पृथ्वी भरमें नहीं, वह भी एक केवल भारत वर्ष में। वैसेही भारत भर की तमाम जाति भी नहीं, वह भी केवल एक हिंदू जातिमात्र के किस्मत में; अधोगतिकी ओर खींचनेका युक्ति प्रपंच जो कलियुग के नाम धार्मिक मामलोंमें किया गया है उसका प्रधान कारण पकडमें आ गया?

४ आधुनिक कई ग्रंथकारों और निबंधकारोंने कलियुग को जितना बदनाम किया है उतना वह खोटा नहीं है। वास्तव में वह एक भारतीय हिन्दू जातिके साथ अप्रत्यक्ष रूपसे अपने मतलब साधने के लिए मुगल लोगोंकी खेली हुई चालबाजी है। क्योंकि कलियुग के बहाने उन्होंने अपने आश्रित निबंधकारों द्वारा इसे ऐसे भूतका जामा पहिनाया, कि जिनके भयसे हम उन्नति मार्ग पर पांव ही नहीं रख सकते फिर चलना तो दूर ही रहा! थोडेसेमें इतनाही कथन

पर्याप्त है कि ज्ञानकी उत्क्रांति और अपक्रांति वास्तवमें युगानुसारही हुआ करती है। इसके अलावा जो धार्मिक बंधनोंसे कलियुग का नाता जोड़ा है। जैसे 'कलिवर्ज्य प्रकरण' की जो उत्पत्ति हुई है सो सबकी सब आधुनिक निबंधकारोंकी है, परंपरागत नहीं! यह हम स्पष्ट करके दिखाते हैं। अतः इसके उत्पत्तिकी ओर दृष्टि फेरिये।

५ आज भारत वर्षके घर घर और कोने कोने में कलियुगकी महिमा दृढ हो रही है। क्या बालक क्या बूढा, क्या साधु क्या संत, क्या शास्त्री क्या पंडित, क्या ज्ञानी क्या विज्ञानी, सब लोग कलियुग ही कलियुग कहते हैं। पुराण वाचक भी नित्यप्रति पुराणों और मंदिरोंमें कलियुग की महिमा ही के गीत गाते हैं। कहां तक कहाजाय स्वतः मैं भी " सत युगी साक्षात्कार " संकेत होने के पूर्व तक पुराण वाचनके समय कलियुगी महिमा ही बांचकर सुनाया करता था।

६ क्यों कि कलियुगी ग्रंथकार व टीकाकारोंने इस कलिमें आपद्धर्म बतलाते हुए वर्जित की हुई बातों को धर्म के स्वरुपमें ऐसी रंग दी है, कि हिन्दू-धर्म शास्त्र में वे सब संमीलित होगई। यहां तक कि वे दाय भाग व स्त्रियों के स्वत्वापहार आदिमें स्मृति ग्रंथ व मिताक्षरा टीका को भी काटकर एक विशेष रूपसे समझे जाने लगी हैं। इस में फर्क इतना ही है कि आजसे करीब १०० वर्ष पहिले ये बातें अदालत एवं न्यायालयों में पूर्ण रीतसे मान्य होती थी। किंतु सांप्रतमें उनमें की कुछ कुछ बातोंकी पोल खुल जानेसे वर्तमानमें वे निरर्थक सी होगई हैं। तो भी अभीतक कई बातें कानून से हटा नहीं हैं।

७ इन कलि धर्मियोंका कहना है कि—

" यस्तु कार्ते युगो धर्मो न कर्तव्यः कलौ युगे ॥
पापप्रयुक्ताश्च सदा कलौ नार्यो नरास्तथा ॥ १ ॥
विहितान्यपि कर्माणि धर्म लोप भया द्बुधैः ॥
समापने निवृत्तानि साध्वभावा कलौ युगे ॥ २ ॥ "

(निर्णयसिंधु की टीका से संगृहीत.)

अर्थात्— " जो सत युगका धर्म है वह कलियुगमें नहीं करना चाहिये क्यों कि कलियुग में संपूर्ण नर नारी सदा पाप युक्त रहते हैं ॥ १ ॥ इस लिये ' धर्म शास्त्रोक्त कार्यभी धर्म लोपके भय से इस समय नहीं करने चाहिये ' ऐसा विद्वानोंने योग्य समय के अभाव से कालियुगमें विहित [अच्छे] कामभी बंद कर दिये हैं ॥ २ ॥ बस इस प्रकार के कोटीक्रम लगाकर नीचे लिखे अनुसार एक कलिवर्ज्य प्रकरण गत हजार बारासौ वर्ष में खड़ा किया गया है।

वैदिक सनातन धर्मकी तोड़ मरोड़
और
कृत्रिम कलिवर्ज वार्तोंका प्रचार ।

१ हिन्दू जाति में कोई उच्च व्यवसाई न होने पावे, इस गरज से समुद्र यात्रा बन्द ।
२ अन्यान्य देशों के व्यवसायियोंका परस्परमें संहर्ष न होस के इस लिये दूर देशकी यात्रा बन्द ।
३ किसी भी प्रकार गृहस्थी बनकर वंशवृद्धि न हो इस, लिये अन्य जाति वालों के साथ विवाह बन्द ।
४ गृह-वंश समस्त नष्ट होजाय इस लिये देवर से संतति प्राप्त करना बंद ।
५ सदाके लिये हत वीर्य बने रहें इस लिए अधिक कालतक [पचीस वर्ष तकका] ब्रह्मचर्याश्रम बंद। ऐसेही वानप्रस्थ और सन्यासाश्रमभी बन्द।
६ प्रजोत्पत्ति शून्य बनने के लिए पुनर्विवाह बन्द ।
७ गुरुके पास चिकित्सक बुद्धिसे तर्क वितर्क करना बन्द ।
८ किसी आविष्कार या शरीर पतन तक शोध करना बन्द ।
९ आशौच मर्यादा मूलमें तीन दिनकी समझना बन्द ।
१० विधवा स्त्रियाँ भ्रस्त होकर अन्य धर्मियों-पाखंडियों सण्डे मुसण्डे को यथेच्छ मिलसके इस गरज से प्रौढ विवाह, विधवा विवाह, क्षत योनि विवाह, या अक्षत योनि बाल विधवा विवाह का करना भी बन्द । पति के नष्ट होने पर या संन्यासी, नपुंसक और निरपराध हठी और उन्मादसे पतिका त्याग करने पर भी अन्यसे विवाह बन्द ।
११ बलात्कार से अपहरण की हुई स्त्री को शुद्ध कर के जातिमें लेना बन्द।
१२ गुरु पत्नि [माता] के पास शिष्यका रहना बन्द ।
१३ स्त्रियों को उपनयन और वेद विद्याधिकार बन्द ।
१४ पुत्रों के समान स्त्रियों का दाय-भाग व स्त्री स्वातंत्र्य बन्द ।
१५ बवर्ची-खानसामा-रसोईया आदि सेवापदी कार्यों के गोरख धंधों मे ब्राह्मण सरीखी कौम सदा के लिए लगी रहे, इस लिए शूद्रोंका रसोई बनाना बन्द ।
१६ संन्यासी या यती को किसी भी वर्ण की अन्न भिक्षा का स्वीकार बन्द ।
१७ एक दिन कार्भी धान्य संग्रह करना भिक्षुकों के लिए बन्द ।

१८ सिर्फ एक दिन में वेद पाठी की आशौच शुद्धि बन्द।
१९ सुनार-दरजी व निषाद आदि का यज्ञाधिकार व पढना पढाना बन्द।
२० निपुत्रिक का तमाम द्रव्य राजगामी या झगडे उपस्थित होकर धूर्त गामी हो, इस लिए दत्तक के सिवा शास्त्रोक्त दश प्रकार के पुत्र बन्द।
२१ गुरु की इच्छानुसार गुरु दक्षिणा देना बन्द।
२२ प्रायश्चित देकर भी बहिष्कृत को शुद्ध करना बन्द
२३ पृथ्वी प्रदक्षिणा करना सदा के लिए बन्द।
२४ पतित किये स्त्री और पुरुषोंका उद्धार करना बन्द।
२५ सुरापानादि महा पातक में ब्राम्हण को मरणांत द्वादशाब्द कल्प प्रायश्चित्त करना बन्द। साथमें शुद्ध कर के उसका उद्धार करना बन्द।
२६ पराशर स्मृति के अलावा अन्य स्मृतियों की आज्ञा मानना बन्द।

८ आदि बातें ही बन्द करकर नहीं डटे है। इसके अलावा और बहुतसी बातों में उथल पुथल की है; पाठक इधर अवश्य ध्यान दें।

९ वर्णाश्रम धर्म को लोप करने और सभी को शूद्र प्राय बनाने के लिए नीचे लिखे प्रकार का जो बहुतसा युक्ति प्रपंच लगाया गया है × कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनमें तीन वर्ण द्विज हैं। यह स्थिति युगानु युग तक चली आ रही थी लेकिन कलियुग में क्षत्रिय और वैश्य वर्ण नष्ट हो जाने से अब सिर्फ ब्राह्मण और शूद्र ये दोही वर्ण शेष रह गये हैं।

१० इनके अलावा स्त्रियाँ शूद्र समान, साधु संत शूद्र समान, परभू कायस्थ कुण्ड-गोलक आदि संकर जातिके लोग शूद्र समान।^ कहांतक बताऊँ आगे जाकर आप कह रहे हैं कि कला कौशल्य और व्यापार धंदा नौकरी करनेवाले समस्त जातिमात्र वर्ण संकर हे। इतना ही नहीं आगे यह स्पष्ट कर रहे हैं कि ब्राह्मण होकर भी जो व्रात्य (संस्कार हीन) है वे सब के सब शूद्रकेसमान हैं।

११ शूद्र बनाने का बाजार अभी इतनेही में ठंडा नहीं हुआ और आगे चलकर देखिये यहां पथ्थर और कोयलोंकी खदानोंके प्रदेशोंके सदश जिन देशोंमें 'व्रात्य' नामक ब्राह्मण पैदा होते है, उनका भी कलिधर्मियोंने पता लगा कर

× ब्राह्मण क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णा स्त्रयो द्विजा ॥
युगे युगे स्थिता सर्वे कलावाद्यन्तयो स्थिति ॥
(शूद्र कमलाकर प्र ४)

^ " स्त्रिय शूद्र समाः। प्रव्रज्याः शूद्र समाः। परभू कायस्थ कुण्ड गोलका दयः संकरजा शूद्र समा। कला कौशल्य व्यवसायिन सर्वे संकरजा। व्रात्याश्च शूद्र समा।"
(शूद्र कमलाकर प्र ४)

पुराणादिकों मे तत्प्रतिपादक श्लोक प्रक्षिप्त करके जोड दिए हैं। + और उन्हें भी शूद्र बना दिया है।

१२ इसके अलावा तंजावर, कच्छ, मद्रास, चीन नेपाल, भूतान, द्रविड, केरल देश, कोंकणपट्टी, कर्नाटक, अभीर (खानदेश व नर्मदा तीरका प्रदेश) कलिंग, अंग, बंग, सौराष्ट्र, गुर्जर अवंतिका, मगध, अर्थात् प्रायः समस्त भारत वर्षके उपरोक्त देशोंमे जितने ब्राह्मण पैदा होते है वे सब व्रात्य अर्थात् शूद्र के समान होते है। और अन्य देशवासी असल ब्राह्मण भी उपरोक्त देशोंमे जानेमात्रसे व्रात्य यानी शूद्र तुल्य हो जाते है। इसलिए उनका फिरसे पुनः उपनयन संस्कार करना चाहिये। यानी श्राद्धादि भोजन पंक्तिमें उक्त ब्राह्मणोंको अपांक्तेय कहा है। क्योंकि यह सब शूद्र समान है। यह हुई ब्राह्मणोंकी बात

१३ अब स्त्रियोंकी तो इससे भी बढी चढी बात है। जिस स्त्री को संतान न हुई वह वृषली, संतति होकर न बचे तो वह वृषली, और विवाहके पहिले जो कन्या रजस्वला होजाय सो भी वृषली यानी शूद्र रूप हो जाती है।

१४ पहिले समस्त स्त्रियोंको शूद्र तुल्य कह कर उनसे विवाह करने वाले को शूद्रपति नहीं कहते थे किंतु उपरोक्त तीनों 'वृषली' संज्ञक स्त्रियोंमेसे तीसरी से ब्राह्मणने विवाह नहीं करना चाहिय। तथा वंध्या व मृत प्रजाको त्याग देना चाहिये। जो ब्राह्मण यों न करे तो उस वृषली पतिको जाति बाहर करके उससे भाषण तक नहीं करना ऐसा लिखा है।

१५ इस करतूतसे भी समस्त आर्यावर्तके मानव जाति मात्रोंका शूद्रत्व सिद्ध न होता देख कर पंक्ति बाह्यके कई तरीके निकाले शोधितस्यापि संग्रहः कलौवर्ज्यः यानी प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध किए हुए का भी कलिमें संग्रह करना

+ सौराष्ट्रा ऽऽवन्त्या ऽऽभीराश्च शूद्रा अर्बुद मालवाः।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्र प्राया जना धिपाः ॥ ३६
सिंधोस्तटं चंद्रभागा कौन्तीं काश्मीर मण्डलम्।
भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चा ब्रह्मवर्चसः ॥ ३७

(श्रीमद् भागवत पुराण स्कंध १२ अ. २)

सौराष्ट्र सिंधु सौवीरानावंत्या दक्षिणा पथम्।
एतान्देशान द्विजो गत्वा पुन संस्कार महंति ॥ १ ॥
सिंधु सौवीर सौराष्ट्रां स्तथा प्रत्यन्त वासिनः
अंगवंग कलिंगां आन्ध्र गत्वा संस्कार मर्हति ॥ २

(निर्णय सिंधु पुनरुपनयन निरूपण)

त्रिशङ्कुर् बर्बरा नन्ध्रां—

(इसीके पृष्ट १९० में देखें)

वर्ज्य है। इसलिए एक बार भी पंक्ति बाह्य किये हुए की गणना शूद्रमेंही हो जाती है।

१६ अब जरा पंक्ति बाह्योंकी भी कतार देखिये-समुद्र यात्री, राजकर्मचारी, उपाध्याय, नौकर, औषध तयार करने वाला, चिकित्सक वैद्य, शस्त्रवैद्य, नक्षत्रोपजीवी, फलित ज्योतिषी, गायक, लेखक, चित्रकार, व्याजबट्टा लेने वाला और देने वाला, तनख्वा लेकर वेद पढाने वाला, छन्द और कविता करने वाला, पुजारी मंत्रानुष्ठान करने वाला, बालकोंका अध्यापक, शिल्पज्ञ, शास्त्री, शूद्र याजक जटाधारी, व्यापारी, विधुर, व्यभिचारिणी पति, हीनांगी, अधिकांगी, तिरस्रिक, रस विक्रेता, पुराण पाठक, शास्त्रोपदेशक, व्याख्यान दाता, कृषिसे उपजीविका करने वाला, किसान, वृक्षरोपक ६४ कलाओंमेंसे किसी एक भी कलासे उपजीविका करने वाला इत्यादि वृत्ति करने वालों को श्राद्धादिमें वर्ज्य करके पंक्ति बाह्य कर देनेको कहा है।

१७ बस, इस प्रकारके मनः कल्पित पातक महा पातक की घुमघ्धकी में बिचारे चातुवर्ण्य के लोग चक्कर खाने लगे। जब कभी किसी को प्रायश्चित देकर शुद्ध करनेका मौका आया तो उसको अधिक द्रव्य मयाप्राय के प्रायश्चित बनाए जाते थे। इतना करनेपर भी उसे (पापी शब्द से संबोधित कर) कह दिया जाता था कि कलिमें प्रायश्चित से शुद्धि किए हुयेका भी संग्रह कर [पंक्ति व्यवहार में मिला] लना बंद होनपर भी हमने अनुग्रह से तुझे कृतार्थ किया है।

१८ ऐसा चलेतो भी कहाँतक? लोगोंको ऐसी बातें : सहा होने लगीं। आपस में स्पर्शास्पर्श स्पृष्ट, भक्ष्याभक्ष्य भोज्य, कच्ची–पक्की रसोई का खान पान, देशाचार, कुलाचार और आचार विचारके भेदभावसे चातुवर्ण्य के [अन्दर सैकडों जातिया] हजारों भेद खडे होगये। ब्राह्मणोंही में देखिये सैकडों भेद हो गये कोई पंचगौड, कोई पंच द्राविड, शाखा भेद, वेदभेद, सूत्रभेद भेदमें भेद सैकडों हजारों होगये। असवर्ण विवाह उठगया और सवर्ण विवाह होने लगा वह भी बंद होकर जाति पाँतिमें विवाह होने लगा। यों होते क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंमें तो असंख्य जातिभेद पांतिभेद, संप्रदाय भेद, बेशुमार बढते गये।

१९ यह बात स्पष्ट है, कि जहां भेद हुआ वहां उच्च नीच का संचार प्रथम होता है। फिर क्या, उच्च नीच अवस्था होनेही की देर है कि कलहाग्नि उसमें बिना भडके नहीं रहती। इससे सभीके परस्परमें उच्च नीच भेदभाव के झगडे खडे होगये। और भारतकी एकता का खून होगया, तथा राष्ट्रीयता रसातलमें चली गई।

२० उक्त आपस की फूटका फायदा यवनोंने यह लिया कि हमारेलोगोंमे कलहाग्नि भडकाके वे अपने राजकीय कारस्थानोंको बेखटके करते चलेगये और

अपना राज्य शासन जमालिया; इधर हम परतंत्र बनगए। इतनाही नहीं वरन उनके आतंक से करोड़ों स्त्री-पुरुष विधर्मी होकर गो रक्षक के बदले गो भक्षक कहा कर हमहीसे झगडा करनेके लिए तैयार होगये। अंतमें इसका फल यह हुआ कि भारत जो कभी संसारमें आदर्श देश कहलाता था वह उपरोक्त जहरी जंजाल में फंसकर आज गारत होगया।

२१ प्रिय पाठकगण! भारतकी ऐसी दुर्दशा को देखकर भी; हृदय विचलित न हो! यही क्या हमारा धर्म है? कदापि नहीं, क्योंकि 'यतोनिःश्रेयसःसिद्धिःसधर्मः' धर्म वह है कि जिसके आचरणसे निरंतर कल्याणकी प्राप्ति हो। इन कलिधर्मकी बातोंसे हमारा क्या कल्याण हुआ? कुछ नहीं! हम बेकार ही नहीं वरन जीतेजी मुर्दा होगए। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गीतामें लिखी हुई दैवी सम्पत्ति सब चली गई, और आसुरीने अड्डा जमालिया।

२२ यदि कहूँ कि "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" श्रुतिस्मृत्यादि प्रोक्त विधि विधानादि लक्षण युक्त अर्थवान धर्म है, तो इस कलि धर्ममें तो विधि-विधानों को नामशेष कर दिया गया है। संपूर्ण श्रौत यज्ञोंका तो क्या अग्नि होत्रका भी कलिधर्ममें निषेध है। वहभी निरर्थक यानी यज्ञोंके रहस्य को और वेदमंत्रोंके अर्थ को न समझ कर उनका निषेध किया गया है। और इतिहास को देखनेसे इससे अर्थ (लाभ) न होते हुए अनर्थ (नुकसान) ही हुआ है। इससे मालूम होता है कि ये सब कलिकी कल्पनाएं हैं।

२३ यदि कहें कि ये कल्पना ही हैं तो ये कलियुगमें ही उद्भूत होनी चाहिये और कलियुगको तो आरंभ हुये ५००० वर्ष के उपर होगए हैं। तब तो कई स्मृति पुराणादिकों में इस (कलिधर्म) का वर्णन मिलना चाहिये। उसमें भी-"कलौ पाराशराः स्मृताः" कलियुग सम्बधी बातें पराशर स्मृतिमें मिलनी चाहिये। किंतु जब मैंने पराशर स्मृति देखी तो उसमें क्षेत्रज कृत्रिमादि को पुत्रत्व [प. स्मृ. ४.२४] और पुनर्विवाह [प. स्मृ. ४-३०] कहा है। और माधवाचार्यने अपनीटीकामें उपरोक्त बातोंको युगांतर विषयक कहते हुए आधार आदित्य पुराण का बताया है। तथा [पराशर स्मृ १-२४ पृ १३३ में] संपूर्ण कलिवर्ज्य बातें एक स्थलमें ही लिख दी हैं।

२४ किंतु वहां टिप्पणीमें लिखा है कि—

"दीर्घकालं ब्रह्मचर्यमित्यारभ्य [पृष्ठ १३३ पं. ७] निवर्तितानि कर्माणि [पृ. १३७ पं. १०] इत्यन्तानि वाक्यानि बहुभि निंबन्धकारैः कलिवर्ज्य प्रकरण त्वेनतत्र तत्र संग्रहीतानि दृश्यन्ते। कुत्रचित् पंचैव कर्माणि वर्ज्यान्युक्तानि कुत्रापि बहूनीति भेदः।" [पृ. १३७] "इमा

न्युपरितनानि वचनानि कुत्रत्यानीति सम्यङ् न ज्ञायते। हेमाद्रौ आदित्य पुराणान्तर्गतानीति चोक्तम्। मूलं तु न कुत्रापि दृश्यते। [इति पराशर माधव टिप्पणि कारेण विद्वद्वर वामन गोविंदशास्त्रिणा शाके १८१४ मध्ये लिखितम्]

अर्थात्—" दीर्घकाल ब्रह्मचर्य यहांसे आरंभ करके यह 'धर्मविहित कार्य भी कलियुगमें वर्ज्य किये गए हैं' यहांतक के वाक्य बहुतसे निबन्धकारोंने कलिवर्ज्य प्रकरणके नामसे जहां तहां संग्रहित किए हुए दिखते हैं; वह कहां पांचही कर्मवर्जित और कहा तो बहुतसे वर्जित कहे हैं। किंतु इनमें एक वाक्यता नहीं है।" पृ १३७ में "यह उपर्युक्त वचन कहां के हैं ऐसा ठीक ठीक मालूम नहीं। हेमाद्रिमें आदित्य पुराणांतर्गत, मदन पारिजातमें सारसंग्रह नामक निबंधसे उध्दृत, और कहां कहां देवल स्मृतिके वचन हैं ऐसा कहा है; लेकिन मूल ग्रंथोंमें यह वाक्य कहींभी दिखाई नहीं देते।"

२५ इस प्रकार टिप्पणिकार को प्रसिद्ध करनेको आज ४० वां वर्ष है किंतु इतने वर्षोंमें कोईभी ऐसा लेख प्रसिद्ध नहीं हुआ कि उक्त कलिवर्ज्य वचन किस पुराण या स्मृति के हैं। ऐसा होनेसे हमने जब तपास किया तो पता लगगया कि यह तो सब बातें आजसे सिर्फ १२ सौ वर्षके अंदरकी हैं। क्योंकि कर्कोपाध्याय, भर्तृयज्ञ, देव याज्ञिक आदि पारस्कर गृह्यसूत्र के भाष्यकारोंने मधुपर्क के प्रसंग आदि में कलियुग का नामतक नहीं लिखा है। किंतु जयराम, हरिहर, विश्वनाथ ने (कलौ गवालंभ स्यनिषिद्धत्वान्नादरणीयः) 'कलिमें गवालभ का निषेध होनेसे अब वह नही करें' वहा प्रमाण सिर्फ (अस्वर्ग्यं लोक विद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नत्) ऐसा सामान्य नीतिका कहा है। अर्थात् "लोक मतानुकूल बातोंके अतिरिक्त विहित कार्य भी नहीं करें" इससे ज्ञात होता है कि, उक्त टीकाकारोंके आठवीं-नौवीं शताब्दिके समय तक कलिवर्ज्य बातोंकी कल्पना तो थोडी थोडी शुरू होगई थी, किंतु कलिमें पाच बातें वर्जित; आगे सात वर्जित, इस प्रकार के वाक्य पूर्ण रूपसे प्रचलित नहीं हुए थे।

२६ हेमाद्रि, माधवाचार्यने इस विषयको अपने २ निबधोंमें संग्रहित करनेसे दसवीं शताब्दि में इनके प्रमाण इतस्ततः टीका ग्रंथोंमें दिखने लगे जैसा कि १५ *शताब्दि गदाधरने गृह्यसूत्रकी टिकामें* "*कलौ पंचविवर्जयेत्।* इति पराशर स्मृतेः।" लिखा है। अर्थात् "यज्ञका आधान आदि पांच बातें कलिमें वर्जित करें ऐसा पराशर स्मृतिमें कहा है।" इस गदाधरके कथनसे मालूम होता है उस समय बृहत और वृद्ध नामधारी स्मृति ग्रंथ बनाए गए थे

क्योंकि उक्त वाक्य मूल पराशर स्मृतिमें कहे नहीं हैं। और बृहत् तथा वृद्ध नामधारी स्मृति ग्रंथोंमें ऐसे प्रमाण बहुतसे पाये जाते है।

२७ इससे सारांश निकलता है कि पुरुषार्थ चिंतामणि, निर्णयसिंधु, शूद्र कमलाकर और धर्मसिंधु आदि आधुनिक ग्रंथोंमें कलिवर्ज्य की बातें जिस प्रकार विस्तारसे फुलाई गई हैं। ऐसी सातवीं शताब्दिके बाद के ग्रंथोंमें नहीं हैं। और उसके पहिले के ग्रंथोंमें वराहमिहिर प्रोक्त पितामह वशिष्ठ रोमक पौलिश सूर्य सिद्धांतादि ग्रंथ, नारद संहिता आदि कुल ज्योतिषके प्राचीन ग्रंथ, अपरार्क और मदन रत्नादि कुल धर्म-शास्त्र व टीका ग्रंथोंमें तो कलियुग का न तो नाम है न कलिवर्ज्य बातें हैं। इससे चित्तमें संदेह होने लगा कि क्या सातवीं शताब्दिके पहिले कलियुग नहीं था? और संदेह में दूसरा कारण यह भी हुआ कि जो इस बीच एक शिलालेख के संबंध का प्रमाण उपलब्ध हुआ था वह इस प्रकारसे है।—

> The Kaliyuga era. The earlist known record which mentions this is a chalukyan inscription of King Pulakesin II found at Aihole, the corresponding year A. D. being A. D 634-35. The next belongs to the year A. D 770, and the next to A. D. 866. These are all in the Peninsula In Northern India the earlist known is one of date A D. 1169 or 1170. Preface of The Siddhantas and the India Calaendar By Robert Sewell (1924)
>
> कलियुगीन कालः—सबसे पुराना लेख जिससे हमें कलियुग का पता चलता है, राजा पुलकिसेन (द्वितीय) का वह चालुक्यका लेख है जो एहोलमें पाया गया है। और जिसका काल इसवी सन के हिसाब से ६३४-६३५ होता है। दूसरा लेख ईसवी ७७० और तीसरा ईसवी ८६६ का है, यह सब तो दक्षिण भारत के हैं। उत्तर भारत में जो सबसे प्राचीन लेख कलियुगीन काल का मिला है, वह ईसवी ११६९-७० का है। ("सिद्धांतज और इंडियन कॅलेंडर की प्रस्तावना" लेखक रावर्ट सिवेल १९२४)

२८ इसी प्रकार कलियुग के पांच हजार वर्षों के अस्तित्व के संदेह का तीसरा कारण यह हुआ कि सातवीं शताब्दी के पहिले के ग्रंथों में दूसरे ही युगों के नाम पाए जाते हैं। जैसा कि विष्णु स्मृति में कृतयुग का अन्त व त्रेता युगादि कहा है। तब यदि प्रचलित युगोंके वर्ष माने तो, विष्णु स्मृति को बने

२१-२२ लाख वर्ष मानना होगा। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि, कृतादि युगोंके इतने बड़े परिमाण प्रथम आर्य सिद्धांतके समय (शाके ४२१) तक बने नहीं थे; उससे आगे बने हैं। और उसके बाद के लल्ल व ब्रह्म गुप्त सिद्धान्त में वही बड़ी संख्या कृतादि युगोंको जोड़ी गई है। किंतु उन ग्रंथोंमें भी अब कलियुग है ऐसा कहा नहीं है। जैसे नव्य सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्म सिद्धान्त और सोम सिद्धान्त में क्रमसे कृत, त्रेता व द्वापर युगोंका अन्त कहा है तब क्या इनके आपसमें लाखों वर्षोंका अंतर होसकता है। यदि इतना अंतर मानभी लें तो इनके आपस के भगणादि मान व परम क्रांति वगैरे एक रूप कैसे होसकती हैं।

इश्वरी साक्षात्कार।

२९. इस प्रकार के कलियुग के अस्तित्वके संबंध में मुझे कई सन्देह खडे हो रहे थे कि संवत् १९८३ भाद्रपद कृष्ण १३ रविवार तारीख ५।९।२६ इ. को दिन निकलने के पूर्व ब्राह्म मुहूर्त का समय था। उन दिनों श्रीमद्भागवत् पुराण पर मेरा प्रवचन सप्ताह चल रहा था। दिनभर पुराण वाचन करनेसे रात्रिके समयमें थकावट आना स्वाभाविकही था। प्रातःकाल सूर्योदयसे कथा आरंभ हुआ करती है। इससे शीघ्र उठनेकी चित्तमें कुछ व्यग्रता थी। इतने ही में एक अद्भूत और आश्चर्य जनक एकाएक संकेत हुआ वह आवाज अभीतक कानों में ज्योंकि त्यों निनादित हो रही है; कि—

३० "कलियुक बीतचुका सतयुग आगया? यत्न करो वेदार्थ समझेगा." मै चौक कर खडा हुआ और चारों ओर निहारने लगा कि यह क्या? यह किसकी ध्वनि। कौन कह गया! कहां कहगया आदि विचारों में ग्रस्त बहुत कुछ इधर उधर देखता रहा किंतु किसीका पता नहीं यह है क्या।

३१ इस प्रकार बहुत देर तक मै विचार सागर में गुचलकियाँ खाने लगा विचार तरंगों की लहलहाती थपेड़ोंसे अन्त करण छिन्न भिन्न सा होने लगा कि मैं! और क्या सुन रहा हुं!! यह कैसे होसकता है कि जो सत्ययुग आजाय! मालूम होता है यह चित्तके संदेहयुक्त होनेसे ऐसी उसकी प्रतिध्वनि हुई है। सतयुग तो सब लोग जिस समय सत्यवादी होते हैं तब हुआ करता है। फिर व्यर्थ ही यह चित्त में विक्षेप क्यों?

३२ जन्मतः ही संकेत आदिपर मैं अश्रद्धा रखने वाला होनेसे उपरोक्त बात की उपेक्षा कर गया। प्रातःकाल आ पहुंचा मैंने स्नान संध्यादि से निवृत्त होकर मध्याह्न समय तक भागवत पुराण पर प्रवचन किया। और दो घडी के विश्राम समय में फलाहार आदिसे निवृत्त होकर बैठा भी नहीं था कि फिर अन्तःकरण में उक्त ब्राह्म मुहूर्त की घटना वाला आन्दोलन जोरसे होने लगा तब देखें प्रश्नफल से क्या उत्तर मिलता है ऐसा समझकर इस बातका निपटारा ज्योतिःशास्त्रसे करना चाहा।

३३ उस प्रश्न करनेके समय की कुंडली बनाई सो यह है—

"लग्न तुला उच्च के शनी से युक्त, पराक्रम में उच्चका केतु, सुखस्थान में नीचका गुरु, सप्तममें स्वगृही मंगल, नवम में उच्चका राहु, कर्मस्थान में स्वगृही चंद्र, और शुक्रसे उसकी युति और लाभभाव में बुध युक्त स्वगृही सूर्य" आदि आकाशस्थ ग्रहोंकी स्थिति देखते ही चित्तमें एक प्रकारसे प्रसन्नता छा गई क्योंकि कार्यसिद्धि के लिये चतुष्केंद्री ग्रहों में समस्तक में शुभाऽशुभ ग्रह है। और उनमें स्वोच्चस्वक्षे का होना उत्तम योग होता है। इससे मालूम होने लगा कि यह संसारमें अप्रतिम व अद्भुत कार्य करनेका सूचक योग है। और सत्यही में कलियुग का अंत होगया है; ऐसा मुझे उस समय मालूम होने लगा।
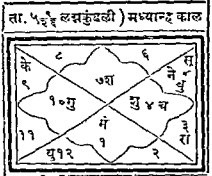
३४ किंतु इस बात के यानी कृतयुग के प्रचारके संबंध में मुझे बड़ी कठिनाई प्रतीत होने लगी। क्योंकि जगत्भर के विद्वानों की दृष्टि के ओट में यह इतनी बडी बात कैसी छिपी रह सकती है किंतु संकेत को याद कर मैं मनमें कहने लगा कि—"हे प्रभू ऐसे अभूतपूर्व सतयुग के प्रचार सम इस कठिन कार्यको तुम किस पामर के हातोंसे कराना चाहते हो ? क्योंकि ऐसे जटिल कार्यका मेरेद्वारा प्रचार होना नितांत असंभव है।"

३५ इस प्रकारकी दुर्बल भावना से पुनः मैं हतोत्साही बन गया। एक गहरी आहभरी और वह कुंडली एक और रखदी। आठ पंद्रह दिनमें यह बात विस्मृत होगई। कई दिनके बाद जब मैं प्रवाससे घर आया इधर पूज्य श्री पिताजी भी एक जगह वाल्मीक रामायण का प्रवचन समाप्त करके घर आये थे। हम दोनों पितापुत्र की भेट हुई। तब पूज्य पिताश्रीने एक घटना का कहना आरंभ किया। उनका और मेरा सौ मील का अंतर था। तभीभी यह घटना की बात थी। किंतु उनके मुंहसे मैने ठीक ठीक वही बात सुनी, जिस ईश्वरीय साक्षात्कार का मुझे परिचय मिला था। वही दिन वही रात्री का ब्राह्म मुहूर्त और वही बाते जो सुनकर मेरे चित्तमें एकाएक विद्युल्लहरी की तरह विचित्र उल्हास समागया। क्षण क्षणमें रोमांच होने लगा। पश्चात् जब मैने अपनी घटना भी थी पिताजी के सेवामें कहनी आरंभ की उन्हे भी महान आश्चर्य हुआ। दोनोंकी आत्माके उपर एक विचित्र महदात्मा का प्रभाव पडा।

३६ पश्चात् उन्होंने अपनी घटना क्षणकी बनाई हुई एक कुंडली दिखाई; जोकि उपरोक्त दिनके ब्राह्म मुहूर्तकी ही बनी हुई थी। उससे मेरी प्रश्न लग्न

कुंडली का लग्नमात्र भिन्न था बाकी सब ग्रह ज्योंके त्यों मिल गये। अर्थात् यह घटना समयकी फर्क लग्न कुंडली थी और मैंने बनाई थी वह तुला लग्नकी प्रश्न कुंडली थी। मेरे और उनके चतुर्केंद्रीय ग्रह एकसा ही समतुल्य रहे देखकर हम दोनोंको महान आश्चर्य और संतोष हुआ। तब पिताजीने कहा कि—" दोनों पितापुत्रों को एकही समयमें एकही बातका साक्षात्कार होना आत्मतत्व की शुद्ध भावना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस साक्षात्कारसे मालूम होता है कि युगपरिवर्तन हो गया है। इसीलिये अब हमें वैदिक मंत्रोंका सत्य अर्थ क्या है यहभी समझना चाहिये। यद्यपि यह कार्य बहुतही कठिन है, तोभी युगोंके तथा वैदिक इतिहास के संशोधन रूप अपने कार्य में इस ईश्वरी प्रेरणासे सिद्धांतरूप निश्चयात्मक बातें प्रकट होजाँय; इसमें कुछ अत्युक्ति या अन्ध श्रद्धा नहीं है। कई बातें हमारे दृष्टीकी ओटमें हुआ करती है; उनका विकाश वैसेही जिज्ञासु जनोंके हृदय में स्फुरणद्वारा होना संभव है। तथापि इस बात के सत्या सत्यताका निर्णय जबकि अभी भविष्यके गर्भमें है। तब इस बात को अभी विशेष महत्व देना उचित नहीं. तोभी इन उक्त बातों के परिशीलन का कार्य तुम हमने विशेष जोरोंसे करते रहना चाहिये।"

२७ तदनुसार कार्य चलरहा था कि कुछ दिनमें फलित ज्योतिष के मर्मज्ञ माननीय श्रीमान् प्रेमशंकरजी दवे, क्लार्क ऑफ दी कोर्ट अमरावती, तथा नागपूर के परम माननीय रावसाहेब केशवरावजी पराण्डे, माजी हाईकोर्ट हेड क्लर्क आदि विद्वान (उड्डाय प्रदीप के मराठी टीकाकार) किसी आवश्यक कार्यके लिये घर पधारे थे। फिर अनायास ज्योतिःशास्त्र विशारद् घर आए हैं; यों समझकर उक्त ईश्वरीय साक्षात्कार वाली कुंडली उनके सामने रखी; खूब अच्छा परामर्ष हुआ आखिर आप दोनों साहबोंने यही निष्पन्न निकाला कि आप लोग इस विषयकी खोज करनेमें अवश्यमेव दीर्घ उद्योग करें। आपको सिद्धि प्राप्त करने वाले योग अच्छे हैं।

दृढ भावना और कार्यारंभ।

३८ मेरे पूज्य पिताश्री की महान विद्वत्ताको वरारका ऐसा कोई पुरुष न होगा जो जानता न हो, आपको ग्रंथावलोकन और ग्रंथ संग्रहका गहरा नाद (शौक) होनेसे ३०-४० हजार का शास्त्रीय ग्रंथ संग्रह आपने कर रखा है। सन १९१४ से धर्मप्रभाकर मासिकद्वारा आप समाजसेवा करते थे। पश्चात् सन १९२२ में आपने अखिल भारत धर्मोपयोगी प्रभाकर पंचांग बनाया; जिसपर लोकमान्य तिलक प्रभृति प्रसिद्ध २ विद्वानोंने गंभीर समालोचना करते हुए उत्तम अभिप्राय दिये हैं। पूनेके पंचांगऐक्य मंडल के प्रथम अधिवेशन में आप

और श्रीमान माननीय चिन्तामणरावजी वैद्य पंचद्वय चित्रापक्ष की ओरसे निर्वाचित हुए थे।

३९ आपकी प्रगाढ विद्वत्ता को देख कर शृंगेरी शिवगंगा मठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीमच्छंकराचार्यने प्रसन्न हो "विद्याभूषण" की उपाधी प्रदान की। आपने हालहीं में उपरोक्त इश्वरीय साक्षात्कार की स्फूर्तिसे, आदि ग्रंथ वेदोंका काल आजसे तीन लाख वर्षका पुराना सिद्ध किया है। अतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि ऐतिहासिक रीतिसे इतने पुराने वेदोंको सिद्ध करने वाला एलिचपूर निवासी वेदार्थतत्व शोधनाचार्य विद्याभूषण दीनानाथ चुनीराम शास्त्री चुलैट (गौड) कृत वेदकाल-निर्णय ग्रंथके सिवाय संसारभर में अन्य दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है।

४० आपकी कडी तपश्चर्याका ही फल है कि, मुझको संस्कृत वाङ्मय के समस्त ग्रंथों के अवलोकन का और अन्यान्य उपयुक्त सूचनादिकोंके प्राप्तिका सुंदर सौभाग्य सदाके लिये मिलता रहा। जिसीके फलस्वरूप यह ग्रंथ लिखने में मैं सामर्थ्यवान् बना हुं, यह प्रसाद आपहीसे मुझको प्राप्त हुआ है।

ग्रंथ तयार करने का उद्योग।

४१ इसके बाद युगोंके सम्बधमें आजतक किन किन विद्वानोंने कैसी और किस किस आधार पर चर्चा की यह खोज लगाने लगा। प्रातःस्मरणीय लोकमान्य तिलक, ज्योतिर्विद शंकर बालकृष्ण दीक्षित, रावबहादूर चिंतामणि विनायक वैद्य एम् ए एल् एल् बी. पाश्चात्योंके जर्मन पंडित मॅक्स मुलर, प्रो व्हिटने, प्रो. बर्जेस, प्रो. वेबर तथा वेबोलिनी झोरो नामक आस्ट्रियन लोगोंकी एक संस्था है; इत्यादि लोगोंके मतोंकी व भारतीय इतिहासकी मैने अच्छी तरह छान बीन की, और उनके कथनों की आपसमें तुलना भी मैं करने लगा।

४२ इधर वेदोंसे आजतक युग शब्द की उत्पत्ति व उसके कालपरिमाण का विस्तार कैसे कैसे होते गया, कौन कौन अर्थमें युग शब्दका व कृत आदि शब्दोंका उपयोग होने लगा, इनके भेद, कारण और भारतमें भीष्माचार्य ने परिस्थिति के अनुसार युग व्यवस्था का उपदेश दिया सो सब देख कर पुराणों में युगोंके संबंध की जो चर्चा की गई है उसका ऐतिहासिक रीतिसे अवलोकन किया।

४३ जिस प्रकार आजकालके पंचांगोंमें युग मनु और कल्प शब्दोंका उपयोग होता है, वैसा वैदिक कालमें नहीं होता था। उस समयके पंचांगोंमें युग के कितने वर्ष माने जाते थे। और वह पंचांग कौनसी शैलीसे बनाए जाते थे इस संबंधकी मैने पूर्ण खोज की। इसके बादमें सूर्यसिद्धांत, ब्रह्मसिद्धांत, सोमसिद्धांत

व आर्यसिद्धांत में उन उन ग्रंथोंके निर्माणकाल के युगोंके नाम कौन २ से लिखे हैं उन सबका विचार करतेहुए आदि मन्वंतरावतारसे लेकर वर्तमान मनुतक प्राणियोंका कैसे कैसे विकास होतेहुए यह मनुष्यप्राणि तक किस प्रकार पहुंचा, मनुमें भी २८ युग कैसे व कब कब बीते हैं। वैदिक इतिहाससे इस युगपद्धति के कालकी एक वाक्यता कैसी। अनान्य युगोंमें मनुष्योंकी आयु और सन्तानोंकी तादाद [परिमाण] भिन्न भिन्न [कम ज्यादा] होते हैं; या चारों युगोंमें थोडे बहुत अंतरसे प्रायः एकसा होते हैं। यह सब ज्ञान प्राप्त किया।

कलिकाल का निर्णय।

४४ इस प्रकार उपर्युक्त (कलम ३६-३८) प्रस्तुत लेख की प्रमाणभूत बातोंका पूर्ण रीतिसे अन्वेशन करने पर; उक्त (कलम २२-३५) साक्षात्कार के तत्वोपदेश की बातें सत्य सत्य निश्चित होगई। और स्पष्टतापूर्वक हमें ज्ञात हो गया कि उक्त (कलम ३-२१) कलिवर्ज्य प्रकरण का प्रादुर्भावही आजसे पूर्व बारह सौ वर्ष के काल से हुआ है। आगे यह कलिवर्ज्य बातें आजतक शनैः शनैः (५-७-१०-२६) बढते बढते वर्तमान में करीब ५० तक बढगई हैं। और यह यहांतक निराधार हैं कि; श्रुति, स्मृति, पुराणादि धर्मके प्रमाणभूत माने जानेवाले ग्रंथोंमें इन बातोंका कहीं पतातक नहीं है। सिर्फ सातवीं शताब्दिके इधरके टीकाकारोंकी बनाई हुई यह करतूत है; यानी वृहत वृद्धादि उपपदधारी ग्रंथोंमें तथा इसी कालतक के वर्णन वाले कथाविभाग में यह बातें प्रक्षिप्त की गई हैं। पंचांगों में लिखाजाने वाला ४ लाख ३२ हजार का कलियुग का प्रमाण और अबतक ५००० वर्षोंके भुक्त होनेके वर्णनका वराहमिहर के समय (सन ५०५) तक के ग्रंथोंमें एवं शिला लेखादिमें कहांभी उल्लेख मिलता नहीं है। और जो मिलता है वहां कलियुग प्रमाणही सिर्फ बारह सौ वर्षका कहा हुआ है।

४५ इत्यादि अनेक साधक और बाधक वचनोंके तारतम्य और कालका विचार करते हुए न्यायसिद्ध प्रमाणोंके आधार पर युग परिमाणोंका निष्कर्ष निकाले गया है। जबकि ऋतुचक्रके सदश युगचक्र माना गया। तब निश्चय है कि ऋतु परिवर्तनके कालके सदश युग परिवर्तन का समयभी नियमित रूप है।

४६ और उपपत्तिसे भी यही बात सिद्ध होती है कि, मनुष्यों के विचारोंमें रहने वाले ज्ञान विज्ञानमय परिमाणुओंकी उत्ताल तरंगें अधिक और कमी प्रमाण से प्रादुर्भूत होने का मुख्य स्थल जो है वह सौर जगतमें संपूर्ण ग्रहोंमें बडीभारी दिव्य ज्योति गुरु के नामसे प्रसिद्ध है। और जो १२ वर्ष में राशिचक्र एक चक्कर लगाता रहता है उसीके अनुसार दिव्य दृष्टिवाले वसिष्ठ, अत्रि पराशरादि ऋषियोंने मानवी बारह वर्षका एक युग मान कर लघुकालिक फलादेश इसीके

अनुसार कहा है। और अतिदीर्घ कालिक व युग कल्प धर्मोंके लिए स्मृति आ- ग्रंथकारोंने इसे सहस्र गुणित करके दिव्यमान १२ हजार वर्षोंका (वेदोंके चतुर्युग) एवं उसको भी हजार गुणा करके ब्राह्मदिन परिमाण कहा है और 'धाता यथापूर्व मकल्पयत्' इस श्रुतिके अनुसार उसेभी चक्राकार ही माना है।

४७ तो जबकि यह बृहस्पति पौष मासकी अमावास्याके अंतमें रवि चंद्रके साथ राश्यंशरूला साम्य 'धनराशिके मूलनक्षत्रांत पादमें' हो जाता है। तब ठीक उसी दिनसे ज्ञानोत्क्रांतिके प्रवाहका अभ्युत्थान होकर वह बडे वेगसे बहने लग-जाता है। इसीको युगारंभ व कृतयुगारंभ कहा है। किंतु कालांतरमें यह ज्ञानोत्क्रांति धीरे धीरे कम होती हुई अपक्रांति होने लगती है। इसका हिसाब ठीक सिर समझनेके लिए कृत $\frac{१}{}$, त्रेता $\frac{३}{४}$, द्वापर $\frac{१}{२}$, कलि $\frac{१}{४}$ ऐसे युगोंके चार विभाग किए हैं।

४८ इसी सिध्दांतकी पुष्टिमें जो श्रुति मंत्र कहा गया है उसे हमने प्रस्तुत लेखके आरंभमें ही लिखदिया है। उसका भावार्थ यह है कि जैसे मनुष्यके निद्रित होनेमें कलि, उठनेकी चेष्टामें द्वापर, अपने पैरों खडे होजानेमें त्रेता और कृतिसिद्ध क्रिया के करनेमे कृतयुग बताया है। युगपरिवर्तन होते ऋतु वैशिष्ट्य गुणधर्म के सदृश युग वैशिष्ट्य गुणधर्म भी एकसा होने चाहिये और हमारे स्मृति ग्रंथादिकोंमें उक्त मनुमें २७ बार चतुर्युग बीते हैं ऐसा जब उल्लेख है तो सभी युगोंके गुण धर्मोंके साथ साथ कलिधर्म भी २७ बार आया हुआ होनेसे कलिवर्ज्य बातें भी २७ बार में कुछतो भी कही हुई पुराणादिकों में मिलनी चाहिये; किन्तु कुछ नहीं।

कलियुगीन काल का ऐतिहासिक परिमाण।

४९ पाठक गण! गत कलियुगीन कालके (आजसे पिछले १२०० वर्षोंके) अन्दर जो अनेकानेक भीषण, अमानवी तथा हृदयविदारक उत्पात जो भारतवर्ष में हुए हैं; उनकी ओर आपभी एक विहंगम दृष्टि दौडाईये। क्या इसी समय में भारत श्रीहीन, गौरवहीन, असत्य तथा अधर्म परायण नहीं हुआ? क्या भारत पर यवन और अन्य जातियोंके आक्रमण इसी समयमें नहीं हुए। क्या इतिहास भरमें कहीं सङ्केत मात्रसे भी यह बात अंकित है कि इन बारह सौ वर्षों से पूर्व भारत पराधीन था? जब इससे पूर्व भारतमें अन्य जातिकी कोई सत्ता ही न थी तो राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टिसे श्री विक्रमादित्य का राम सदृश राज्यको बीते अभी २००० वर्ष भी नहीं हुए है और न वराहमिहर [इसवी सन ५०५] पर्यन्त के ग्रंथकारोंने कहीं संकेत मात्रसे भी अब कलियुग है ऐसा कहां उल्लेख किया है; तब हम कलिको बीते ५००० वर्ष हुए ऐसा कैसे मान सकते हैं। क्या

सन ७२४ के बादके वर्षोंमें महम्मद कासीम आदिकी बहुतसी चढाईयां भारतपर बारंबार होते हुए भी भारत भी लडाईयां रूप कलह कालकी करालतामें फसा हुआ नहीं रहा है। क्या सन........में अनर्थकारी जयचंदने यवनोंको आमंत्रित करके भारतमें कलियुगके प्रचार करनेका देशद्रोही काम नहीं किया है कि इसीके बाद महमूद गजनवी, बाबर, तैमूर, औरंगजेब, महमदशाह-अब्दाली तथा नादिरशाही कालको हम कलियुग नहीं तो और क्या समझें ? इसी कालमें जिस प्रकार हीनदीन प्रजारक्षक उनके भक्षक बन गये थे, वैसे महम्मद कासीमके चढाईके पहिले क्या कोई होगये थे ? किंतु जब गत बारा सौ वर्षोंके ही अन्दर इस सर्वोच्च, उन्नतिके शिखर पर विराजमान आर्य जैसी जगद्गुरु जाती के महान अधःपतन के कालको जीता जागता कलि नहीं कहें तो और क्या कह सकते हैं।

५० कौन कह सकताथा कि जिस ऋषि संतान ने संसार भरमें ज्ञान विज्ञान फैलाया, विदेशीय नर पशुओं को अपने उदात्त उपदेशों से मनुष्य बनाया। जिस आर्य जातिने सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वज्ञानो का आविष्कार निकाला, जिस जातिका गौरव स्वयं राम और कृष्णने बढाया, जिसमें सीता, सावित्री, पार्वती जैसी आदर्श देवियोंने जन्म लिया, शिवि, दधीचि, रंतिदेव, हरिश्चंद्र जैसे धर्मव्रती जिसकी विशेषता ए हैं। ऐसी आदर्श जाति का इन ही बारह सौ वर्षों के भीतर इतना घोर अधःपतन, पुरुषों का पौरुषत्व नष्ट, देवियों की सतीत्व स्वाहा, धर्मात्माओं के धर्म का न्हास यह सब कलियुग नहीं तो और क्या था।

५१ इस में सन्देह नहीं कि इस घोर अन्धकार में भी हिन्दु धर्म को उभारने के लिये कुछ धार्मिक सज्जनों की चमचमाहट भारत में चमक उठी थी, प्रतापसिंह की वीरता, शिवाजी की नीति निपुणता और धर्मरक्षा, तथा गुरु गोविन्दसिंह के संगठन से आर्य जाति में फिर से जान आने लगी। सूर, तुलसी, नानक, कबीर व गुरु रामदास इत्यादि ने फिर से अध्यात्मवाद, भक्ति एवं कर्मयोग को चिताया। परन्तु इन व्यक्तियों की चमचमाहट ऐसे घोर समय में धर्म का अस्तित्व ही दर्शा ने के लिए हुई थीं। और ये महा पुरुष हुए कब? आज से कुल २०० वर्ष पूर्व के भीतर भीतर अर्थात कलियुग के चतुर्थ पाद में जब भारतरूपी सूर्यपर कलि कालिमा रूपी खग्रास ग्रहण ने अपना अधिकार पूर्ण जमालिया था।

५२ यह तो हुई केवल भारत वर्ष की अश्रु कहानी। जिन स्मृति धर्मशास्त्र कारों ने प्रस्तुत चतुर्युग का क्रम निश्चित किया है, वह भारतीय होने से उन्हें अधिकता से भारत का ध्यान होना ही उचित था, इसी से भारत पर गत

कलि की शनैश्चर दृष्टि पूर्ण रूप से प्रतीत हुई । किंतु संसार भर में भी गत कलि का प्रभाव पड़ा है। जगत्के इतिहास देखते आइये। रक्तपात, मार-काट, लूट दहाड़ के अतिरिक्त अन्य बातें इतिहास में नहीं मिलेंगी। विशेष कर यूरोप तो गत ११०० वर्षों में जात्यन्तर्गत द्वेषाग्नि ने पेटभर मानवा हुती ली। जहां देखो वहां लड़ाई ही लड़ाई ! मनुष्य की पाशव वृत्तियां का विकाश, नीरोशाही जारशाही और दीन प्रजा की तबा ही ! और इन १२०० वर्षों के अंत में विश्व-व्यापी महा भयंकर प्रलयकारी यूरोपीय महासंग्राम ! यही गत कलियुग का अंतिम वार (युद्ध) था, और वर्तमान सतयुग लगने से ८ ही वर्ष पूर्व हुआ था। यहां विशेष उल्लेख की आवश्यकता नहीं है कि इस अमेन महा संग्राम से मनुष्य जाति का कितना अनिष्ट हुआ है। किंतु यहां इतना ही लिखना पर्य्याप्त है कि संसार इस मध्य काण्ड के परिणामों से अभीतक सम्हलने पाया नहीं है। समस्त देशों की आर्थिक स्थिति की जो अभी तक ठीक ठीक व्यवस्था नहीं हो सकी है वह इसी महायुद्ध का प्रतिफल है।

५३ सन १९१८में युध्द समाप्त हुआ, सत्ययुग लगने का समय आपहुंचा था, उसके सुनहरी प्रकाशनें युगसंसारमें अपना अधिकार जमाया। अमेरिकाके प्रेसीडेन्ट विलसनने ठीक इसी सन्धिमें लीग ऑफ़ नेशन्स League of nationes की स्थापना की। कोई भी देश किसी देशपर आक्रमण न करे। सबके अधिकार बराबर हों। पारस्परिक झगडों को बिना युध्द, बिना मारकाट ही निपटारा कर देने की यह लीग विशाल न्यायालय है। प्रतिदिन इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि और समुन्नति होरही है। इसी समयसे जात्यन्तर द्वेशोंका शनैः २ न्हास होरहा है। मनुष्य मनुष्य बन रहा है। पाशविक तथा पैशाचिक वृत्तियोंसे मोक्ष पारहा है। स्थान स्थान पर सन्धियां होरही हैं।

५४ भारतवर्षको ही देखिये। पिछले वर्षोंमे हिंदुओंमे कितनी जान आई है। अ.र्य जातीनें अपनी रक्षाके लिये हिन्दु-महासभा की स्थापना की है। जगह जगह पर सत्य, धर्म, न्याय और मेलका प्रचार होरहा है। हिंसाका अहिंसा से उत्तर दिया जारहा है। मनुष्य देवरूप बन रहे हैं उन्नति कर रहे हैं। स्वाधीन हो रहे हैं। धर्मात्मा बन रहे हैं। अपने अपने अधिकार धर्म और कर्तव्योंको समझ रहे हैं। साथमें वर्णाश्रम स्वराज्य संघकी भी स्थापना होगई है। और अभी तो सतयुग की पूर्व संधि के४०० वर्षोंमे से केवल ५ही वर्ष व्यतीत हुए हैं।

कलियुग के उचाटन का प्रत्यक्ष नमूना ।

५५ हमारे भागवतादि पुराण ग्रंथोंमे कलह के कारणभूत पांच स्थान बताए हैं। उन पांचों स्थानोंमें पांच स्वरूप से कलिका अस्तित्व प्रकट होना

कहा है जैसा कि—

(१) जहां हिंसा होती हो वहां निर्दयता = पशुवृत्तिरूप .. ...कलि
(२) ,, जूवाबाजी ,, ,, असत्यता = दगाबाजीरूप... ... ,,
(३) ,, व्यभिचार ,, ,, अविचारता = अधिकारविस्मृति ,,
(४) ,, मदिरापान ,, ,, उन्मत्तता = स्वत्वहीनवृत्तिरूप . ,,
(५) ,, सुवर्ण (धनमद) ,, ,, परस्वत्वापहार = संशयित वृत्तिरूप ,,

इन पांचों बातोंका भारतवर्ष से उच्चाटन कर देना इसलिए बडे २ दीर्घ उद्योग किये जारहे हैं। जैसा कि हिंसावृत्ति को दूर करने के कई प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं। जूवेबाजी सदोष मानकर उसपर भी घृणा की जाती है। वेश्या नृत्य व वृत्ति भी बहुत कुछ कम होगई है। मदिरापान पर तो बडी जोरशोर की हानेश्वर दृष्टि प्रत्यक्षही है। वैसेही देश, धर्म व समाज की सेवा करने वाला गरीब पुरुष भी धनवान से अधिकतर आदरणीय समझा जाता है। वैसे ही देश कल्याणार्थ सत्यके लिए सूली लटकने तथा मरनकी एवं कडेस कड़े कष्ट सहनकी बाजी खेली जारही है। इस तरह सब रीतिसे कलिकाल का उच्चाटन होरहा है। यह हमें प्रत्यक्ष दिखते हुए भी अब हम वर्तमान कालको सतयुग नहीं मानकर कलियुग कैसा मानसकते हैं। अतः इसी प्रेरणाने ग्रंथ को लिखना आरंभ किया।

प्रसिद्धि का प्रयत्न।

५६ ग्रंथ तो तयार हो गया किंतु यह प्रसिद्ध कैसे हो। क्यों कि विना राजाश्रय के ऐसे ग्रंथ प्रसिद्ध होना कठिन प्रतीत होने लगा। किंतु सर्वान्तरयामी की प्रेरणा अगम्य है। अकोला के सुप्रसिद्ध श्रीमंत सेठ सावतराम राम प्रसाद फर्म क मालिक श्रीमान् सेठ किसनलालजी गोयनका ने इस ग्रंथ को छपवा देने का अभय दिया। आप की फर्म को सी. पी. वरार में सब कोई जानता है आपके यहां कॉटन मील होनेसे आप सबों से परिचित होगये हैं। आप का कुटुंब का कुटुंब सब ही उच्च विचार शील है।

५७ स. १९७१ के फाल्गुन मासमें सेठ ओंकारदासजी के स्वर्ग वासी हो जाने के पश्चात् इन के एक मात्र पुत्र बाबू कृष्णलालजी गोयनका १३ वर्ष हा के थे। अतः फर्म का तमाम सचालन भार श्रीमती सेठाणीजी कस्तुरी बाई साहब ने स्वतः अपने हात में रखा था। करोडों रुपयों का इतना व्यवहार धैर्य तथा चातुर्य बल से चलाने में आपने अच्छे अच्छे व्यवसाई पुरुषों को भी मात कर दिया। योंतो बहुत सी लिखी पढी स्त्रियाँ होंगी, किंतु वरार प्रान्तमें और मारवाडी समाज में गंभीर एवं विचार पूर्ण दक्षता रखने में श्रीमती सेठाणीजी साहब ही हैं।

५८ इन्हीं की सन्तान भला उच्च विचारवान क्यों नहीं होगी। इनके वि, बाबू कृष्णलालजी गोयनका उन्नति शील एवं सुधेर विचारों के नव युवक है। हाल ही में आप प्यारिस, लण्डन, जर्मनी आदि देश पर्यटन कर आये हैं यहां अच्छी से अच्छी लायब्ररीयों का अवलोकन किया है। आपका ऐतिहासिक-भौगोलिक बातों का तो शौक है ही, जिसमें ख गोलीय विषय का तो गहरा प्रेम है। इस पुस्तक के बनाने में जो जो किताबों को देशांतर से बुलाना आवश्यक प्रतीत हुआ; बहुतसी किताबें आपने हमारी संस्थामें बुला दिया। और इस पुस्तक को इतना शीघ्र जो आप लोगों की सेवामें मुद्रित कर के रख रहा हुँ सो आप ही के उदारता का फल है। आपने ही इस पुस्तक को प्रसिद्ध किया इस के लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद है।

५९ इसके अतिरिक्त अकोला निवासी ज्योतिर्विशारद पंडित भवानीशंकरजी शास्त्रीनें अपने अमूल्य समयमेंसे इस ग्रंथके संशोधन आदि कार्यों में जो कष्ट उठाया उसके लिए उनका मैं ऋणी हूँ। और सहर्ष धन्यवाद देता हूँ। इसी प्रकार ग्रंथ प्रकाशन में यानी छपाईके कार्य में राजस्थान प्रेसके प्रधान संचालक श्रीमान ब्रिजलाल बियानीजी ने यह पुस्तक शीघ्र छप जानेमें अच्छा ध्यान पुराया इसलिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

जैपुर राज्यान्तरगत
नाण-अमरसर निवासी
हाल मुकाम-एलिचपुर
विजया सं. १९८९

ग्रंथकर्ता—
गोपीनाथ दीनानाथ चुलैट
मु. सम्मलपूर
एलिचपूर शहर

सूचना—

मराठी स्कूलमें मेरा अध्ययन हुआ है; हिन्दी भाषापर मेरा अधिक प्रेम होनेके सबब मैंने यह ग्रंथ हिन्दी में लिखा है। अतः हिन्दी दृष्टिसे संभव है; शब्द रचना में अनेकों त्रुटियां रही होंगी; किंतु हिन्दी भाषा में यह मेरा पहिला ही प्रयत्न होनेसे मै आशा करता हुं कि प्रिय पाठक! विषयोंके भावोंपर दृष्टि रख, पुस्तक के मूल तत्वपर ध्यान देते हुए पढ़नेकी कृपा करेंगे।

—ग्रंथकर्ता.

ॐतत्सत्

युग–परिवर्तन।

– अर्थात् –

कलियुग का अंत और कृतयुग का आरंभ।

१. भारतीय तत्वज्ञोंसे—

यह बात छिपी नहीं है, कि युग मान की रीति कोई नई या निराली हो। क्योंकि श्रुति, स्मृति, पुराण और धर्मशास्त्र का आदेशभी इन्हीं युगोंको लेकर चलता है: अतः यह प्रथा बहुत पुरानी है। तब इस इच्छाका होना कोई आश्चर्य कारक नहीं कि युगोंके सम्बन्धमें हमारे प्राचीन ग्रंथोंके अंदर क्या क्या रहस्य भरा है? इस ओर जब हम हमारा ध्यान पुराते हैं, तब उसके प्रायः तीन ही भेद पाये जाते है। पहिला मानवी युग दूसरा देवयुग और तीसरा ब्राह्मदिन। इसी क्रमसे आगे किये जानेवाले हमारे अन्वेषण के अनुसार आजतकका कुल हिसाब ठीक ठीक लगानेसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है, कि विक्रम संवत् १९८१ शके १८४६ से कलियुग का अन्त होकर सतयुगकी संधि आरंभ होगई।

२. अब यहां हमें अपने कथनानुकूल हमारी बात सिद्ध करना है: किन्तु उस बातको परिपुष्ट करने के पहिले पाठकोंको यहां पर उन बातोंसेभी परिचित कराना परमावश्यक समझते है कि आधुनिक विद्वानोंने युगोंके सम्बन्धमें क्या क्या चर्चा की है और उसका सारभूत निष्कर्ष क्या है? अतः अब हम आपको उन विद्वानोंका प्रथम परिचय करा देते है, कि जिन्होंने युगोंके सम्बन्धमें गंभीर भावसे एवं गवेषणा पूर्ण गहरी छान-बीन की है।

३. लोकमान्य तिलक—आप गीता रहस्यमें कहते हैं कि "कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंका आदि-अन्त सन्धि-काल दो हजार वर्षका होता है। ये दो हजार वर्ष और सांख्य-मतानुसार पहले बतलाये हुए चारों युगोंके दस हजार वर्ष मिलाकर कुल बारह हजार वर्ष होते हैं। ये बारह हजार वर्ष मनुष्योंके हैं या देवताओंके? यदि मनुष्योंके माने जांय, तो कलियुगका आरंभ हुए पांच हजार वर्ष बीत चुकनेके कारण, यह कहना पड़ेगा कि एक हजार मानवी वर्षोंका कलियुग पूरा हो चुका, उसके पश्चात् फिरसे आनेवाला कृतयुग भी समाप्त होगया

और हमने अब त्रेतायुग में प्रवेश किया है। यह विरोध मिटानेके लिये पुराणोंमें निश्चित किया है, कि यह बारह हजार वर्ष देवताओंके हैं।............वर्तमान पञ्चांगोंका युग-परिमाण इसी पद्धतिसे निश्चित किया जाता है। (देवताओंके) बारह हजार वर्ष मिलकर मनुष्योंका एक महायुग या देवताओंका एक युग होता है।"*

४. लोकमान्य की लिखी समस्या सूक्ष्म दृष्टिसे देखी जाय तो, आज जो प्रचलित पंचांगोंमें गतकालि, शेषकालि लिखनेकी रूढ परिपाटी होरही है। उससे बहुत विरोध आयगा, इसलिये आपने अधिक चिकित्सा यहां नहीं की। क्योंकि सांख्य कारिका, मनु (१।६६.७३) भगवद्गीता (८.१७) और महाभारत (शां. २३१) इत्यादिमें युगोंके इधर बारह हजार वर्ष मनुष्योंके लिये बताये जा रहे हैं। उधर पुराण और पंचांगकार और ही कुछ मान रहे हैं। आदि बातोंकी सारांशता अवश्य आपको होगई थी। यह साफ साफ आपकी लेखिनी दिखा रही है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि पंचांग तथा पुराणोंकी (भ्रमित) पद्धति को ही आपने पर्याप्त प्रमाण नहीं समझा है। क्योंकि आगे चलकर आपने यह कहकर लेखनी रोकी है कि ज्योतिःशास्त्रके आधारपर + युगादि गणनाका विचार कै० शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने किया है, उसे देखो। अर्थात् इससे यह बात स्पष्ट होती है कि लोकमान्य ने दीक्षितजी की विचार पद्धति को पूर्ण मान्यता दी है।

५. पूनाके सुप्रसिद्ध विद्वान् ज्योतिर्विद् शंकर बालकृष्ण दीक्षितने अपने भारतीय ज्योतिःशास्त्र नामक (श. १८१८) ग्रंथमें युग सम्बन्धी गहरा विचार किया है। और उसमें स्पष्ट उल्लेख किया है, कि ज्योतिष-ग्रंथोंके मतसे शकारंभ के पूर्व ३१७९ वर्ष में कलियुग लगा ऐसा कहते हैं सही, किन्तु जिन ग्रंथोंमें उपरोक्त वर्ष युगारंभके बताये हैं वह ग्रंथ २६०० सौ वर्ष कलि लगनेके पश्चात्के बने हैं। सिवाय इन ज्योतिष ग्रंथोंके प्राचीन ज्योतिष या धर्मशास्त्र आदि ग्रंथोंमें कलियुगारंभ कब हुआ इसका कोई वर्णन देखनेमें नहीं आया है; और न पुराणोंमें खोजनेसे मिलता है। यदि कहीं होगाभी तो वह प्रसिद्ध नहीं है।

हाँ यह बात तो अवश्य है कि कुछ ज्योतिष ग्रंथोंके कथनानुसार यह वाक्य मिलते हैं कि कलियुगके आरंभ के समय सब ग्रह एकत्र थे (!) किन्तु गणितसे यह सिद्ध नहीं होता कि वह किस समय थे। यदि ऐसाभी थोड़ी देर के लिये मान लें कि सब ग्रह असंगत होंगे भी किन्तु भारतादि पुराण ग्रंथोंमें तो

* (गीतारहस्य हिन्दी. अ. विश्वकी रचना प्र पृ १९३)

+(हिं. गीतारहस्य पृ. १९३ की टीप देखो)

इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। हाँ उल्लेख मिलता है सिर्फ २६०० वर्षोंके पश्चात् जो सूर्य सिद्धांतादि ग्रंथ बने हैं उनमें; किन्तु यह सब ग्रंथ कलि-आरंभ होनेके २६ सौ वर्षोंके बीत चुकनेके बाद के हैं पहिलेके नहीं। पहिले तो मनुस्मृतिके कथनानुसार बारह हजार वर्ष वाली युगपद्धति ही प्रचलित थी।

जब यह बातही निश्चय नहीं थी कि कलियुग कब लगा? तब हमें यह ठीक ठीक प्रतीत होता है कि सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रंथोंके निर्माणके समयकी ग्रह-गति द्वारा उन्होंने उसीको कलियुगका आरंभ काल माना है जिस समय उनके गणितसे सब ग्रह एक स्थानपर आये थे। अतः अब हम इनके कथनसे यह बात निःसन्देह दिखा सकते हैं कि,—सूर्य सिद्धान्तके प्रथम [अर्थात् शके ४२७ के पूर्व] चार लाख बत्तीस हजार वर्षका युग मानने की वैदिक या वेदांग कालमें गणना पद्धति बिलकुल नहीं थी।

६. रावबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य एम्. ए. एलएल्. बी. इन्होंने "महाभारताचे उपसंहार" नामक पुस्तक लिखी है। जिसका कि हिन्दी अनुवाद सप्रेजीने महाभारत मीमांसा नामसे (१९२० ई. में) प्रसिद्ध किया है, जिसमें युगोंके बाबत तो अच्छी उत्तम आलोचना की है। आपका कथन है कि—"चतुर्युगोंकी वर्ष संख्या बारह हजार वर्ष होती है। इन बारह हजारोंका चतुर्युग अथवा महायुग या केवल युग होता था; और महाभारतकालमें ऐसी ही युग-कल्पना थी (पृ.४२४) इन बारह हजार वर्षोंकी संख्या युग है। ऐसे हजार युगोंके पूरे होनेपर ब्रह्मदेवका दिन पूरा होता है। मनुस्मृति और भारत आदिमें यही गणना रही और भारतीय ज्योतिःशास्त्रके आधुनिक ग्रंथोमें भी यही गणना ग्रहण की गई है" इतना सप्रमाणित वैद्यजीने समझाया, किन्तु आगे चलकर आप कहते है कि— चतुर्युगोंके बारह हजार वर्ष मानवी नहीं देवताओंके हैं। वैद्यजीने ऊपरकी सब बातें जैसी प्रमाण सहित बताई वैसेही यह युग वर्ष मानवी नहीं देवताओंके हैं (!) इस कथनको पुष्ट करनेके लियेभी अन्य किसी प्रमाणसे हो सिद्ध करना चाहिये था। किन्तु कुछ नहीं यहां केवल वैद्यजीका वचन ही प्रमाण मानना पड़ता है।

यहांपर पाठकोंको एक बात और भी बता देना अप्रासंगिक या अनुचित नहीं होगा कि महाभारत मीमांसा (पृ २२४) में एक गीता के श्लोकका प्रमाण

दिखाने शुए वैद्यजीने सहस्रयुगपर्यन्तं इसके बदले चतुर्युगमहस्रांत पाठभेद कर दिया है [भ. गी. ८.१७] यहां यह समझमें नहीं आता कि वैद्यजीने ऐसा पाठांतर क्यों किया? यदि यह अनुमान करें कि पाठमें भूलसे अशुद्धि [करेक्शन की गलती] रहगई होगी: तो स्वयं आगे चलकर इस बात पर खूब जोर दे रहे हैं कि—"चतुर्युगको ही सिर्फ युग कहा जाता था"! इसने दृष्टिदोषका अनुमान करना अनुचित है। इसके आगे एक महत्त्वपूर्ण महाभारतके श्लोकको इन्होंने कैसा अनावश्यक समझा है। देखो महाभारत [पृ. ४२७ वनपर्व अ. १८८] में बिलकुल स्पष्ट-स्पष्ट कहा है—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पतिः ।
एक राशौ समेष्यंति प्रपत्स्यति तदा कृतम् ॥

[इसका स्पष्टीकरण आगे किये जानेवाले हमारे निर्णयमें मिलेगा। सिर्फ यहां तो इस गरजसे बताया है कि वैद्यजी इस श्लोककी बाबत कहते हैं कि "गणितमें नहीं मालुम किया जासकता कि यह योग कब आयगा ! यहां वैद्यजीने प्रतिकूलता की टालमटोल कैसेभी करके विषयका प्रतिपादन किया है। अतः इस बातको दिखानेका मेरा मतलब नहीं है कि आजकल गणित प्राबल्यताके जमानेमें ऐसा कथन कहांतक सयुक्तिक हो सकता है। आगे चलकर [पृ. ४२६ में] वैद्यजी कहते हैं कि—"युगका कुछ-न-कुछ बड़ा परिमाण माने बिना...... ज्योतिषके लिये और कोई गति नहीं है। और ज्योतिषके लिये उपयोगी बड़ा अंक है याने गणितके लिये बहुतही उपयोगी है !

अब यहां पाठक स्वयं अनुमान करसकते हैं कि यहां प्रमाणोंकी सुसंगति है या वैद्यजीके वचन प्रमाण हैं ? सारांश वैद्यजी को जैसे बारह हजार वर्षोंके युगमान मापके प्रमाण मिले हैं और उन्होंने बताये हैं, उसी तरह उन्हींको दिव्यका या ३६० से गुणा करनेका एकभी प्रमाण नहीं मिला है। यह उन्हींके लेख से स्पष्ट होता है। अतः प्रमाण रहित बात जगत्-मान्य होती है या प्रमाणयुक्त? ऐसी समस्याके देखने पर वैद्यजी द्वारा वही बात सिद्ध है जिसे इन्होंने बारह हजार वर्षोंमें मनुस्मृति-भारत आदिसे बताया है।

७. पौर्वात्य विद्वानोंका परिचय देनेके पश्चात् पाश्चिमात्योंका भी संक्षिप्तमें परिचय दे देते हैं- प्रो. व्हिटने कहते हैं- कि *१२००० बारह हजार वर्ष देवोंके हैं यह कल्पना मनुकी है ही नहीं। वैसेही बर्जेसका भी कथन है कि देवोंके बारह हजार वर्ष नहीं मालूम किस आधार पर बताते हैं। इसके बाद मि. बेंटोलिनी

* बर्जेस्कृत सूर्यसिद्धान्तका भाषांतर पृ. १०

शोरी आस्ट्रियन और ग्रीक लोगोंकी कल्पनासे भी वे मनुके कहे वर्ष देववर्ष है यों नहीं मानते।

८. इस प्रकार जिन विद्वानोंने उक्त युगोंके परिमाणके तरफ ध्यान पहुंचाया है, उनकी कही हुई वर्ष संख्या का एवं बताई हुई व्यवस्थाका दिग्दर्शन और निरीक्षण करके आगे हमारा यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतीय ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य व पौर्वात्य अनेक आधुनिक विद्वानोंने उक्त युगमानकी समालोचना की है। किन्तु जो युगपद्धति वैदिक कालमें जिस रूपमें प्रचलित थी और स्मृति यानी धर्मशास्त्र ग्रंथोंमें जिसका व्यवस्थित स्वरूप मय कालपरिमाणके बताया उसका कालपरिमाण वर्तमानमें सदोष होगया है, या निर्दोष है? सदोष हुआ है तो कबसे व क्यों हुआ है यानी उसका कारण क्या है? और उसके सदोष होनेसे धर्मव्यवहार एव समाजमें क्या हानि पहुंची है और पहुंच रही है? इन प्रश्नोंको सामने रख कर जैसा विचार होना चाहिए था बहुधा ऐसा अभी तक नहीं हुआ है।

९. अतएव प्रिय वाचकोंकी दृष्टि अब हम इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं, कि उक्त विषयका सांगोपांग निरूपण करनेके लिये कौन-कौन प्रश्न उत्पन्न होसक्ते हैं कि, जिनके द्वारा उक्त युगपद्धतिका स्वरूप और उसका कालपरिमाण इनके सब तत्व प्रगट होजायँ? या यों भी कह सकते हैं कि इस विषयके मूल सिद्धान्त प्रकट होनेसे इस विषयमें प्रचलित सब शंका-कुशंकाओंका समाधान होजाय और पाठकोंको इसका सच्चा कालपरिमाणभी मालूम होजाय, क्योंकि इस प्रकारका निर्णय किये बिना हम ठीक ठीक व सरलतासे यह नहीं बता सक्ते कि अब युगपरिवर्तन होगया है अर्थात् कलियुग समाप्त होकर कृतयुगका आरंभ होगया है? अतः इस फैसलेके करनेमें निम्नलिखित प्रश्न खड़े होते हैं।

वेदादिकोंमें या वैदिक समयमें युग शब्दकी उत्पत्ति कबसे हुई? युगका अर्थ क्या है? युग किसे कहते हैं? कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये किसके नाम हैं? युगोंका इनके साथ संबंध क्यों लगाया गया? बाद कैसे बदले? श्रुति-स्मृति-धर्मशास्त्र-पुराण-इतिहास आदि कालमें कैसा कैसा परिवर्तन हो गया। इन सबकी एक वाक्यता किसमें और कैसी हो सकती है। और वे किस बातकी पुष्टि करते हैं? कलियुगारंभ होनेके पश्चात् के सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथोंमें युगमान के अंक कैसे बढ़गये? इतना लंबा-चौड़ा युगमान माननेकी इनको क्यों आवश्यकता हुई। इन अंकोंकी घटावढी एकसी है या भिन्न भिन्न? ऐसा करनेसे उन्हें क्या लाभ? क्योंकि उपरोक्त बातोंको जबतक हम पूरी तरहसे पाठकोंको न समझा दें तबतक संभव है हमारा तात्विक सिद्धान्तरूप अन्वेषण पाठकोंको पूर्णतया न समझे।

१०. अब हम उपरोक्त प्रश्नोंका सप्रमाण उत्तर देते हैं कि 'युग' यह एक कालका माप करनेका साधन है। जैसे ज्योतिर्गोल के किसी एक चक्र के पूर्ण होनेमें जितना समय लगता है उसको या उसके विभागको कालमाप का साधन कहते हैं। उदाहरणार्थ जैसे ६० पलकी=१ घटी, ६० घटीका=१ दिन, अर्थात् इसमें आजके सूर्योदयसे दूसरे दिनके उदय होनेमें बारह लग्नोंका एक चक्र पूर्ण होजाता है।

११. वैदिक कालमें प्रातःकालके हवनको प्रातःसवन और सायंकालके हवनको सायं सवन कहते थे। ऐसे दो सवन जिसमें किये गये हों; वह एक सावन दिन कहाता है। वर्तमानमें भी अहर्गणकी गणना इन्हीं सावन दिनोंसे की जाती है। और ३६० सावन दिन होनेपर एक सावन वर्ष होता है।

१२. [illegible]
[illegible]
ए[illegible]
बार नक्षत्रमण्डलको चंद्रमा लांघ जाय वह 'नक्षत्र वर्ष'। ऐसेही सूर्यके ३० अंशको १ राशि व १२ राशिका एक 'नाक्षत्र सौर वर्ष' कहलाता है।

१३. वैदिक कालमें संवत्सरके यज्ञोंका आरंभ वसन्तसम्पातके दिनसे किया करते थे। क्योंकि 'सूर्यके उदय होनेका क्रम उत्तरकी ओर बढ़ते हुए जिस दिन ठीक प्राची [1] दिशामें सूर्यके उदयको देखते उसी दिन या उस दिनके समीप उक्त यज्ञका आरंभ करते थे।[2] यह ज्योतिःशास्त्रका सिद्धान्त है कि उक्त दिनमें सूर्यकी स्थिति विषुवद् वृत्तपर होनेसे किसी भी नगरके ठीक ठीक पूर्व दिशामें उसका उदय होता है। और अहोरात्र मानकी समानता भी इसी दिन होती है। इसलिये उक्त साम्पातिक सौरवर्ष को "समाः"[3] व संवत्सर कहते थे। और इसीसे उत्तरायण व दक्षिणायनकी तथा वसन्तादि ऋतुओंकी गणना[4] की जाती थी।

---

[1] समे शङ्कु निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयोः शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कू निहन्ति सा प्राची ॥१॥ इस कात्यायन शुल्ब सूत्रमें लिखे मुआफिक यज्ञानयन प्रयोगमें शुद्ध प्राची दिशाका साधन करलेते थे। [2] सयत्प्राङुपोदेति तदेना प्राचीमभ्यजति स्वर्गलोकमभितया स्वर्गलोकमनश्नुते तस्या उत्तरत आरोहणम् ॥ तेनस्वर्गं लोकमुपनयत्यथ यो दक्षिणत एनान्ते ॥३॥ (शतपथ ब्रा २ ३ ३ १८३) [3] निर्जानिये शतमाना।

[4] "वसन्तो ग्रीष्मो वर्षास्ते देवा ऋतवः। शरद्धेमन्त शिशिरस्ते पितरः ... स यत्र उदगावर्तते देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायति। अथ यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄन् स्तर्ह्यभि गोपायति." (शतपथ ब्राम्हण १'२'३'१-८)

१४. वैदिक कालमें दर्शयागसे अमावास्याका, पौर्णमाससे पौर्णिमा तिथिका, चातुर्मास्य नामके यज्ञोंसे ऋतुओंका, आग्रयण यज्ञसे अयनोंका शोध अर्थात् व्यवहारोपयोगी ज्योतिषके तत्वोंका निश्चय तत्कालीन ऋषिलोग कर लिया करते थे। किन्तु छोटा हो या बडा हो सम्पूर्ण कालका नाप नाक्षत्र सौर संवत्सरसे ही किया जाता था। [१]

युग शब्दका पूर्वरूप

१५. वैदिक कालके आरंभमें एक वर्षमें पांच ऋतु[२] मानी जाती थीं। इन ऋतुओंमें होनेवाले यागोंके नाम इसप्रकार से थे—

"वसन्त ऋतूनां (१) कृतमयानां, (२) त्रेतायानां, (३) द्वापरोयानां, (४) आस्कन्दोयानां, (५) अभिभूरयानाम्"॥ (तैत्तिरीय संहिता ४. ३. ३.)

अर्थात्—"वसन्तऋतुमें कृत, ग्रीष्ममें त्रेता, वर्षामें द्वापर, शरदमें आस्कंद, हेमन्तमें अभिभूः" ऐसे पांच नाम कहे हैं। जो भी उपर्युक्त यागोंको यानी यज्ञप्रयोगोंको युगके नामसे नहीं कह कर अयोंके (अयानां) नामसे कहा है। और उनमें कलियागके बदलेमें आस्कंद व अभिभूयाग कहा है। फिर भी दो मासके युग (युग्मजोड) की एक ऋतु होनेसे ऋतुको ही युग कहते थे। और उस समय सूर्यकी परमक्रांति बहुत बड़ी होनेसे हेमन्तऋतुके दो मासतक लघुत्तम दिनमान और महत्तम रात्रिमान होता था। इस अतिरात्रमें अत्यंत हिम गिरनेके कारण यज्ञादि बंद रहते थे। बादमें जब उक्त हिमका अन्त होता था तब हेमन्त ऋतुका याग किया जाता था[३] इसलिये उपरोक्त पांच याग होते थे।

१६. कालान्तरमें जब रविकी परमक्रांति कम हो गई तब उक्त अतिरात्रके समयका हिमपात होना बन्द होगया; तब तीन तीन महीनेमें एक एक याग-ऐसे एक वर्षमें चार याग करने लगे व इन यागोंको उस समय स्तोम नामसे कहते थे व उनके नाम वाजसनेयिसंहिता में[४] 'कृत, त्रेता, द्वापर व आस्कंद' ऐसे उपरोक्तही नाम कहे हैं। किन्तु संहिता कालके बाद ब्राह्मण ग्रंथोंके निर्माण

---

[१] एव नाना समुत्थाना. काला सवत्सरं श्रिता.॥ अणुशश्च महशश्च सर्वे समनयन्ति तम्॥ सर्वैः सर्वैः समाविष्ट उह्यमन निरंतरं ॥१॥ (तैत्तिरीय आरण्यके १·२ जाम्णकेतुकेच)

[२] द्वादश मासाः पंचर्तवः संवत्सर इति। (यद्ववंब्राह्मणे प्रयाज ब्राह्मणम्)

[३] "हेमन्त शिशिरयोः समासेन" "हेमन्त शिशिरावृतूना प्रीणामि" ऐसा बह्वृच ब्राह्मणे कि प्रयाज प्रकरण में कहा है।

[४] 'कृतायादि नव दर्शं। त्रेतायै कल्पिन। द्वापरायाधि कल्पिन। आस्कदाय सभास्थाणुम्" (वाजस संहिता ३०·१८)

कालमें आस्कंद नामके जगह कलि [*] नाम कहा है। और इस विषयका स्पष्टीकरण उसी ग्रंथमें ऐसा किया है कि—

"ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत्, अथ ये पंच कलिःसः। तस्माचतुष्टोमः। त्रिवृत्पञ्चदश सप्तदश एकविंशः। एतानि वावतानि ज्योतींषि, य एतस्य स्तोमाः।" (तै. ब्रा. १.५.११.१)

अर्थात् '(१) चार स्तोमका कृत, (२) तीन स्तोमका त्रेता, (३) दो स्तोमका द्वापर और (४) पांचवे यागसमेत एक स्तोम का कलि ये चतुष्टोम कहलाते हैं। यानी वसन्त संपातको कृत होकर वहांसे ९०, १८०, २७० सूर्यके अंशोंपर त्रेता, द्वापर कलिके याग [स्तोम] किये जाते थे।

युगोंके भेद।

१७. इसप्रकार कृत, त्रेता, द्वापर व कालके नामोंकी उत्पत्ति व उपपत्ति [लक्षण] बताकर अब हम युग शब्दको सिद्ध करते हैं। क्योंकि हम उपर [स्तंभ १५] में बताचुके हैं कि उस समय ऋतुओंको युग कहते थे और स्तंभ १३ में उत्तरायणके वसन्तादि तीन देवऋतु और दक्षिणायनके तीन मनुष्य [पितर] ऋतु कहाती थीं। तदनुसार वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा इन उत्तरायणकी तीन ऋतुओंको देवोंके त्रियुग और शरद्, हेमन्त, शिशिर इन दक्षिणायनकी तीन ऋतुओंको नाहुष यानी मानुष (मनुष्योंके) त्रियुग कहते थे। [*]

१८. वाजस संहितामें [*] श्रवण नक्षत्रसे देव युगका आरंभ और पुष्य नक्षत्रसे मनुष्य युगका आरंभ ऐसे एक वर्षमें दो युग बताये हैं। इस देव युगका आरम उत्तरायणसे [*] होनेसे वसन्त, ग्रीष्म, व वर्षा यह तीन ऋतु इसमें

[1] कृताय सभाविनं। त्रेतायादि। नव दर्शं। द्वापराय बहि सद। कल्ये सभा सभास्थाणुं (तै. ब्रा ३ ४ १)

[2] "या औषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुग पुरा"

ऋक्संहिता व वा स १२ ७५

" । जाता ओषधयो देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा "

तैत्तिरीय संहिता

[3] " श्रवणे ९ स प्रथस्तम त्वागिरा दैव्यं मानुषा युगा।" (वा स १२ १११)

" 'अग्नेये मानुषा युगा यान्ति मर्त्येरिष "। (ऋ म ५।५२।४)

[4] " वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा ते देवा ऋतवः। शरद्धेमन्त शिशिरस्ते पितरः। सयत्र उदगावर्तते देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायति। अयस दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄंस्तर्ह्यभिगोपायति। (शतपथ ब्राह्मण २'२ १–४)

होती थीं और मनुष्य-युगका आरंभ दक्षिणायनसे होनेसे शरद, हेमन्त, व शिशिर यह तीन ऋतु इसमें होती थीं। मनुष्य युगमें चांवल, चना, मूंग, उड़द आदि उत्पन्न होकर अंतमें जौ गेहूं आदि औषधि इसीमें होती है * और देव युगमें इन औषधियोंका उपभोग लिया जाता है।

१९. उक्त देव मनुष्योंके त्रियुगों के यानी उत्तरायण और दक्षिणायनकी जोटके वर्षको युग कहने लगे कारण कि संवत्सर यज्ञके समय अग्निकी स्तुति करनेमें नीचे लिखा मंत्र कहा जाता था-

त्वां इदमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ॥
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विशान्ति नमसा निषेदिरे ॥

(साम संहिता अ० १५३ पृ० ७९८)

अर्थ—"हे अग्निदेव तुम हवन किये हुए द्रव्यको अमृतरूप करके देवोंको, अन्नरूप करके मनुष्योंको पहुंचाते (देते) हो; ऐसे देदीप्यमान विभुका मनसे ध्यान करनेमें स्थित हैं।"

इस संवत्सररूप युगमें सूर्यके बारह राशि भोगनेका एक चक्र पूर्ण होताथा और दो अयनकी जोड़ पूरी होती थी।

२०. आगे यजुर्वेद के समय पांच वर्षके चक्रको युग कहने लगे जैसा कि यजुर्वेदमें कहा है—

"संवत्सरोसि, परिवत्सरोसि, इदावत्सरोसि, इद्वत्सरोसि, वत्सरोसि."

[वाजसहिता २७.४५ तैत्तिरीयब्रा. ३·१०·४]

अर्थात्—'१ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्सर, ४ इद्वत्सर, और ५ वत्सर' यह वर्षके पांच नाम है। और वेदांगज्योतिषमेंभी इनही पांच वर्षोंका युग माना है—

"युगस्य पंचवर्षाणि", "पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षंप्रजापतिम्"

(ऋग्वेद ज्योतिष पाठ ३२ व १)

अर्थात् 'युगके पांच वर्ष है' 'पांच संवत्सररूप युगाध्यक्ष प्रजापति का' इत्यादि वचनोंमें युगके पांच वर्ष होते हैं ऐसा कहा है।

पितामह सिद्धान्तमें भी —

रविशशिनोः पंच युगं वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि।

(पचसिद्धान्तिका अध्याय १२ श्लोक १)

---

* ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ॥ पर्जन्या नाहुषा युगा मन्हारजांसि दीयथ. (ऋ. म ५·७३·३)

पाचही वर्षका युग माना है। और गर्गाचार्यने अपने ग्रंथमें इसी सिद्धान्त को लेकर उसका विशेष स्पष्टीकरण किया है।

२१. इन वेद और वेदांगके वचनोंसे यद्यपि मालूम होता है कि यजुर्वेदके उक्त मंत्रके निर्माणके समयसे तो वेदांग ज्योतिष तकके कालमें पांच वर्षको युग माननेकी प्रणाली थी। वैदिक कालमें १२ वर्षका भी युग मानते थे; जैसाकि ऋग्वेदमें ही कहा है—

दीर्घतमा मामते यो जुजुर्वान्दशमे युगे ॥ अपामर्थयतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥

अर्थात्—" ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषिने दशवें युगमें अत्यन्त वृद्ध होते हुएभी यज्ञानुष्ठान कर्म रूप रथका ब्रह्मा (ऋत्विज) बनके सारथीके सदृश उस युगको पार लगाया. "

२२. इस कथनसे ज्ञात होता है कि यहां पांच वर्षवाला युग नहीं है। क्योंकि पांच वर्षके दशवें युगमें यानी ४१ वर्षसे ५० वर्षमें वह दीर्घतमा इतना बूढा नहीं हो सकता, कि जिसके लिये आश्चर्य कारक उस कालमें कर्म करनेकी प्रशंसा उक्त मंत्रमें की है। इस लिये पांच वर्षसे कुछ बड़ा युग होना चाहिये। इस लिये तत्कालीन स्थितिके अनुसार खोज करनेसे पता चलता है, कि उस कालमें चंद्र और सूर्यकी स्थिति और गतिका जैसा उन्हें शोध लग गयाथा उसी तरह बृहस्पतिकी स्थिति गतिकाभी शोध लग गया था। तब चंद्रसूर्यके चक्र पूर्ण होनेपर जैसे ऋतु, अयन, वर्ष और पांच वर्षको युग मानते थे, ऐसेही बृहस्पतिके * १२ राशिके चक्र पूर्ण होनेपर युग मानते थे, क्यों कि इसकी एक राशि लगभग एक वर्षमें भुक्त होती है।

प्राचीन ज्योतिर्विद् गर्गाचार्य आदि युगका प्रमाण ऐसाही कहते हैं—

" युगस्य द्वादशाब्दानि तत्र तानि बृहस्पतेः ॥ "

" तिष्यादिच युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः ॥
बृहस्पतेस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादशवार्षिकम् ॥ "

गर्ग और ऋषिपुत्र (बृ. सं. ८१–१० की टीकामें)

अर्थात्—" बृहस्पतिके १२ राशि भोगने पर बारह वर्षका एक युग होता है। " ऐसा गर्गने तथा—" पौष महीनेसे बृहस्पतिकी १२ बारह वर्षमें १२ राशि जब मार्गशीर्ष महिनेमें पूर्ण होती हैं: इस बृहस्पति के चक्र भोगको वसिष्ठ, अत्रि, और पराशर ऋषियोंने युग कहा है; अतः यह वसिष्ठादि ऋषि अत्यन्त प्राचीन कालके होने चाहिये, क्योंकि कई वैदिक मंत्रोंमें इनके नाम आए हैं।

* 'बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यनक्षत्रमभि संबभूव.' [तै. ब्रा ३·१·१ तथा ऋ. सं. ४·५०·४

२३. इससे उपरोक्त वैदिक मंत्रके अर्थके संबंधमें मालूम होता है, कि यहां बारह वर्षका युग माना है। अतः "दीर्घतमा १०८ वर्षके बाद दशवें युगमें (१२×९=१०८ वर्षका) अतिवृद्ध होतेहुए भी" ऐसा इसका अर्थ होता है।

२४. यही बारह वर्षकी प्रणाली पौराणिक कालमें भी प्रचलित थी; क्योंकि भागवत पुराण (स्कंध ३ अ. ११ श्लोक १८) में और विष्णुपुराणमेंभी बारह वर्षकाही युग कहा है। ऊपर ५ वर्षका भी युग कहा गया है। अर्थात् ये दोनों प्रणालियाँ प्रचलित थीं; क्योंकि बड़ा काल नापनेके लिये बारह वर्षका युग और छोटा काल नापनेके लिये ५ वर्ष का युग मानना युक्तियुक्त है।

किन्तु आगे इन दोनों मानोंका एक ही युग प्रमाण माननेसे (१२×५=६०) साठ वर्षका एक युगमान होगया जैसा कि प्राचीन ग्रंथोंके अनुसार ज्योतिःसंहितादि ग्रंथोंमें लिखा है —

"चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषा विष्ण्विंद्रजीवाऽनलदैवतानि
चत्वारि मध्यानिच मध्यमानि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात्॥१॥"
(बृहत्संहिता ८·२६)

अर्थात्—" पहिलेके चार युगोंका फल उत्तम, बीचके चारयुगोंका मध्यम और अंत्यके चार युग अधम फल करते है। ऐसा ६० वर्षमें पांच पांच वर्षके बारह युग हो जाते है।

२५. संहिता ग्रंथोंमें उक्त पांच पांच वर्षके युगोंके नामभी बृहस्पतिके नक्षत्र भोगपरही कहे है। पांच वर्षमें बृहस्पति ११ या १२ नक्षत्रोंको लांघता है। तब माघ महीनेसे इस चक्रको आरंभ करके नीचे लिखे प्रकार ६० वर्षके युगके अन्दर १२ युगोंके नाम इस प्रकार है।—

युगोंकी संख्या	वर्ष संख्या	नक्षत्रोंके नाम	युगके देवता	संवत्सरोंके नाम व वर्ष
१	५	श्रावण	वैष्णवेयुगे	प्रभवादि पांच
२	१०	पुष्य	बार्हस्पत्ये	अंगिरादि ,,
३	१५	ज्येष्ठा	ऐंद्रेयुगे	बहुधान्य ,,
४	२०	कृत्तिका	हुताशयुगे	चित्रभानु ,,
५	२५	चित्रा	त्वाष्ट्रेयुगे	सर्वजित् ,,
६	३०	उ. भाद्रपदा	आहिर्बुध्न्येयुगे	नंदनादि ,,
७	३५	मघा	पैत्र्येयुगे	हेमलंब ,,
८	४०	उत्तराषाढा	वैश्वेयुगे	शुभकृत् ,,
९	४५	मृगशीर्ष	सौम्येयुगे	प्लवंग ,,
१०	५०	विशाखा	इंद्राग्नेयुगे	परिधावी ,,

युगोंकी संख्या	वर्ष संख्या	नक्षत्रोंके नाम	युगके देवता	संवत्सरोंके नाम व वर्ष
११	५१	अश्विनी	आश्विनेयुगे	पिंगलादि पांच
१२	६०	पू. फाल्गुनी	भाग्येयुगे	दुंदुभिआदि ,,

(बृहत्संहिता अ. ८ भट्टोत्पलटीकामें)

२६. इसीप्रकार वर्तमानमें भी इन्हीं साठ संवत्सरोंके नाम संकल्प आदिमें कहे जाते है। आधुनिक पंचांगोंमें भी इन्हीं संवत्सरोंके प्रभवादि नाम लिखे रहते हैं। अतएव साठ वर्षका यह युग है; क्योंकि इसका चक्र ६० वर्षमें पूर्ण होजाता है और इसे संहिता ग्रंथोंमें युग नामसे कहा है।

२७. इसके बाद ज्योतिःसिद्धान्त ग्रंथोंके कालमें उक्त युगोंका मान बहुत बढ़ता गया कारण यह है, कि ग्रहोंकी गति-स्थितिके गणितका चक्र अधिक अधिक वर्षसंख्या पर माननेसे उनको युगका चक्र भी बढ़ाना जरूरी हुआ। जैसे पौलिश सिद्धान्तमें इस युग परिमाणको (६०×२=१२० अथवा १२×१०=१२०) इसप्रकार बढ़ा दिया। रोमक सिद्धान्तमें २८५० वर्ष * का युग और सूर्यसिद्धान्तमें १८०००० वर्षका युग कहा है। आगे ब्रह्मगुप्त और वर्तमान सूर्यसिद्धान्तादि पंच ग्रंथोंमें * तो ४३२०००० तेंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंका एक युग बताया है। इस प्रकार ऋतुसे लेकर ४३ लाख २० हजार वर्ष तकके सब परिमाण युगोंके अर्थमें कहे गये हैं।

युग-भेदका उद्देश्य और अर्थ

२८ अब यहां इस शंकाके उपस्थित होनेमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह युग-मान पहिले दो मासका, फिर तीन मासका, अयनका, वर्षका, पांच वर्षका, बारह वर्षका, साठ वर्षका १२० वर्षका, २८५० वर्षका, १ लाख ८० हजार वर्षका, और अंतमें ४३ लाख २० हजार वर्षका बताया है। इन सबमेंसे वर्तमानमें कौनसा युग मानें और कौनसा नहीं?

२९. इस शंकाके समाधानमें यहां सिर्फ इतनाही कहना बस है कि—ये जितनेभी ऋतुसे लेकर लक्षावधि वर्षों पर्यन्तके कालके युग दिखलाये गये हैं; *उनका उपयोग अन्यान्य कार्योंमें होता था और जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—*

* 'रोमकयुगमर्केन्द्वोर्वर्षाण्याकाशपञ्चवसुपक्षा.'। २८५० वर्षका युग कहा है। (प. सि. रोमकसि. अ. १ श्लो. १५)

* 'वर्षायुते धृतिघ्ने' १८०००० वर्षका युग कहा है।
(पञ्चसिद्धान्तिकामें सूर्यसिद्धान्त अ. ९'१६)

युगोंकी अवधि.	उनका उपयोग.
दो महीनेका युग	...ऋतुका दर्शक
तीन महीनेका युग...	संपात और उससे ९०।१८० व २७० अंशके कालका
छः महीनेका युग...	...अयनका दर्शक
बारह महीनेका युग...	...सौर वर्षका ,,
पांच वर्षका युग	सौर, सावन: चांद्र, बार्हस्पत्य, नाक्षत्र मानका मेल पांच वर्षमें होता है उसका दर्शक
१२ वर्षका युग	...वृहस्पतिकी पूर्ण प्रदक्षिणाका दर्शक
६० वर्षका युग	सृष्टिमें होनेवाले भिन्न भिन्न फलित परिमाणका दर्शक
१२० पौलिशोक्त युग	...गणित साम्य सूचक
२८५० रोमकोक्त युग	...गणितके सुभीतेके लिये
१२००० प्रभाकरोक्त युग * ...	...गुरुकी अंश साम्य प्रदक्षिणाके लिये
१८००००.सूर्यसिद्धान्तोक्त ...	...भगण सिद्धयर्थ युग
४३२०००० ब्रह्मगुप्तादिप्रोक्त ...	...सूक्ष्म मानके भगणके लिये

उक्त लेखसे पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि युग शब्द कोई खास ज्योतिश्चक्रके पूर्ण होनेके कालको दिखानेके हेतुसे है।

अर्थात् ये सब बातें गणितकी साम्यता एवं सुलभताके लिये पृथक् पृथक् (वर्ष संख्या उन लोगोंने) युगोंमें संबोधित की हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हमारे धर्माचरण, आचार, विचार, व्यवहार आदि कुल बातें जिन युगोंके ऊपर निर्भर है वे युग ये ही हैं।

३०. जबकि यहां गणितार्थ युग-भाग अलग बताया गया तब धर्मार्थ युग कौनसा ? यह प्रश्न तुरंत ही पैदा होता है। क्योंकि जिस पर सब संस्कार (धर्माचरण-आचार-विचार रीति भांति आदि)और समस्त कार्य पूर्णतया निर्भर है।

—:— मूल युगमान —:—

३१. प्रिय पाठक! इसका उत्तर इसीमें है कि यहां हमारे लिये धर्मार्थ युग यही होसकता है कि जिसके आधारसे आज हमारे समस्त धर्माचरण-आचार

* 'प्रभाकर सिद्धान्त' ग्रंथ हमने बनाया है। वह थोड़े ही दिनोंमें प्रकाशित किया जायगा।

विचार-रीतिभांति संस्कार आदि चल रहे हैं। और वे उच्च कोटिके कहे जा रहे हैं। वैसेही श्रुति-स्मृति-पुराण-धर्मशास्त्र-ज्योतिष आदि ग्रंथोंसे माने जारहे हैं। उन्हीं ग्रंथोंके आधारोंको लेकर सबकी परस्परस्यता जिसमें आती हो, वे ही युग धर्मार्थ युग के पात्र हैं अन्यथा नहीं।

३२. अतः अब हमें यहां यह देखना परमावश्यक है कि श्रुति-स्मृति धर्मशास्त्र, पुराण आदि ग्रंथोंमें युगोंके विषयमें क्या क्या विचार किया गया है? इस ओर जब हम दृष्टि पहुंचाते हैं, तब अथर्वण संहितामें बारह हजार वर्षके युग वर्णन आया है। और वह धर्मकार्यादिकोंमें माना जाय ऐसा आदेशभी दिया है

देखिये। अथर्वण वेदमें कहा है कि–

शतं ते युतं हायनां द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्राग्नी विश्वेदेव स्तेनुमन्यतामहृणीयमानाः ॥ [अथर्व म अ १ सु ४४० २१]

सायण भाष्यमें—

चतुर्णां युगानां संधिसंवत्सरान् विहाय युगचतुष्टयस्य मिलित्व अयुतं (१००००) संवत्सराः स्युः तान् विभज्य कलिद्वापराख्ये त्रीणि त्रेता सहितानि चत्वारि कृतयुगसहितानि कुर्म इति आशास्यते।

अर्थात्—युग जो दस हजार वर्षोंका है, उसमें एक हजारमें एक-एक सौ दो हजारमें दो-दो सौ तीन हजारमें तीन-तीन सौ और चार हजारमें चार-चार सौ की पूर्वोत्तर-संधि लगानेसे बारह हजार वर्ष पूरे होते हैं। इसकी सचाईमें इन्द्राग्नि (विशाखा) और विश्वेदेवा (उत्तराषाढा) की ६० अंशकी तत्कालीन संपात गतिद्वारा उसकी सिद्धि बताई है[१]। इससे यही बात पुष्ट होती है कि दस हजार वाले युगमें चारों युगोंकी संध्या और संध्यांश जोड़नेपर महायुग बारह हजार वर्षका होता है। धार्मिक मान्यता भी इसी युगमान की है। इससे यह स्पष्ट है कि श्रुति-कालमें बारह हजार वर्षका युग माना गया। अब रहा स्मृतिकाल।

३३. स्मृतियां वैसेतो हमारेमें बहुतसी हैं किंतु उनमें अठारह स्मृति मुख्य मानी हैं[२] उनमेंभी मुख्य दो हैं, जो मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य नामसे

[१] उक्त मन्त्रके निर्माण कालमें वसन्त सम्पातकी गति ३ वर्ष ४ महिनम कला एक चलनकी थी; इस हिसाबसे २०० वर्षमें १ अंशकी यानी १२००० वर्षमें ६० अंशकी थी तदनुसार मन्त्रमें कहा है।

[२] १ अत्रि, २ विष्णु, ३ हारीत, ४ उशन, ५ आंगिर, ६ यम, ७ आपस्तंभ, ८ संवर्त, ९ कात्यायन, १० बृहस्पति, ११ पाराशर, १२ व्यास, १३ शंख, १४ लिखित, १५ दक्ष, १६ गौतम, १७ तप, १८ वाशिष्ठ इति।

जगत्में प्रसिद्ध हैं। इन सबमेंसे सिर्फ मनुस्मृतिमें ही युगपरिमाण और कल्पपरिमाणके वर्ष बताए हैं। बाकी पराशर स्मृतिमें विशेष करके कलिधर्म और युगोंके संक्षिप्त धर्म बताए गए हैं। शेष सम्पूर्ण स्मृतियोंमें युगोंके संबन्धमें कुछ नहीं लिखा है।

मनुस्मृतिमें युगोंके संबंधमें इस प्रकार लिखा है—

" ब्राह्मस्यतु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः। एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तान्निबोधत ॥६८॥ चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगं। तस्य तावत् शती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥ इतरेषु स संध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु। एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानिच ॥"

[अ. १-६७]

" ब्रह्माके अहोरात्रमें सृष्टिके उत्पन्न होने और नाश होनेमें जो युग माने जाते हैं, उस क्रमका ब्यौरा यहां दिखाते हैं। यानी चार हजार वर्षका कृतयुग और उतनेही सैकड़ेकी उसकी पूर्व संधी और वैसेही उत्तर संधि इसी क्रमसे तीन हजारको तीन-तीन सौकी दो हजारको दो-दो सौकी और एक हजारको एक-एक सौकी; संधि होती है। इस क्रमसे प्रति हजारको उतनेही सैकड़ोंकी संधि का संख्या-क्रम है। और यह संधि-क्रम इसी हिसाबसे रखा है "।

२४. इस हिसाबसे कुल जोड़ (योग) करनेपर संख्या बारह हजार वर्ष की ही आती है*। इसीमें ही एक चतुर्युग (चारयुग) पूर्ण होता है। जिसको देवोंका युग अर्थात् देवयुग या महायुग कहते है। इन देव युगोंके एक हजार बार होनेपर वह ब्रह्माका एक दिन [ब्राह्मदिन] होता है। ऐसा मनुजीने कहा है। वैसेही गीतोपनिषद्में भी कहा है कि—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥ रात्रिंयुगसहस्रांतां तेऽहोरात्र विदोजनाः ॥ [भ, गीता. ८.१७]

भावार्थ—वेही लोग ब्रह्मदेवके अहोरात्रके तत्वज्ञ समझे जाते हैं जो सहस्र युग पर्यन्तवाले ब्रह्मदेवके दिनमें और ब्रह्मदेवकी रात्रिमें सहस्र युगोंके अंतको समझते हैं। क्योंकि—

---

* यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्। एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया। ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥
(मनु १.७१-७२)

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥
(भ. गी. ८.१८)

सम्पूर्ण दृश्य मात्र [सृष्ट पदार्थ] ब्रह्माके दिनमें अव्यक्त [सूक्ष्मशरीर] मे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिमें उसी अव्यक्त में लय होजाते हैं। इससे यह स्पष्टही है कि यहां एकहजार युगोंका एक ब्राह्मदिन होता है। और उतने ही युगोंकी उसकी रात्रि। इसीको ब्रह्माका अहोरात्र कहते हैं। यह हुई अभीतक श्रुति, स्मृति तथा उपनिषद्की बात। अब पुराण इतिहासमें देखिये।

२५. महाभारतमें बहुतसी जगह समय और परिस्थितिको ही युगोंमें संबोधित किया है ×

❀ स्थितिपर युग का तोल ❀

महाभारतमें कृष्ण कहते हैं।

जब संग्राममें श्वेत घोडोंके सारथी कृष्णसे आग बबूलेकी तरह होने और गांडीव धनुषकी टंकारसे वज्राघात करने वाले अर्जुनको देखोगे; तब न तो त्रेता ही रहेगा न कृत और न द्वापर।

जब संग्राममें जप होमादि तेजके प्रखर तापसे सूर्यकी तरह, शत्रु सेनाको जलाते और अपनी सेनाकी रक्षा करतेहुए कुंतिपुत्र युधिष्ठिरको देखोगे; तब न तो त्रेता ही रहेगा न कृत और न द्वापर।

× यदा द्रक्षसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथीम् ॥ ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाप्याग्निमारुते ॥६॥
गाण्डीवस्यच निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥७॥
यदा द्रक्षसि संग्रामे कुंतिपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥८॥
आदित्यमिव दुर्धर्षं तपंतं शत्रुवाहिनीम् ॥ न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥९॥
यदा द्रक्षसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ॥ दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥१०॥
प्रभिन्नमिव मातंगं प्रतिद्विरदघातिनम् ॥ न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥११॥
यदा द्रक्षसि संग्रामे द्रोणं शांतनवं कृपम् ॥ सुयोधनंच राजानं सैंधवं च जयद्रथम् ॥१२॥
युद्धायापततस्तूर्णं वारितान् सव्यसाचिना ॥ न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥१३॥
यदा द्रक्षसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ ॥ वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥१४॥
विगाढे शस्त्रसंपाते परवीररथारुजौ ॥ न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥१५॥
(महाभारत उद्योग अ १४२।६–१५)

जब संग्राममें बराबरके हाथीको पछाड़ गिराने वालेकी तरह दुःशासनके कको पीकर, उन्मत्त हाथीकी तरह संग्राममें नृत्य करनेवाले बड़े बलवान् ।मिसेन को देखोगे; तब न तो त्रेता ही रहेगा न कृत और न द्वापर।

जब संग्राममें द्रोणाचार्य, भीष्माचार्य, कृपाचार्य, राजा दुर्योधन और संधुराज जयद्रथको,अर्जुनके द्वारा परास्त देखोगे; तब न तो त्रेता ही रहेगा न कृत और न द्वापर।

जब संग्राममें उन्मत्त हाथीकी तरह दुर्योधनकी सेनाको हिलाने वाले और चमचमाती हुई तलवारोंसे, शत्रुको जर्जर करनेवाले माद्रीके सपूतोंको देखोगे तब न तो त्रेता ही रहेगा न कृत और न द्वापर।

इस उपरोक्त कथानक ने तो हद कर दिया है, क्योंकि अब कलि [कलहकी] संभावना देख कृष्णने..."अब कलि होगा यानी कलह होगा" ऐसा कहा है। इन बातोंसे निःसन्देह यही बात पाई जाती है कि परिस्थितिके; अनुसार भी युग-कल्पना की जाती थी।

३६. महाभारतमें ऐसे अनेक कथानक हैं जिनसे स्पष्ट होता है, कि परिस्थितिकोही "युग" माना है। देखो युधिष्ठिरकी निंदा करनेसे [शां. प. ३९] जो चार्वाक मारा गया, उस चार्वाकका जन्म कृतयुगमें हुआ था। वैसे ही कर्णके विद्याध्ययनके समय कहा है; हे तात! तुह्मारे पूर्व पितामह देव-युगमें भृगुतुल्य हुए हैं। (शां. ३।१८.२२) इसी तरह इन्द्र मान्धातासे कहते हैं, कि इस कृतयुगकी निवृत्तिमें भिक्षावृत्तिके [भीख मांग कर उदर-पोषण करनेवाले] लोग बहुत होंगे। (शां, प. ६५।५५) हनुमान और भीमकी भेटमें हनुमानजी का वचन है कि थोड़े ही दिनोंसे यह कलियुग नामक युग प्रवृत्त हुआ है।

युगोंके संबंधमें भीष्मका उपदेश।

३७. आचार्य भीष्म युधिष्ठिरके प्रति कहते हैं कि—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूत् राजा कालस्य कारणम्॥
(महाभारत. शा. प. ७०.७९)

हे युधिष्ठिर! राजा कालके वशमें (कर्ता) कारणीभूत है; या राजाके वशमें काल है? इसमें आप संशयित न हों। इसलिये यहां यही विशेषता दिखाई

संधिरेष नरश्रेष्ठ त्रेतायां द्वापरस्य च (व. प. १८१)
एतत्कलियुगं नाम अचिराद् यत् प्रवर्तते (व. १

जाती है कि राजा ही कालका कारण है। क्योंकि जब सम्राट् दण्डनीति, शास प्रणाली और धर्माचरणको नीतियुक्त रखता है, तब निःसन्देह वह अपने बल प कृत-युगी प्रजा बना सकता है। जिधर देखो उधर धर्म-ही-धर्म दिखा देता है। फिर किसी की भी प्रवृत्ति अधर्म की ओर नहीं होती।

ततः कृतयुगी धर्मो ना धर्मो विद्यते क्वचित्।
सर्वेषामेव वर्णानां नाधर्मे रमते मनः॥
(म. भा. शा. ७०.८२)

३८. जहां कृतयुगी धर्म की प्रवृत्ति होती है, वहां अधर्म का संचार कभी नहीं होने पाता। उस समय अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति और प्राप्त-वस्तुओंकी र होने लगती है। वेदोंके तत्वज्ञ पैदा होते हैं और वैसेही उसका अनुकरण क वाले गुणिजन भी पैदा होते हैं। इसीप्रकार मनुष्य भी ऋतुओंके अनुसार स सुख भोक्ता एवं निरंतर आनन्दके भोगनेवाले होते हैं। मनुष्योंमें नवीन उत्सा की वृद्धि होने लगती है। आधिव्याधि के भी न होनेसे अल्पायुषी (थोड़ी उम्रके मनुष्य नहीं होते, जिससे विधवाएँ भी नहीं होतीं। उदारता बढ़नेके कार कृपणता (दीनता) नहीं रहती। वसुंधरा (पृथ्वी) भी धन, धान्य, कंदमूल, फूल और फलादि से परिपूर्ण रहती है। बस, यही कृतयुग के लक्षण हैं। (म. भा. शां प. ७०.८६)

३९. इसप्रकार वर्णन करके अंतमें भीष्मजी यह आदेश करते हैं कि* इन चारों युगोंका कारण राष्ट्रपति (राजा) ही हुआ करता है। क्या ही अच्छा हो, यदि आप भी सतयुगी अनुशासन करें! क्योंकि कृतयुग के आचरण से अत्यंत स्वर्ग [सुख] मिलता है, त्रेताके प्रवर्तनसे अत्यंत स्वर्ग नहीं मिलता। द्वापरमें जैसा किया वैसा ही भोगा और कलिके बर्ताव से राजा पापी होता है। यदि आपको धर्म-नीतिसे आचरण करना हो, तो कृतयुगकी राह पर चलिये (म. शां. प. ७०.१०५)

४०. पाठक! उक्त महाभारत के कथानकसे इस बातको तो आप समझ गये होंगे कि "युग" यहां समय और परिस्थितिको बतला रहा है। इन स बातोंके देखनेसे मानवी १२ वर्षोंका ही युग-मान उचित दिखाई देता है। इस मानसे परिवर्तन होना भी संभव है। क्योंकि ऐसी परिस्थिति आ जाने के लि मुख्य कारण राजाको ही भीष्मजीने बताया है। इससे हम यहभी जान सकते हैं

* राजा कृतयुगश्रेष्ठा त्रेताया द्वापरस्य च। युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥९८॥
कृतस्य कारणात् राजा स्वर्गमत्यंतमश्नुते। त्रेताया कारणात् राजा स्वर्गं नात्यंतमश्नुते॥९९॥
[illegible] ... कलेः प्रवर्तनाद्राजा पापमत्यंतमश्नुते॥१००॥

कि पहिले राजाके धर्माचरण तथा नीतिक बल पर १२ वर्षमें स्थित्यंतर करनेकी या मानवी युग बदलनेकी स्वाधीनता थी। इसको यदि राजव्यवस्थाका संबंध मान लें, तो अब हम उन महाभारतके प्रमाणों को बताते हैं, जिनका संबंध हमारी धर्म-व्यवस्थासे है।

एषा द्वादशसाहस्त्री युगाख्या परिकीर्तिता।
एतत्सहस्त्रपर्यंतमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ॥
(वन पर्व १८८)

४१. महाभारतके वनपर्व के १८८ वें अध्यायमें कलि, त्रेता, द्वापर, और कृतयुग इन चारों युगोंकी वर्ष-संख्या क्रमशः एक हजार, दो हजार, तीन हजार, और चार हजार वर्ष तक की है। और प्रत्येक युगकी संध्या तथा संध्यांश क्रमसे एक, दो, तीन और चार शतक हैं। इस क्रमसे चारों युगोंकी वर्ष-संख्या बारह हजार वर्ष होती है। इन बारह हजार वर्षोंका एक महायुग होता है। यह महायुग चक्र एक हजार बार घूमनेसे ब्रह्मदेवका एक दिन होता है। जैसा कि मनुजीने कहा है:—

उपरोक्त श्लोकसे भी यही तात्पर्य निकलता है कि यह बारह हजारकी संख्या मानवी वर्ष की है और इसीको देवयुग भी कहते हैं। यहाँ यह शंका होती है, कि ये बारह हजार वर्ष देव-वर्ष तो नहीं हैं? इसका समाधान यही है कि ये मानवी वर्ष ही हैं और इसको "देवयुग" भी कहते हैं इन वर्षोंको एक हजारसे गुणने-पर ब्रह्मदेव का एक दिन पूर्ण होता है।

एक ब्राह्म दिनमें देव-वर्ष-संख्या
त्रयः त्रिंशत् सहस्राणि त्रयश्चैव शतानि च।
त्रयः त्रिंशच्च देवानां सृष्टिसंक्षेपलक्षणा ॥ १ ॥
[म भा आ १-४९]

भावार्थ—तैंतीस हजार तीनसौ तैंतीस और एक तृतीयांश [३३३३३⅓] यह देवोंके सृष्टि-संक्षेप-लक्षणके देव वर्ष हैं। इसको ३६० से गुणा करने पर ब्रह्मदेवका एक दिन यह पूर्ण होता है [३३३३३⅓×३६०=१२००००००] जो बारह हजार मानवी वर्षके महायुगको अर्थात् एक देवयुगको एक हजारसे (आवृत्त) गुणा करने पर आते हैं।

४२. इससे यह स्पष्ट है कि ऊपर की गई शंका निर्मूल है। तात्विक दृष्टिसे अब तक यह श्लोक क्यों वंचित रहा: इसका आश्चर्य है। क्योंकि

वर्ष) के लिये अबतक भ्रम बना रहा, जो कि वास्तवमें मानवी वर्ष है। इससे १२००० मानवी वर्षका एक देवयुग या महायुग यानी चतुर्युग सिद्ध होता है।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगं ।
एतद्द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ॥
(वायु पु. अ ३११५५

भावार्थ—चार हजार वर्षोंका कृतयुग इसी क्रमसे १२००० बारह ह वर्षोंका एक चतुर्युग कहलाता है। अर्थात् जैसा महाभारतमें बारह हजार व एक देव युग बताया है; वैसा ही वर्णन इस वायुपुराणमें भी है।

कृतयुगारंभ की पहिचान।

यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पतिः ।
एकराशौ समेष्यंति प्रवस्यति तदा कृतम् ॥
(म भा. व. १८८)

भावार्थ—पौष मासकी अमावस्या, सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति इनका ए राशि पर इकट्ठा (अंशसाम्ययुति) होना कृतयुगकी प्रवृत्ति का द्योतक है अर्थात् ऐसी ग्रहस्थिति कृत (सत्य) युगकी प्रवृत्तिको ठीक ठीक बताती है।

४३. यहां गुरुकी राशिवाला युग जो प्रति बारहवें वर्षमें होता है वह मनुष्योंके लिये बताये बारह वर्षीय युग (मानव युग) के नापको दिखाता है। और अंशसाम्य योग तो बारह हजार वर्षके अंतमें ही आता है। इसलिये गणितसाम्य योग ही महाभारतमें स्पष्ट दिखा दिया है; वह [देव युग] मनुष्यों बारह हजार वर्षमें पूर्ण होता है। यानी गणितसे यह जाना जा सकता है। कृतयुग का कब आरंभ हुआ ?

भागवत पुराणमें युग–व्यवस्था

४४. अब लीजिये उन भागवतादि प्रमाणों को जिसकी कथा घर २ तथा मंदिर २ प्रतिदिन हुआ करती है। उस श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें क्या लिखा है!

भागवत तृतीय स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायमें लिखा है कि:—

२ अणु	=	१ परिमाणु	२ पक्ष	=	१ मास
३ परिमाणु	=	१ त्रसरेणु	२ मास	=	१ ऋतु
३ त्रसरेणु	=	१ त्रुटि	३ ऋतु	=	१ अयन
१०० त्रुटि	=	१ वेध	२ अयन	=	१ वर्ष
३ वेध	=	१ लव	१२ मास	=	१ वर्ष
३ लव	=	१ निमिष	१२ वर्ष	=	१ मानवयुग
३ निमिष	=	१ क्षण	१२०० वर्ष	=	१ देवयुग
५ क्षण	=	१ काष्ठा	१२००००००० वर्ष		१ ब्राह्म दिन
१५ काष्ठा	=	१ लघु	१ मानवी वर्ष	=	१ देव दिन
१५ लघु	=	१ नाड़ी	१५ ,, ,,	=	१ देव पक्ष
१२ नाड़ी	=	१ मुहूर्त	३० ,, ,,	=	१ देव मास
२ मुहूर्त	=	१ प्रहर	३६० ,, ,,	=	१ देव वर्ष
४ प्रहर	=	१ दिन	१२०००मानवीवर्ष १ चतुर्युग	=	१ देव युग
४ प्रहर	=	१ रात्रि			
८ प्रहर	=	१ अहोरात्र	१००० देव युग	=	१ ब्राह्मदिन
१५ दिन	=	१ पक्ष	३३३३३$\frac{1}{3}$देव वर्ष	=	१ ब्राह्मदिन

१ ब्राह्मदिन = सृष्टिकी आयु (उम्र)

इस अनुक्रमसे सम्पूर्ण अणु-परिमाणुसे ब्राह्मदिनतक सब परिमाण दिखाके कहते हैं कि:—

कृतं त्रेता द्वापारं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१॥

भावार्थः—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ऐसे चारों युगोंकी संख्या या अवधानमें दिव्य बारह वर्ष ही से बताई गई है। १२ दिव्य वर्षोंका स्पष्टीकरण इसप्रकार किया गया है—

चत्वारि त्रीणि द्वे चैके कृतादिषु यथाक्रमम् ।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥२॥
भा० तृ. स्कंध ११.१९

अर्थात् चार, तीन, दो और एक ऐसे कृतादि युगोंमें यथाक्रम सहस्रोंकी संख्या मिलाने पर द्विगुण सैंकड़ेसे संख्या बढ़ती है। यह क्रम नीचे बताया जाता है।

वर्ष) के लिये अबतक भ्रम बना रहा, जो कि वास्तवमें मानवी वर्ष है। इससे १२००० मानवी वर्षका एक देवयुग या महायुग यानी चतुर्युग सिद्ध होता है।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगं ।
एतद्द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ॥
(वायु पु. अ. ३१।५५)

भावार्थ—चार हजार वर्षोंका कृतयुग इसी क्रमसे १२००० बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग कहलाता है। अर्थात् जैसा महाभारतमें बारह हजार वर्षके एक देव युग बताया है; वैसा ही वर्णन इस वायुपुराणमें भी है।

कृतयुगारंभ की पहिचान।

यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पतिः ।
एकराशौ समेष्यंति प्रवस्यति तदा कृतम् ॥
(म. भा व. १८८)

भावार्थ—पौष मासकी अमावस्या, सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति इनका एक राशि पर इकट्ठा (अंशसाम्ययुति) होना कृतयुगकी प्रवृत्ति का द्योतक है। अर्थात् ऐसी महास्थिति कृत (सत्य) युगकी प्रवृत्तिको ठीक ठीक बताती है।

४३. यहां गुरुकी राशिवाला युग जो प्रति बारहवें वर्षमें होता है वह मनुष्योंके लिये बताये बारह वर्षीय युग (मानव युग) के नापको दिखाता है। और अंश-साम्य योग तो बारह हजार वर्षके अंतमें ही आता है। इसलिये गणितसाम्य योग ही महाभारतमें स्पष्ट दिखा दिया है; यह [देव युग] मनुष्योंके बारह हजार वर्षमें पूर्ण होता है। यानी गणितसे यह जाना जा सकता है कि कृतयुग का कब आरंभ हुआ ?

भागवत पुराणमें युग–व्यवस्था

४४. अब लीजिये उन भागवतादि प्रमाणों को जिनकी कथा घर २ तथा मंदिर २ प्रतिदिन हुआ करती है। उस श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें क्या लिखा है ?

भागवत तृतीय स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायमें लिखा है कि:—

२ अणु	=	१ परिमाणु	२ पक्ष	=	१ मास
३ परिमाणु	=	१ त्रसरेणु	२ मास	=	१ ऋतु
३ त्रसरेणु	=	१ त्रुटि	३ ऋतु	=	१ अयन
१० त्रुटि	=	१ वेध	२ अयन	=	१ वर्ष
३ वेध	=	१ लव	१२ मास	=	१ वर्ष
३ लव	=	१ निमिष	१२ वर्ष	=	१ मानवयुग
३ निमिष	=	१ क्षण	१२०० वर्ष	=	१ देवयुग
५ क्षण	=	१ काष्ठा	१२००००००० वर्ष		१ ब्राह्म दिन
१५ काष्ठा	=	१ लघु	१ मानवी वर्ष	=	१ देव दिन
१५ लघु	=	१ नाड़ी	१५ ,, ,,	=	१ देव पक्ष
१२ नाड़ी	=	१ मुहूर्त	३० ,, ,,	=	१ देव मास
२ मुहूर्त	=	१ प्रहर	३६० ,, ,,	=	१ देव वर्ष
४ प्रहर	=	१ दिन	१२०००मानवीवर्ष	=	१ देव युग
४ प्रहर	=	१ रात्रि	१ चतुर्युग		
८ प्रहर	=	१ अहोरात्र	१००० देव युग	=	१ ब्राह्मदिन
१५ दिन	=	१ पक्ष	३३३३३⅓देव वर्ष	=	१ ब्राह्मदिन

१ ब्राह्मदिन = सृष्टिकी आयु (उम्र)

इस अनुक्रमसे सम्पूर्ण अणु-परिमाणुसे ब्राह्मदिनतक सब परिमाण दिखाके कहते हैं कि:—

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१॥

भावार्थः—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ऐसे चारों युगोंकी संख्या यह अवधानमें दिव्य बारह वर्ष ही से बताई गई है। १२ दिव्य वर्षोंका स्पष्टीकरण इसप्रकार किया गया है—

चत्वारि त्रीणि द्वे चैके कृतादिषु यथाक्रमम् ।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥

भा० तृ. स्कंध ११.१९

अर्थात् चार, तीन, दो और एक ऐसे कृतादि युगोंमें यथाक्रम सहस्रोंकी संख्या मिलाने पर द्विगुण सैंकड़ेसे संख्या बढ़ती है। यह क्रम नीचे बताया जाता है।

	संध्या		सहस्राणि		संध्यांश		द्विगुणशत
	१००	+	१०००	+	१००	+	१२००
	२००	+	२०००	+	२००	+	२४००
	३००	+	३०००	+	३००	+	३६००
	४००	+	४०००	+	४००	+	४८००
		+		+		+	
योग	१०००		१००००		१०००		१२०००

४५. पहले जो बारह वर्ष का (मानवी) युग बताया उसको एक हजारसे गुणा करने पर १२००० वर्ष होते हैं। जिसे देवयुग कहते हैं। देवयुगको एक हजार से फिर गुणा करने पर १२०००००० वर्ष होते हैं। इनका एक ब्राह्म दिन होता है।

क्रम		
१२	मानवी वर्ष = १ मानवी युग	सृष्टिकी उत्पत्ति और लय
१२०००	,, ,, = १ देव ,,	
१२००००००	,, ,, = १ ब्राह्म दिन	
१२००००००	,, ,, = १ ब्राह्म रात्रि	

उपरोक्त भागवत के प्रमाणसे यह स्पष्ट सिद्ध हो चुका। इसमें यह बात समझमें नहीं आती, कि भागवत ग्रंथ के दिव्य शब्दका अर्थ ३६० से गुणा करनेका जो लेते हैं, वह किस आधार पर? यदि कोई प्रमाण मिला होता तो फिर केवल बारह वर्षका ही दिव्य शब्दसे क्यों उल्लेख करते? देखिये! इसके स्पष्टीकरणके लिये ही भागवतकी टीकामें श्रीधर स्वामी जैसे महानुभावने क्या अभिप्राय प्रकटित किया है।× यदि दिव्य शब्द का अर्थ ३६० से गुणा करनेका ही होता तो स्वामीजीने अवश्य अपनी टीकामें स्पष्टीकरण किया होता। अच्छा कभी दिव्य शब्द का अर्थ देववर्ष भी मानलिया जाय तो १२×३६०=४३२० चार हजार तीन सौ बीस ये अंक आते हैं। इन वर्षोंका कौनसा युग समझा जाय! क्योंकि अवतक जितने आधार बतलाये गये हैं और उनके प्रमाणसे जो युगकी गणना बताई गई है। उनमेंके किसीभी युग की संख्यामें ये वर्ष नहीं आते सारांश यह कि यहां निरुत्तर ही होना पड़ेगा। अस्तु,

४६. शायद हमारे पाठक इस विषय-मंथनसे कहीं भ्रममें न पड़ जांय इसलिये उन्हें फिर एक बार और स्मरण करा दिया जाता है कि—जो बात सत्य होती है, वही उसकी कसौटी पर उतर सकती है, दूसरी नहीं। जो पहले भागवतमें

× द्वादशभिर्वर्षसहस्रैः इति उत्तरश्लोक सामर्थ्यात् ज्ञातव्यं
अन्यथायत इति अवधानं संध्या संध्यांशो च तत्सहितैः—
भागवत. श्रीधरस्वामी टीका स्. ३. अ. ११

कथन किया है कि १२ बारह वर्षोंका मानव युग, १२००० बारह हजार वर्षोंका देवयुग और एक हजार देवयुग (१२००००००) का एक ब्राह्मदिन (ब्रह्मदेवका दिन) और उसीमें सृष्टिकी उत्पत्ति तथा लय हो जाता है। यही क्रम सच्चा सयुक्तिक और ठीक है।

वेद-कल्पज्ञ युग-ज्ञापक प्रकार—

युगे युगे भविष्यध्वं प्रवृत्तिः फल-भागिनः।
कल्पयिष्यंति वो भागान् ते नरा वेद कल्पितान् ॥
[भारत शां. ३४०-६२]

भावार्थः—युग २ के बीचमें होनेवाले प्रवृत्ति फल के भागों की समझने या बतानेकी जो कल्पना कर सकते हैं वे ही वेद-कल्पज्ञ (वेद वेत्ता) है। याने युग के विभागोंको वे ही ठीक बता सकते हैं जो वेद वाक्योंका सुसंगतियुक्त आकलन कर समझा सकें।

४७. इसके आगे भारतमें* यह भी कथन मिलता है कि कृतादिकों के जो विभाग बताए गये हैं, वे प्रत्यक्ष प्रयोग–सिद्ध (यज्ञद्वारा) वेद सूत्रमें प्रथमही प्रथम वर्णन किये गये हैं।

सत्ययुगमें सत्य और ज्ञान की क्रांति।

वैदिक ज्ञानकी ओर जब हम दृष्टि पहुँचाते हैं; तब पता चलता है कि तत्कालीन ऋषि लोग सूर्य-चंद्रादि ग्रहोंकी दिव्य ज्योतिरूप नक्षत्रात्मक देवताओंके विभाग द्वारा आकाशस्थ–स्थितिको यज्ञ प्रयोगोंसे प्रत्यक्ष दिखा कर युग आदिक कालके परिमाण निश्चित कर लिया करते थे; किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पद्धति (यज्ञप्रयोग पद्धति) शनैः शनैः कालान्तरमें विस्मृत होती-होती लुप्त-प्रायसी होने लग गई थी। इसका अधिक स्पष्टीकरण महाभारतके उस प्रकरण के देखनेसे हो जाता है, कि जहां पर उक्त बातें क्रूरताकी सीमामें पहुँच चुकी थीं। अर्थात् महाभारत कालमें उक्त बातोंके जानकार बहुत ही कम रह गये थे। इसीसे व्यासजी स्वयं लिखते हैं कि—

* यो मे यथा कल्पितवान् भागमस्मिन्महाक्रतौ। स तथा यज्ञभागार्हो वेदसूत्रे मया कृतः॥
म. शां. ३४०-६२

अष्टौ श्लोक-सहस्राणि अष्टौ श्लोक-शतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥८१॥
तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने!
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ॥८२॥
(महाभारत आदि अ. १)

४८. महाभारत के श्लोकोंमेंसे ८८०० श्लोक ऐसे गूढ हैं कि, जिनके तात्पर्य मैं और मेरा पुत्र शुक ही समझ सकता है; और संजय तो शायद ही जानता है इस वचनसे तो यह बात स्पष्टतया ज्ञात होती है, कि ८८०० श्लोक वाली समस्या इन्हींके समक्ष उलझनमें गिर गई थी। तभी तो उन्हीं श्लोकोंके अंतर्गतकी वार्ता शांति पर्व (अ. ३४०) में व्यासजी को स्वयं कहना पड़ा—

कथं भागहराः प्रोक्ता देवता क्रतुषु द्विज!
किमर्थं चाध्वरे ब्रह्मन्निज्यन्ते दिवौकसः ॥१५॥
ये च भागं प्रगृह्णन्ति यज्ञेषु द्विजसत्तम!
ते यजन्तो महायज्ञैः कस्य भागं ददाति वै ॥१६॥

"नहीं समझमें आता कि यज्ञोंमें देवताओंके विभाग किस कार्यके लि और कैसे किये जाते हैं? और वैसे ही वे देवता अपना विभाग लेकर उसका फल किस प्रकार प्रदान करते हैं?" इस कथनसे यह बात निःसन्देह स्पष्ट होत है, कि उक्त प्रत्यक्ष ज्ञान-भांडार वाली समस्या प्रगाढ़ तिमिरमें लुप्त हो गई थी इसीसे उक्त समस्या का निर्णय इसी शांति पर्व (अ. ३४०) में किया है कि—

देवा देवर्षयश्चैव स्वं स्वं भागमकल्पयन्।
ते कार्तयुगधर्म्माणो भागाः परमसत्कृताः ॥५६॥
(महा. शां. ३४०।५६)

४९. जिन देवता और ऋषियोंने अपने-अपने वैदिक एवं तात्विक शोधसे आकाशमें दिव्य ज्योति-रूप तारकापुंजों के जो विभाग निश्चित किये हैं, उन निश्चित किये हुए विभागोंको अन्य तत्व-वेत्ताओंने वास्तविक रूपमें अर्थात् प्रत्यक्षता में यथा-योग्य देख कर उन शोधकों के स्मारक रूपमें तात्विक शोधोंका नाम-करणभी उन्हीं शोधकों (देवता और ऋषियों) के नामके अनुकूल ही कर दिया। यह कार्य कार्त-युगी धर्मज्ञोंने ही किया है।

और यह बात निश्चित है, कि कृत-युगी धर्मज्ञों के ज्ञान-विज्ञान मय तेजसे अज्ञानका आचरण एक-दम दूर हो जाता है और वैदिक समस्याका वास्तविक रूप स्पष्टतया दिखाई देता है।

५०. यह कथन मेरा ही है ऐसाही नहीं; ये तो खुद महर्षि व्यासजीने ऐसी बहुतसी बातें लिख कर शांतिपर्वमें बार-बार कहा है कि—" गूढ समस्याओंका अज्ञानांधःकारमें डूबना और वैसेही प्रत्यक्ष ज्ञान-विज्ञान मय प्रकाशसे ऊपरको आजाना " यह युगोंका ही प्राकृतिक धर्म है। * अर्थात् जब-जब कलियुग आता है, तब-तब उक्त वैदिक अर्थ की विस्मृति हो जाती है। और कलियुग बीतने पर कृतयुग यानी सत्ययुगकी संधि आती है; तब-तब ईश्वरीय प्रेरणा एवं युग-प्रभावसे तत्कालीन मनुष्योंकी प्रवृत्ति नैसर्गिक धर्म की ओर हो जाती है।

यहां पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं, कि 'महाभारतके कालमें जो वैदिक अर्थ गूढ हो गया था तो भी व्यासजी उसे जानते थे ऐसा उन्हींके कथनसे पता चलता है, तो फिर ८८०० गूढार्थी श्लोक क्यों कहे? यदि कहे भी तो उन सबका सच्चा अर्थ क्यों नही बता दिया?'

इस प्रश्नका उत्तर यहां इतना ही बस है कि हमने आगे जो युगमानके वर्षों के टेबल [सारणियां] दिये है। उनके देखनेसे निश्चय हो जायगा कि जिस समय महाभारत लिखा गया उस समय कृतयुगका मध्य बीत चुका था' और महाभारत के काल निर्णय के संबंध में हमारे " वेद काल निर्णय ' नामक पुस्तकमें निश्चित किया है कि महाभारतका काल आजसे १९००० वर्ष पूर्वका है। ÷

५१. जब यह निश्चय हो गया कि महर्षि व्यासजीके समय कृतयुग आधेसे ज्यादा बीत चुका था तब युगोंके प्राकृतिक धर्म ही से सिद्ध होता है कि गूढ श्लोकार्थ के जाननेवाले भी परिवर्तित होने चाहिए। हाँ, इस बातके माननेमें कोई सन्देह नहीं, कि भारतके निर्माण कालमें महात्मा व्यासजीके अन्तःकरणमें जो कुछ भी स्फुरण हुआ; वह उस समय के मानुष्यक और युग-ज्ञान-शास्त्रको देखते बहुत ही उच्च कोटिका अर्थात् निःसन्देह अतींद्रिय ज्ञान था।

५२. अब जब हम इस बातको ठीक-ठीक समझ गये कि युग-मानका प्रभाव, वैदिक-ज्ञानकी उत्क्रांति और अपक्रांति पर होता है अर्थात्—कलियुगके प्रभाव से वैदिक ज्ञानका अज्ञानांधःकारमें डूबना, एवं कृतयुगके प्रभावसे वैदिक

* इसका अधिक खुलासा कृतयुगके लक्षण प्रकरणमें देखो।

÷ देखो हमारा वेदकाल निर्णय पृष्ठ २०७ पंक्ति ४

ज्ञानका प्रत्यक्ष ज्ञान-विज्ञान मय प्रकाशसे ऊपरको तैरना, यह युगोंका ही प्राकृतिक धर्म है,* तब इस बातकी खोज करना परमावश्यक हो गया है कि हम पहले शके १८४६ से कृतयुगका आरंभ हुआ लिख चुके हैं तो युगधर्मके अनुसार हमें वैदिक मंत्रोंका अर्थ भी असली स्वरूपमें ज्ञात हो जाता है या नहीं? और यह अर्थ ज्ञान केवल ग्रंथोंके ही प्रमाणोंसे ज्ञान होता है, या उस समयकी [वेदकालीन] समस्त बातोंका रहस्य आदर्श के समान स्पष्ट दिख जाने से?

५३. दूसरा यह भी प्रश्न खड़ा होता है कि भारतवर्षभरके सब ही पंचांगोंमें लिखा रहता है कि कलियुग के वर्षों मेंसे शके १८५१ में सिर्फ ५०३० वर्ष बीते और ४२६९७० वर्ष बीतने बाकी हैं। इस प्रकार जो गत-कलि और शेष-कलि लिखा रहता है सो यह परंपरा वैदिक है या नई? यदि नई है तो वेद-कालीन कौनसी? जब कि युग यह एक काल मापनका चक्र है, तब क्या ऐसे चक्रको शोध कर निकालनेका ज्योतिष का ज्ञान वेद कालमें हो चुका था? यदि हो गया था तो उस समयमें काल-गणना-पद्धति कैसी थी? उस समय पंचांग किन ग्रंथोंके आधार पर और कैसे बनाये जाते थे? और उनकी रचना किस युग-पद्धति के अनुसार थी?

इन उपरोक्त समस्त प्रश्नोंका सविस्तर सप्रमाण यथार्थ उत्तर मिले बिना साम्प्रत आबाल-वृद्धमें प्रचलित और घर-घरमें फैली हुई कलियुगकी कल्पनाको हम नहीं हटा सकते। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि उक्त कुल प्रश्नोंका निर्णय करना हमको अत्यावश्यक हो गया है।

---

* इसका स्पष्टीकरण 'कृतयुगके लक्षण' प्रकरणमें देखो।

वैदिक-पञ्चाग

— और —

युग-पद्धति पर आक्षेप।

१. अनेकानेक शास्त्रोंके लेख देखनेसे विदित होता है कि वैदिक काल-मापन-पद्धति और तत्कालीन पंचांग-साधनके संबंधमें कई विद्वानोंके निम्नोक्त आक्षेप उपस्थित होते हैं:—

"वैदिक कालमें ऋषि लोगोंको ज्योतिषका ज्ञान बिल्कुल नहीं था (!) [१] क्योंकि वैदिक ग्रंथोंमें ज्योतिष संबंधी कहीं भी उल्लेख नहीं मिलते (!) [२] वर्तमानमें जिस प्रकार हम पंचांग आदि साधनोंसे काल बतला सकते हैं, वैसे पंचांगादि साधनोंका उस समय आविष्कार नहीं हुआ था (!) [३] ज्ञात हो चुकी हुई बातोंको प्रकट करनेके लिए उस समय कोई नियमित प्रबन्ध नहीं था (!) [४] न कोई गणितआदि कलाओंका उस समय पता लगा था कि जिससे तत्कालीन ऋषि लोग कुछ गणित करके कालको लिख सकते (!) [५] ज्योतिषका ज्ञान तो दूर रहा किन्तु ऋतुओंके प्राकृतिक चमत्कार व उनके नियम भी उन (ऋषियों) को ज्ञात नहीं हुए थे। [६] इस लिए उस समयके लोग स्पष्ट चमत्कारको ही देवता समझ कर मन्त्रोंद्वारा उनकी प्रार्थना किया करते थे (!)*[७]

३. इन्हीं अग्नि, वायु, इंद्र, वरुण आदि स्पष्ट चमत्कारोंको देवता समझ कर उन्हें प्रसन्न करनेके लिए उस समयके ऋषि लोग यज्ञ करते थे+(!) [८] उनका उद्देश्य यह रहा करता था कि, स्वर्गलोकमें हमें उत्तम कोटिका सुख मिले (!) [९] ऐसे अदृष्ट फलकी कामनासे अर्थात् पारलौकिक सुखकी लालसासे उस समय यज्ञ किये जाते थे (!) [१०] और उन यज्ञोंमें उपर्युक्त निसर्ग देवताओंके गुणानुवाद अलङ्कारिक भाषामें गाये जाते थे।× [११]

४. जैसाकि; "रात्रिमें अग्निसे प्रकाश मिलता है अग्निसे शीत दूर होता है (वा. सं. २३.४६) गर्मीमें शीतल पवन अच्छा लगता है। वर्षा बरसानेवाला

* संस्कृत वाङ्मयाचा इतिहास पूर्व भाग प्रकरण १

\+ मराठी ज्ञानकोश वेदविद्या भाग २ दैवतेतिहास व यज्ञ संस्था.

× जैमिनि मीमांसा सूत्र वेदस्याऽर्थ प्रत्ययत्वाऽधिकरण ७ (११२६) पृष्ट २६

इंद्र है और समुद्र का राजा वरुण है। इन देवताओंके अनुग्रहसे जब हमें सुख की प्राप्ति होती है तो इन अग्नि, वायु, इंद्र, वरुण आदि देवताओंकी प्रार्थना एवं यज्ञ करना हमारा प्रधान कर्तव्य है" ऐसे श्रुति वाक्योंको ही मंत्र कहते हैं। ऐसे मन्त्र उन यज्ञोंमें कहे जाते थे-×[१२]

५. उनमें भोलापन व भीरुता इतनी थी कि, सर्प, रुद्र, यम, निर्ऋति, अर्थात् मृत्यु इनके भयसे इनको देवता समझ कर देवताओंके साथ ही इनकी भी यज्ञमें प्रार्थना व पूजा करते थे* [१३] उस समय सोम नामका बड़ा तेज मादक पेय होता था उसे पीकर सोम व सुरा अर्थात् शराब के गुण गाने लग जाते थे (१४) इसीलिए वैदिक ग्रंथोंका अधिकतर अंश इस सोम नाम्नी सुरा की स्तुति से ही भरा पड़ा है ÷। [१५]

६. जहां पूर्व पश्चिम दिशामें समुद्र था। वहांके ऋषिलोग कहते थे कि "पानीसे सूर्य निकलता है और फिर वह पानीमें ही डूब जाता है" इत्यादि श्रुतियोंसे मालूम होता है, कि सूर्यका उदय व अस्त पानीसे हुआ देखकर पानी से निकलना व पानीमें ही अस्त होना समझ लिया+(१६), तथा सूर्य स्वर्गलोकसे नीचे गिर जायगा ऐसा जान कर देवता डर गये थे; तब उन्होंने उस (सूर्य) को नीचेसे स्तवनों (स्तोत्रों) का आधार देकर उसे वहीं ठहरा लिया (१७) ∴ इन उदाहरणोंको देखनेसे अनुमान हो सकता है कि, उस समय व्यावहारिक ज्ञान की स्थिति कैसी थी और ज्योतिष के ज्ञान की स्थिति कैसी थी ? अर्थात् उस समयमें ऋषि लोग व्यावहारिक तथा ज्योतिषके ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ थे=

७. इस विषयमें लोकमान्य तिलक महोदयका कथन है कि "वैदिक कालमें ऊपर [स्तंभ २-६] के कथनानुसार अज्ञान स्थिति नहीं थी। चाहे उन्हें पूरी तौरसे ज्योतिषका ज्ञान न हुआ हो तथापि व्यवहारोपयोगी ज्योतिष का ज्ञान कुछ हो गया था। संवत्सर, मास, पक्ष, ऋतु व अयन आदि उन्होंने नियत कर लिए थे। क्यों कि उस समय वे उत्तम प्रकारकी यज्ञ प्रणाली जान चुके थे। इससे अमावस्या व पौर्णिमा के समय उस समयके यज्ञ किये जाते थे।

× डॉ॰ हन्टर कृत भारतका प्राचीन इतिहास

* संस्कृत वाङ्मयका इतिहास मराठी

+ मराठी ज्ञानकोश भाग २ वेदविद्यामें सौत्रामणि प्रकरण पृष्ठ १२१ व मराठी इयत्ता ६ का पुस्तक तथा भारतका इतिहास पृष्ठ १०-११ आर्योका चलन।

+ लोकमान्य मराठी वेदकाल निर्णय पृष्ठ ११४ [शके १८३९]

∴ शं. बा. दीक्षित का भारतीय ज्योतिःशास्त्र उपोद्घात पृष्ठ २

= डा॰ थीबो [भा. ज्यो. शा. पृ. १२८]

कई यज्ञ संवत्सर पर्यन्त चालू रहते थे। व उनका प्रारंभ वसन्त सम्पातके समय होता था। ऐसा आपने ओरायन याने वेद काल निर्णय और आर्टिक होम इन दि वेदाज् याने वैदिक कालमें उत्तर ध्रुव पर स्थिति नामक पुस्तकों में कहा है। तथा उस वक्तमें युग ५ वर्षका ही माना जाता था इसका भी कई जगह उल्लेख किया है।

८. ऐसाही ज्योतिर्विद् शंकर बालकृष्ण दीक्षितने भारतीय ज्योतिःशास्त्र नामक पुस्तकमें कहा है और आगे यों भी कहा है कि "उस कालमें ऋषि लोगोंको ग्रह, नक्षत्रोंका ज्ञान उत्तम कोटिका हो गया था। तथा उनको अंक-गणित आदि कलाओंका ज्ञान भी हो गया था। उस समय ५ वर्षका युग माना जाता था" इत्यादि बातोंके-दर्शक बहुतसे वैदिक मंत्रोंका अर्थ भी आपने लिखा है।

९. इसी प्रकार प्रो. अविनाशचंद्रदास, ज्यो. श्रीधर व्यंकटेश केतकर, गोडबोले, आदि भारतीय विद्वानोंने, तथा प्रो. मैक्स मूलर, प्रो. बेन्टली, प्रो. बायो और प्रो. वेबर आदि पाश्चात्य पंडितोंने अपने लेख, निबन्ध, व पुस्तकों में इस बातको कहा है कि ज्योतिष की कुछ मोटी २ बातों का तथा और भी कई बातोंके ज्ञानका आविष्कार वैदिक कालमें हो गया था। यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे संसारमें सबसे कोई पुरानी पुस्तक है तो वेद ही है।

१०. वैदिक समयमें ऋषि लोगोंको ज्योतिषका ज्ञान कैसा था इस विषय का प्रयास उपर्युक्त विद्वानोंने किया है। किन्तु ऊपर (स्तंभमें २-६) कहे हुए (१-१७) उदाहरण रूप आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर अभीतक जगत्के किसी भी विद्वान्ने नहीं दिया। अब यहाँ पर इस बातका निर्णय करना है कि वास्तवमें उस समय वैसी स्थिति थी या नहीं? यदि नहीं थी तो किन प्रमाणोंके आधारों से? इन्हीं कुल बातों पर हमें विचार करके उपर्युक्त १७ आक्षेपोंके उत्तर देने हैं।

११. और जिन विद्वानोंने युगोंका लाखों वर्षोंका परिमाण बताया है वे वेद-कालीन ज्ञान को जिस स्वरूपमें बतलाते हुए तदनुसार श्रुतियों का अर्थ बतलाने का कष्ट किया है; उनके लिखे हुए अर्थ को देखनेसे ज्ञात होता है कि सुपर्ण-चिति नामक वैदिक पंचांग साधन आदिमें कहे हुए पारि-भाषिक शब्दोंका अर्थ यथार्थ रूपसे इन विद्वानों को भी नहीं समझा था। इसलिये हमें यहां पर वेदके यथार्थ अर्थ को बतलानेवाले सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करना आवश्यक है। तथा उपर्युक्त [१-१७] आक्षेपोंका उत्तर देते हुए इन विद्वानोंके निश्चित सिद्धान्तों पर भी यथार्थ आलोचना करना है; जिससे वैदिक कालमें पंचांग कैसे बनाए जाते थे और उनमें युगपद्धति कौनसी थी यह स्पष्ट-तया मालूम हो जाय।

वैदिक कालमें ज्योतिष के तत्वोंका आविष्कार.

१२. वैदिक ग्रन्थोंके संहिता, ब्राह्मण व श्रौतसूत्र ऐसे तीन विभाग हैं। यद्यपि इन तीन विभागोंमें हजारों वर्षोंका अन्तर है तथापि उसमें मूल ज्ञानकी प्राप्ति संहिता कालमें ही हो गई थी। वह ज्ञान उत्क्रांति तत्वके अनुसार और कृत-युगके धर्मानुकूल समयमें ब्राह्मण व श्रौतसूत्रोंके कालमें क्रमशः बढ़ता गया। यह इसके साथके परिशिष्टमें दिये हुए २८ युगोंके वर्षोंको देखनेसे व उसके साथके वर्णन को पढ़नेसे आपको स्वयं मालूम हो जायगा। और उससे पाठकोंको यह भी ज्ञात हो जायगा कि श्रौतसूत्रकाल ही क्या उसके भी हजारों वर्ष पूर्वके संहिता [वैदिक] कालमें ही ऋषि लोगों ने व्यवहारोपयोगी ज्योतिर्विद्या के कई तत्वोंका पता लगा लिया था। उनको नक्षत्रोंका ज्ञान भली-भाँति हो चुका था। इससे उन्होंने नाक्षत्रमान निश्चित कर लिये थे। आकाशके जिस गोलावृत्तमें सूर्य हमें घूमता दिखाई देता है * उस क्रांतिवृत्तके समान २७ विभाग करके उन्हें धिष्ण्य अर्थात् नक्षत्र कहते थे। (स्तंभ ३६) देखिए……जैसा शतपथ ब्राह्मण. (३.५.१.१ पृ. ३६१) में कहा है कि—

व्विजा मानो है वास्य धिष्ण्याः। इमे समङ्का ये वै समङ्कास्ते विजामान एतऽ उ है वास्यैतऽ आत्मनः॥

अर्थात्—"यह धिष्ण्य [नक्षत्र] विजामान ही हैं क्योंकि समान अंकों पर इनकी स्थिति है और जो समानान्तर अंकवाले हैं, वे विजामान अर्थात् विद्यमान कहाते हैं। अतएव यह नक्षत्र भी आपस के सापेक्ष अन्तर से समान अंकों पर स्थित हैं।" इस प्रकार इस श्रुतिमें नक्षत्रोंको समान अंकों पर कहा है। इसमें अंशके अर्थमें अंक शब्द लिये हैं क्योंकि उस कालमें क्रान्तिवृत्तके ३६० अंशों को अंक, शंकु, व अक्षर [वा. सं. २३.५८]+ कहते थे तैत्तिरीय संहिता (४. ४.१०) में कृत्तिकादि २७ नक्षत्रोंके व उनके देवताओंके नाम तथा शत-पथ ब्राह्मण (३.२.२.२२) में इनकी समान स्थिति बतलाई है।

---

* "असौ य पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्य कृत न स देवाऽ अतिक्रमे" [ऋ. सं. १०.७.२१] भावार्थ—इस मार्गको सूर्यने आकाशमें निश्चित कर दिया है। इसी मार्गसे देव गमन करते हैं। इस मार्गका अतिक्रमण नहीं करते।

+ 'षडस्य ६ विष्टा निशतमक्षराण्यशीतिर्होमा १८० समिधो ह तिस्र॥ यज्ञस्य ते विदथा प्रब्रवीमि कतरोतारऋतुशो यजन्ति' अर्थात् ६ महीनेके १८० अक्षर तो १२ महीनेके ३६० अक्षर=अंश=सूर्यके दिन कहे हैं।

१३. इससे सिद्ध होता है कि वैदिक कालमें विभागात्मक २७ नक्षत्र निश्चित हो गये थे! इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त के समान १२,३ व ३६० विभागोंको प्रधि, नाभि व शंकु कहते थे * अर्थात् क्रान्तिवृत्त रूपी खगोलीय चक्रके ३६० शंकु याने अंश विभाग वैदिक कालमें ही निश्चित किये गये हैं। इनमें तीस तीस अंशोंके १२ विभागोंको उस समयमें ऋषि लोग प्रधि कहते थे। वर्तमानमें राशि कहते हैं। और १२०,२४०,३६० अंशोंके तीन विभाग को उस समय नाभि कहते थे आज कल उसे "काल" कहते हैं जोकि धूप, वर्षा व शीत काल कहलाता है।

१४. इन बातोंसे प्रमाणित होता है कि खगोलीय परिमाण-प्रणाली से क्रांतिवृत्त पर नाक्षत्रमान की नापनेकी विधि संहिता कालसे ही निश्चित हो गई थी। यह काल मापन उस वैदिक कालमें यज्ञोंद्वारा किया जाता था और कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, व आर्द्रा, आदि नक्षत्रोंको अग्नि ब्रह्मा, सोम व रुद्र, इन देवताओं के नामसे कहते थे। आकाशमें इन देवताओं के स्थान में सूर्य, चन्द्र, आदि की स्थिति को देख कर (उस वैदिक कालमें) नाक्षत्र मान को निश्चित कर लिया था। तथा जो कुछ हम भविष्यमें बतलायंगे, उन प्रमाणोंके अनुसार साम्पातिक परिमाण की भी कई विधियाँ निकल चुकी थीं और व्यवहारमें उनका उपयोग भी होने लग गया था।

वैदिक पंचांगोंका स्वरूप।

१५. परन्तु जिसप्रकार आज कल काल मापनेके लिए तिथिपत्र अर्थात् पंचांग व जन्त्री-क्यालेंडर बनाए जाते हैं; और ज्योतिषी लोग उनको छपा कर प्रकाशित करते हैं उसीके अनुसार सर्वसाधारण लोग समयका परिमाण मानते

---

* द्वादश प्रधय चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कउतच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताःषष्टि ३६० र्न चलाचलासः॥ (ऋ. स. २.३.२३) "द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्तिचक्रं परिद्यामृतस्य॥ आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च ७२० तस्थुः॥ येऽअर्वाचस्तॉऽउपराच आहुर्ये पराचस्तॉऽउऽअर्वाचऽआहुः" [ऋ. सं.२.३.१५,१६] 'त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च ३६० संवत्सरस्याहानि' 'सप्त च वै शतानि विंशतिश्च ७२० संवत्सरस्याहोरात्राः' (ऐतरेय ब्रा. २.२.६)

अर्थात्—मेष आदि १२=परिधि। ऋतु ६ के मास १२=अरे। अयनके २=वुदले अंक ३।७।१२ के ३=नाभि। ३६० अंश=अंक। ७२० अहोरात्र=अग्निहोम। ऐसे नाम लिखे हैं।

हैं। ऐसे पंचांग यद्यपि उस समय नहीं थे तथापि इन्हीं पंचांगोंके समान काल-दर्शक चिति नामक पंचांग उस समय भी प्रचलित हो गये थे। अन्यान्य चितियोंमें काल नापनेकी पृथक् २ विधियाँ हैं। तदनुसार तत्कालीन ऋषि लोग यज्ञ करके उन्हें प्रसिद्ध करते थे। और उसीसे सर्वसाधारण लोग उस कालको मानते भी थे।

१६. अन्यान्य कालोंको बतलाने वाली कई-कई चितियों का वर्णन संहिता [ऋ. सं. ८.६.१६.१७] में ब्राह्मण ग्रंथोंx [श. ब्रा. ५.२.८.९] में श्रौत सूत्रों [का. श्रौ. १६.१५४ पृ. ७२५] में *विस्तृत व स्पष्ट रीतिसे लिखा हुआ है।* उनमें १ द्रोणाचित्, २ रथचक्रचित्, ३ कंकचित्, ४ प्रउगचित्, ५ उभयतः प्रउगचित्, ६ समुह्य पुरीपचित् व ७ श्येनचित् ये सात चितियाँ मुख्य हैं। तथा इन सातों चितियोंका भावार्थ एक सुपर्ण चितिमें आजाता है। इसलिए; इन सातोंमें भी सुपर्णचिति श्रेष्ठ कही जाती है। इन चितियोंके प्रकारान्तरको प्रस्तार कहते थे। जैसाकि सुपर्णचितिके भी ५ प्रस्तार अर्थात् ५ प्रकार हैं*। उनमेंसे सुपर्णचिति की आकृति आगेके पृष्ठमें हमने बतलाई है। इसे श्येनचित् भी कहते हैं।

१७. इस सुपर्णचिति की रचना इस कुशलताके साथ की गई है कि इसके द्वारा नाक्षत्रमानके तिथि नक्षत्र मास पक्ष सूर्य नक्षत्र व सौर दिन तथा साम्पातिक मान के वसन्तादि ऋतु, उत्तर दक्षिण अयन व तोयन अर्थात् पर्जन्य नक्षत्र, दिन रात्रिमान, संवत्सरयुग और उस कालकी वर्ष संख्या, यह सब व्यवहारोपयोगी ज्योतिषके मान एक सुपर्णचिति नामक वेदकालीन पंचांग द्वारा+

---

x "आदित्येन दिवानक्षत्रैस्तेनासौ लोकोस्तिवृद् ॥१॥ अर्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् ॥४॥ त्रिवृद्देवत्रिणाव २७ स्यायतनम् ॥१३॥ (अ १० खंड १) ज्योति समाना भवति ॥३॥ बार्हत प्राचीन भास्कुरत (१०.२ ६) 'उपसत्सु दिदीक्षाणोऽनुग्र्यं भवत्येव च हि त्रयोदशो मासं चक्षते, (१० ३ २) संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः स एव प्रजापतिस्तस्य मासा एव सहदीक्षि (१०.३ ६) उपसद्भिर्देवलोकमेव सुत्ययाप्येति (१० ३.१०) ऐसा ताण्ड्य ब्राह्मणमें लिखा है

* उक्त चितियोंके चित्र, उनके भेद, उनकी रचना विधि व उनसे उस वैदिक कालमें काल-नापनेकी रीति कैसी की जाती थी इत्यादि विस्तारपूर्वक समग्र वर्णन, यज्ञ विज्ञान नामक पुस्तक में हमने लिखा है। अभी वह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है।

+"एतावद्वा व संवत्सर इन्द्रियं वीर्यं यदेतावत्स्तो द्वादशाग्निष्टोमास्त्रो द्वादशीरात्रको द्वादशामावस्या यावदेव संवत्सर इन्द्रियं वीर्यं तदेतेनाप्नुवा यत्रन्ये"(१०.३ ११) भूः पूर्वोतितयो भविष्यदुत्तर पृथिवी पूर्वोतितयो द्यौरुत्तरोऽग्नि पूर्वोऽतितयो आदित्य उत्तर प्राण पूर्वोऽतितयो उदान उत्तर (१० ४.१) तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रदाधार, पदैर्द्वितीयमक्षरैस्तृतीयं ॥३॥ तेजसा वा एते प्रयन्ति, तेजो मध्ये दधति तेजोऽभ्युदन्ति, ज्योतिषां एते प्रयन्ति, ज्योतिर्मध्ये दधति, ज्योतिरभ्युदन्ति, चक्षुषा वा एते प्रयन्ति, चक्षुर्मध्ये दधति, चक्षुरभ्युदन्ति (१० ५.५) ऐसा ताण्ड्य ब्राह्मणने स्पष्ट करदिया है।

वि. भू. श्रीमान् दीनानाथजी शास्त्री चुलेट

ने इस ग्रंथ के बनाने में पूर्ण सहायता प्रदान की है।

विदित हो सकता है और इसमें पांच वर्षका ही युग माना गया है। एक और विशेषता यह है कि सुपर्णचिति के एक युग के पांचों प्रस्तार बना लेने पर वह पंचांग हजारों लाखों वर्षके कालको ठीक ठीक बतला सकता है। वर्तमान कालिक पंचांग केवल एक ही वर्ष काम देते हैं। दूसरे वर्षका काल इन पंचांगोंसे मालूम नहीं होता। किन्तु सुपर्णचिति नामक पंचांगमें वैसी बात नहीं है। उक्त सुपर्णचितिसे आज भी वर्तमान कालीन कालको बतला सकते हैं।

१८. भेद इतना ही है कि-वर्तमान कालीन पंचांग के तिथि नक्षत्रादिकों के अंक व शब्द कागज़ पर लिखे हुए रहते हैं। वेद-कालीन चिति रूप पंचांगके तिथि नक्षत्रादिकोंकी इष्टकाएँ व समिधा वेदी पर रखी हुई रहती है। उक्त लेख के तिथि-पत्रको अब हम पंचांग कहते हैं। उस समयकी उक्त इष्टका मय वेदीको सुपर्णचिति व चिति कहते थे। आज कल के पंचांग भी आकाश के स्थितिदर्शक हैं। तदनुसार सुपर्णचिति आदि वैदिक पंचांग भी आकाश के स्थितिदर्शक हैं।

वैदिक पंचांगोंकी रचना।

१९. इसलिए अब हम पाठकोंको उक्त सुपर्णचिति की रचना किसप्रकार की है, उसका थोड़ा बहुत परिचय करा देना चाहते हैं। कई विद्वानोंको उक्त चिति विषयक श्रुतियोंका अर्थ नया मालूम होता है; क्योंकि उनके लिए इस प्रकार की अर्थ-कल्पना व चितिके बनानेकी प्रणाली सर्वथा नवीन है। ज्ञानकोष व विश्वकोष [मराठी व हिन्दी] में जिसप्रकार वैदिक मन्त्रोंका अर्थ बतलाया गया है उस अर्थ की अपेक्षा हमारे अर्थ करनेकी प्रणाली बिलकुल भिन्न है। इसलिए वे लोग वैदिक ज्ञान, तत्कालीन इतिहास व वैदिक कल्पनाओंसे बिल्कुल अपरिचित हैं। उनके लिए अब हम अनेक वैदिक प्रमाणोंके साथ विस्तृत रीतिसे इस सुपर्णचिति की रचना करनेकी विधि और उससे तिथि, नक्षत्र आदि काल-मापन किसप्रकार किया जाता है, वह हम यहाँ बतलाते हैं। इस चितिकी वेदीका चित्र गरुड़ की आकृति का होनेसे इसे सुपर्णचिति कहते हैं। अन्यान्य वर्षदर्शक सुपर्णचितिके भी कई भेद होते हैं। उनमेंसे सुपर्णचिति की प्रथम प्रस्तार नामक विधि हमने ऊपर [स्तंभ १६ में] बतला दी है। इसमें लाल अंक इष्टका-दर्शक हैं। प्रातःसवन [प्रातःकाल के हवन] के समय विषम (१,३,५व७आदि)

अंक व सायं सवन [सायंकालके हवन] के समय सम [२.४.६ व ८ आदि] अंक लिखे हैं। प्रातःसवन के समय सफ़ेद इष्टका और सायं सवन के समय काली इष्टका रखते थे। वसन्त संपातके समयसे आरंभ करके नाक्षत्रमान के सूर्य के अंश १,२,३,४ व ५ इस क्रमसे ३६० अंश एक चितिमें पूर्ण होते हैं। उन अंश के अंक हमने उक्त चित्र पर नीली स्याही से लिख दिये हैं। वैदिक ग्रंथोंमें ये ३६० अंशोंके अंक कहाते थे + उक्त चितिमें ३६० अंक पर अश्विनी नक्षत्रको पहिला देवता माना है क्योंकि "नक्षत्राणि रूपं, अश्विनौ व्याप्तम्" वाजससंहिता (३१.२२ में अश्विनी नक्षत्र को मुख्य आरंभस्थानीय लिखा है। इससे उक्त मन्त्र कहे जाने के समय वसन्त-संपात रेवतीके अंतमें व अश्विनी के आदिमें था ऐसा निश्चित होता है; और हमारे पासकी चितिमें माघ शुद्ध १ से संवत्सरका आरंभ लिखा है, सो जैसा का वैसा हमने प्रकाशित किया है।

२०. उक्त चितिके उत्तरकी ओरके पक्षको [१८० अंश पर्यंतके पूर्वार्ध विभागको] शुक्ल पक्ष व दक्षिणकी ओरके पक्षको [१८१–३६० अंश पर्यंत के उत्तरार्ध विभागको] कृष्णपक्ष कहतेथे क्योंकि—

यानि शुक्लानि तानि दिवो रूपं यानि कृष्णानि तान्यस्यै यदि वेतरथा यान्येव कृष्णानि तानि दिवो रूपं यानि शुक्लानि तान्यस्यै। (श. ब्रा. ३. १. ५. ३) इस श्रुतिसे विदित होता है कि उक्त चिति के उत्तर की ओर के पक्ष में सफ़ेद रंग की इष्टकाएँ दिन-मानकी एवं सूर्यके उत्तर दक्षिण ओरकी गमन-दर्शिका हैं; व काले रंग की इष्टकाएँ रात्रिमान-दर्शिका हैं।

२१. उक्त चितिके दक्षिण के तरफ़ की पक्ष में काले रंगकी इष्टकाएँ दिनमान की एवं सूर्यके दक्षिणोत्तर गमन की सूचक हैं। सफ़ेद रंग की इष्टकाएँ रात्रिमान की हैं। इसलिए दिन-दर्शक सफ़ेद इष्टकावाला शुक्लपक्ष व दिन-दर्शक काली इष्टकावाला कृष्णपक्ष कहाता था। तथा पाठकोंको स्पष्टतया समझानेके लिए उत्तर पक्ष में सफ़ेद इष्टकामें [ईंट] सूर्यके अंशोंके अंक लिखे हैं व दक्षिण पक्षमें काली इष्टकामें अंक लिखे हैं।

२२. उक्त चिति के चित्र में उत्तर के तरफ़ की इष्टकाओंके रखनेके समय सूर्यकी स्थिति भी विषुवत्-वृत्त के उत्तरकी ओर ही रहती है * इसलिए

+ क सं. २३–५८ के प्रमाणसे ऊपर स्तंभ ११ में इसका भावार्थ दिया है।

* एतामेव लोकानामभिजित्यै सूर्यो यथैर गत्वा काष्ठामभिसंपन्न तदेव प्रथमं द्विर्विर्तनीय शासनि [ऐ. ब्रा ३. २. १] यथा वै पुरुष एव विषुवान् तस्य यथा दक्षिणोर्ध एवं पूर्वार्धो विषुवतो यथोत्तरार्धो एवं उत्तरार्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते प्रवाहुर्यन्तः शिर एवं विषुवान् द्विदल संहित इव वै। विषुवानिति ह विषुवे भवन्ति (ऐ. ब्रा ४. ४. २२)

चिति के द्वारा उत्तरायण दक्षिणायन का भी ज्ञान हो सकता है; और इष्टकाओंके दक्षिणकी ओर के मुखसे अर्थात् कर्णाकार रेखाकी तरफके भागसे सूर्यका (दक्षिणोत्तरमें) गमन-मुख ज्ञात होता है। जैसा कि २७०-९० अंश पर्यंत दिन-दर्शक इष्टका के मुख उत्तरकी ओर हैं; और ९०-२७० अंश पर्यंत दिन-दर्शक इष्टकाओं के मुख दक्षिणकी ओर हैं। ९० अंश का अंक दिनमान की पूर्णता बतलाता है, व २७० अंक रात्रिमान की पूर्णता बतलाता है। उत्तरपक्षकी पंक्तियोंसे दिनमान व दक्षिण की पंक्तियोंसे रात्रिमान निश्चित हो सकता है।

२३. मासके भी दो पक्ष माने हैं। विषम पंक्तिको शुक्लपक्ष व सम पंक्ति को कृष्णपक्ष कहते थे। उनकी दर्शक सफेद व काले रंगकी ऐसी एक मासकी दो इष्टकाएँ उक्त चितिकी तरफ आरंभिक इष्टकाओं के पूर्व रख देते थे। जोकि दर्श [अमावस्याका] याग हुए बाद शुक्लपक्षकी व पौर्णमास-याग हुए बाद कृष्णपक्ष की-सफेद व काली-इष्टकाएँ रहती थीं। इन इष्टकाओंसे तिथि की गणना हो सकती है, और उक्त चितिके आगे के २४ इष्टकाओं के विभागको अर्थात् गरुड़ के मुखके तरफकी १२ तिथि और ११ नक्षत्रके विभागको चपाल कहते थे। इस चपालके ऊपर अधिक-मासकी इष्टका रखी जाती थी। जिसका आगे सप्रमाण वर्णन हम करनेवाले हैं। यहां केवल सुपर्ण-चितिके चित्रका परिचय मात्र बतलाया है। अब इस सुपर्ण चितिका उस समय कितना उपयोग होता था सो बतलाते हैं।

२४. इसमें आकाशस्थ सूर्य-चन्द्रकी स्थितिको इस तरह बतला दी है कि मानों लाखों वर्ष तक समान दशामें रहनेवाला आकाशका प्रतिबिंब-रूपी चित्र इसमें खींच दिया हो। इसकी आकृतिमें ऋतु, अयन, मास, पक्ष, तिथ्यादिकोंके ऐसे यथा-योग्य स्थान व समुचित नाम लिखे हैं, कि उनको देखनेसे उस कालकी ज्योतिर्विद्याके परिशोधनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी ही है। आज सूर्य आकाशमें किस नक्षत्रके किस विभागमें है, उसकी दक्षिणोत्तर में कितनी क्रान्ति है, दक्षिणोत्तरकी ओर कितना झुका हुआ उसका उदय होगा? इत्यादि ज्योतिःशास्त्रकी बारीकी का भी पता इस सुपर्णचितिके पंचांगसे लगेगा, इसीलिए लाखों वर्षके वैदिक कालमें काल-परिमाण करनेका कार्य इन चितियोंसे ही लिया जाता था। अतएव इन चितियोंके वर्णनमें हजारों वैदिक मन्त्र लिखे गये हैं।

२५. इस प्रकार वेद-कालीन अर्थके द्योतक यज्ञ, चिति, देवता, वेदी आदिके भौगोलिक नकशे और खगोलीय चित्रोंका वर्णन आदिका रहस्य अभीतक

पूर्णतया न जाननेके कारण वेद कालीन इतिहासका सूर्य अज्ञानांधक रूपी मेघोंसे आच्छादित हो रहा था। किन्तु इस वैज्ञानिक युगमें नये आविष्काररूपी प्रखर पवनके प्रभावसे अब वे अज्ञानताके मेघ हटते जा रहे है जो वैदिक यज्ञ आजतक केवल अदृष्ट फल के देनेवाले धार्मिक विधा समझे जाते थे; उन्हीं यज्ञोंको त्रैवर्गिक फल देनेवाले वैज्ञानिक प्रयो मानकर आज उनके द्वारा ज्योतिःशास्त्रीय एवं भौगोलिक-भूस्तर-शास्त्री प्रणालीसे उस समय के इतिहास बनाने का सुअवसर आ गया है। उसमें केवल एक सुपर्ण चितिके द्वारा एक हजार श्रुतियोंका अर्थ कैसा बराबर लगत है वह "यज्ञविज्ञान" नामक ग्रन्थमें हमने विस्तार पूर्वक लिखा है। और उसीमें तत्कालीन इतिहास भी लिख दिया है, कि किस कालमें कौनसी चिति प्रचलित थी। इस प्रकार प्रासंगिक रीतिसे उपर्युक्त सुपर्णचितिके रहस्यका दिग्दर्शन करके, अब हम सुपर्णचिति की वेदीके चित्र पर इष्टकाओंका उपधान कैसा करते थे व इसके सम्बन्धमें कौन २ से पारिभाषिक शब्दोंका उपयोग किया जाता था सो बतलाते हैं।

२६. कात्यायन शुल्व सूत्र के [†] अनुसार शास्त्र शुद्धरीति से [*1] दिक्सो धन करके उस काल में ऋषि लोग वेधलेनेकी प्रयोग शाला बनाते थे। उपर्युक्त चित्रके अनुसार सुपर्णचिति की नासिकाके स्थान पर एक पत्थरकी इष्टका रखते थे व उस पत्थर को [*2] नाक सदन [*3] कहते थे। इस प्रस्तर की मध्य रेखा उक्त चितिके ठीक मध्य रेखामें रहती थी व उसी रेखाके पूर्वकी तरफ एक यूप [*4] [बड़ा शंकु] खड़ा करते थे। उसके ऊपर गोल वृत्तके चार भाग करके उसमें ऐसी व्यवस्था की हुई रहती थी, कि उसके द्वारा तारोंके उदय

हमारे वेदकाल निर्णय भाग १ में † 'कर्कांचार्य का काल निर्णय' प्रकरण में (कलम ३-६) देखिये।

[*1] कात्यायन शुल्व सूत्रोक्त रीतिसे पूर्व दिशाको निश्चित कर उससे

[*2] 'त्रयस्त्रिंशद्देवताः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशत्' तमुनाक इत्याहुर्नहि प्रजापतिः कस्मै च नाकं [ताण्ड्य ब्रा. १०' १' १६–१८] ओको वै देवानां द्वादशा हो यथा वै मनुष्या इम लोक-मानिष्ठा एव देवता द्वादशाहमानिष्ठा देवता [स्वर्गाद्] वा एतेन यजते ॥ १५ ॥ एतो वै देवानां द्वादशाहो नाकहताया भव्यं ॥ १६ ॥ [ताण्ड्य ब्रा. १०' ५] "नाकं महिमानः पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" [वा. सं. ३१,१६]

[*3] श ब्रा ९' २' १' १४–१६

[*4] [श. ब्रा. ३' १' ४' ३] वर्तमान कालिक नगर मापनके शंकुके मुआफिक यूप नाम क शंकु होता था

अस्त व याम्योत्तर लंघन का काल विदित हो सकता था। इसी रेखा के पश्चिम की तरफ़ एक पत्थर रखा जाता था इस पत्थर पर यजमान खड़ा हो कर प्रतिदिन सूर्य चन्द्र का उदय और अस्त देखा करता था। उस पत्थरको विमान कहते थे। यहाँ सूर्यके उदय होनेका क्रम उत्तर की ओर बढ़ते हुए यजमान को जिस दिन उक्त नाकस्थल व यूप के मध्य हो कर पूर्व क्षितिज पर सूर्यके अर्ध बिम्बका उदय दिखता था उस दिन वे यज्ञका प्रारंभ करते थे।

२७. यह पहले बतला दिया है कि वसन्त संपात के ही दिन पूर्व दिशा में सूर्य उदय होता है; इसीसे इस वसन्त सम्पात से दूसरे वर्ष के वसन्त संपात पर्यन्त "संवत्सर सम्मितो यज्ञः" (श. ब्रा. ३ १. ३ १७) किया जाता था। क्योंकि "अहोरात्रे परिप्लवमाने यज्ञः" (श. ब्रा. ३ २ १ ४) दिन-प्रमाण व रात्रि-प्रमाण जब समान हो जाते हैं, तब इसका प्रारम्भ होता है। यह स्थिति वर्षमें एक ही बार आती है, इसी दिनसे रात्रिमान से दिनमानका बढ़ना प्रारंभ होता है; और दिनमानसे रात्रिमान घटने लगता है। तथा इसी दिन "प्राची मनु ''देव लोक मे वै तया उपावर्तते, क्रमध्वमग्निना नाकम्। इत्याह इमाने वैतया लोका क्रमते" [तै. सं. ५ ४ ७] पूर्व दिशामें उदय हुए सूर्यका प्रकाश स्वर्ग * [उत्तर ध्रुव] प्रदेश में जाता है। तथा उक्त यज्ञ में नाक सदन से प्रारंभ हुआ अग्नि होत्र संपूर्ण लोकों पर आक्रमण कर लेता है। इसलिये संपूर्ण वैदिक ग्रन्थों में संवत्सरका, यज्ञका, अग्निचयन अर्थात् चिति पर इष्टकाओं के रखनेका आरंभ वसन्त संपात के दिनसे करना लिखा है।

२८. उक्त संवत्सर सत्रको यजुर्वेदमें अग्नि सामवेदमें प्राजापत्य महाव्रत व ऋग्वेदमें महदुक्थ ‡ लिखा है। तथा शतपथ ब्राह्मण (६.५.२.९) में लिखा है कि "संवत्सरोऽग्निर्यावानग्निर्यावत्यस्य मात्रा तावत्तद्भवति" यह अग्नि संवत्सर रूप है; क्योंकि संवत्सर के ज्योतिर्गोलों की स्थिति के प्रमाण के समान ही इस अग्निकी चितिका प्रमाण रहता है। अथवा यों भी कह सकते हैं, कि संवत्सर का तिथ्यादिमान और अग्निकी इष्टकाओंका प्रमाण बिलकुल ठीक २ बराबर

* "तेन ज्योतिषा यजमानः पुरो ज्योतिःस्वर्गं लोकमेति" "देवाः प्रार्थयमानो इव (मत्वे) गच्छन्ति" ऐसा स्वर्गका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण [२ २ ११+१५] में है।

‡ "अग्निर्यजुषा, महाव्रत साम्ना, महदुक्थमृचामिति हि श्रूयते" (का. श्रौ. सू. १६.१८२ के कर्कभाष्य में श्रुति है।)

रहता है। अर्थात् संवत्सरका प्रारंभ=अग्निका आरंभ ⁂ संवत्सर के ऋतु अयन=अग्निके ऋतव्य व लोक नामक इष्टका ⁂२ का मान परस्पर समान रहता है। इस लिए संवत्सरको यहाँ अग्नि कहा है।

२९. इसके यज्ञ प्रयोग को गवामयन यज्ञ कहते थे क्योंकि—

"गावो वा आदित्या आदित्यानामेव तदयनेन यन्ति"

(ऐ. ब्रा. ४.१७) सूर्य की किरणें गौ कहाती हैं उन किरणों की अयन (गति-स्थिति) इस यज्ञसे ज्ञात होती है; इसलिए उक्त संवत्सर यज्ञ को गवामयन यज्ञ कहते हैं। तथा इमांल्लोकान गच्छन्निमल्लोका एषोऽग्निश्चितस्तस्माद्गौरिति श्रूयात् (श. ब्रा. ६.१.२.३५) "यह अग्नि सुपर्णचिति के लोकोंमें गमन करता हुआ नियमित गतिसे संवत्सरको पूर्ण करता है; इसलिए इसे गौ कहना चाहिए" यही नहीं वरन् "इमा मे अग्न इष्टका धेनवः धेनुरेवैनाः कुरुते ता एनं कामदुघाः" (तै. सं. ५.४.२.४) यह हमारी अग्नि की इष्टका गौ के तुल्य है। कामधेनु के समान हमें तिथि नक्षत्रादिको वतलाती है। इत्यादि श्रुतियोंसे सिद्ध होता है कि उस वैदिक कालमें संवत्सर यज्ञ ही गवामयन यज्ञ कहाता था।

३०. इस प्रकार संवत्सर यज्ञ और गवामयन इनकी एकता वतलाकर अब इसपर इष्टका [ईंट] किस प्रकार रखते थे सो वतलाते हैं। उपर्युक्त सुपर्ण-चितिके नक्शे में तिथि, नक्षत्र, मास व ऋतु आदिके अलग २ स्थान दिये हैं। उन पर इष्टका क्रमसे रखने थे जिनके अंक भी लिख दिये हैं। उनके क्रमसे उक्त सुपर्ण-चिति पर इष्टका रखते थे। इस विधिको इष्टकाओं का उपधान कहते हैं। उनमें पहली इष्टका वसन्त ऋतुके स्थानमें रखी जाती थी ⁂ क्योंकि वसन्त ऋतु ही इस यज्ञकी आधार भूमि है। आगे तिथि की इष्टका तिथ्यादि क्रमसे व नक्षत्रोंकी इष्टका नक्षत्र के देवताओं के क्रमसे रखी जाती थी।

⁂ "[illegible] प्रथमा चितिरेषा [illegible] लोको वसन्तऋतु[illegible]" (श. ब्रा. [illegible]) "[illegible]" (श. ब्रा. १.२.४० १०.३०) [illegible] [तै. स. ५.५.१ [illegible]]

⁂२ "यो वा अग्निमृतव्य[illegible] ... ...[illegible]" (तै. सं. ५.३.६.५)

⁂ "[illegible] प्रथमा चिति [illegible] वसन्त ऋतु [illegible]।" [श. ब्रा. ७.१.२.३१] [illegible]। [illegible] [श. ब्रा. १.४.६.१०]

३१. इस प्रकार गवामयन नामक संवत्सर यज्ञ की इष्टका सुपर्ण-चितिकी वेदी पर यथाक्रमसे रखी जाती थी । इसलिए इन इष्टकाओंकी गणनासे उस कालमें काल-परिमाण किया जाता था। परन्तु उस समय के यज्ञ कुछ ऐसी विचक्षण प्रणालीसे किये जाते थे, कि उनकी प्रत्येक बातसे काल-ज्ञान रूपी अर्थकी प्राप्ति होती थी । जैसा कि-तेषामारंभे-अर्थतो व्यवस्था तद्वचनत्वात्॥४८॥ अर्थात्परिमाणम् ॥५७॥ फल, कर्म, देश, काल, द्रव्य, देवता, गुण सामान्ये॥१५१॥ तद्भेदे भेदः॥१५२॥ "अतएव फल, कर्म, देश, काल, द्रव्य, देवता, त्याग, परिमाणावगमात्काल परिमाणावगमोर्थो यज्ञे भवति ॥ देवभाष्यम् ॥ (का. श्रौ. सू. अध्याय १)

अर्थात्—इन यज्ञोंके आरंभकी व्यवस्था मन्त्रोक्त अर्थ-प्राप्तिके लिये ही की जाती है। ॥४८॥ और जिस परिमाणके करनेसे हमको अर्थ-लाभ हो सके उसी प्रकारके यज्ञका प्रमाण रहता है ॥५७॥ अतएव यज्ञका फल, यज्ञकी क्रिया, यज्ञका स्थल, यज्ञ करनेका काल, उसके हवनीय द्रव्य,—उसके अन्दर-हवनीय देवता और उसके प्रीत्यर्थ दान इन सबके गुणोंकी समानता देख कर यज्ञमें इनका उपयोग किया जाता था ॥१५१॥ यदि भिन्नता हुई तो उस वस्तुका परित्याग किया जाता था ॥१५२॥ इसीलिए देवभाष्यमें कहा है कि "फल आदि सातों बातोंके करनेसे काल-परिमाण रूपी अर्थकी प्राप्ति यज्ञसे ही होती है। " अतः इस नियमके अनुसार यज्ञकी उपर्युक्त ७ बातें उस यज्ञको सिद्ध करनेवाले प्रमाण रूप होनेसे तत्कालीन ऋषि लोग इनको भी काल-दर्शक प्रमाण मानते थे।

३२. यज्ञ का फल यह है कि उससे यथार्थ काल का ज्ञान हो। अर्थात् तिथि नक्षत्र, मास, ऋतु, अयन आदि मालूम हों। यह फल जिस यज्ञ के अनुष्ठानसे बराबर मिल सके वह (१) फलार्थ दर्शक प्रमाण है। इस प्रकार की वेध-क्रिया के कर्म से काल-दर्शक अर्थकी प्राप्ति हो सकती है यह (२) कर्मार्थ दर्शक प्रमाण है। अन्यान्य प्रदेश में इसप्रकार यज्ञ करनेसे उसकी फलप्राप्ति होती है। जैसा कि सूर्यके उत्तरायण के समय उत्तर दिशाकी ओरके आहवनीय नामक कुंडमें, व दक्षिणायन के समय दक्षिण प्रदेश के गार्हपत्य नामक कुंडमें अग्नि का हवन करते थे यह (३) देशार्थ दर्शक प्रमाण है। जब वसन्त ऋतुका आरंभ होता है, तब चिति पर ऋतव्य नामक इष्टका रखी जाती है व जिस समय सूर्यास्तकाल में चन्द्रोदय होता है, उस समय पौर्णिमा की तिथिकी इष्टका रखी जाती है। इसप्रकार अमावस्या पौर्णिमा आदि कालों को देख कर तत्काल दर्शक इष्टकाओंका रखना यह (४) कालार्थ दर्शक प्रमाण है। वसन्त व शरद् ऋतुमें जौ व चाँवल की फसल

आती है; इसलिए वसन्तादि तीन ऋतुओंमे जौ का शाकल्य व शरदादि तीन ऋतुओंमें चाँवलका शाकल्य हवन किया जाता है यह (५) द्रव्यार्थ दर्शक प्रमाण है। सूर्य चन्द्र की जिस देवताके निकट स्थिति होती है, उसी देवता की इष्टका पर समिधाका आधान किया जाता है यह (६) देवतार्थ दर्शक प्रमाण है। जिस वस्तुके दान देनेसे उस काल के काल विभाग का परिमाणादि स्वरूप विदित हो सके ऐसी वस्तु का दान करना* यह (७) त्यागार्थ दर्शक प्रमाण है।

३३. इसप्रकार अर्थशास्त्र के नियमोंके अनुसार काल-मापन रूपी अर्थ-प्राप्ति उस वैदिक काल में उपर्युक्त ७ प्रमाणों से होती थी। वैदिक काल में उक्त अर्थ-दर्शक कथन को अर्थवाद कहते थे। ऐसे अर्थ वैज्ञानिक प्रमाणोंसे ही सिद्ध होते हैं। और काल ज्ञान रूपी यज्ञ का फल प्रत्यक्ष होनेसे कर्म, देश, काल, द्रव्य, देवता व त्याग; ये सब उसी कालको प्रत्यक्ष सिद्ध करते थे। इससे सिद्ध होता है, कि वैदिक काल के यज्ञ, काल-मापन करनेके तत्कालीन ज्योतिःशास्त्रीय प्रयोग थे। इन्हीं यज्ञोंके द्वारा उस समय के सुपर्ण चिति आदि के पञ्चांगों की रचना होती थी। वैदिक भाषामें इसे 'चयन' कहते थे। चितिके ऊपर इष्टकाओंका रखना, यही उस समय के पंचांगोंका बनाना है।

३४. परन्तु उपर्युक्त यज्ञ के ७ प्रमाणों में देवतार्थ दर्शक प्रमाण को पढ़ कर जिज्ञासा होती है, कि संवत्सर यज्ञ के फल, कर्म्म, देश, काल, द्रव्य व दान यह उसके अर्थ दर्शक प्रमाण हो सकते हैं? क्या देवता प्रत्यक्ष दिख सकते हैं? यदि दिखते हैं, तो उनकी आकृति व स्वरूप कैसे हैं व कितने हैं उनके नाम क्या हैं, वे किस समय कैसे आते हैं व कैसे जाते हैं और उनकी पहिचान क्या है, उनके द्वारा यज्ञ में काल-गणना कैसे की जाती है? इत्यादि अनेक प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं। और इन प्रश्नोंको हल करनेसे उक्त देवता विषयक-प्रश्नका स्पष्टीकरण उत्तम प्रकारसे हो जाता है। वह इस प्रकारसे है —

---

* वेदाग ज्योतिषकाल निर्णय प्रकरण कलम (६७) में सबसे बड़े दिनमान के समय अक्षयतृतीया के दिन पानी के घट का या कुष्माड (कोहड़ा) का दान अर्थात् बड़ीवस्तुका दान दिया जाता है। और सबसे छोटे दिनमान के समय आँवला नवमी (कार्तिक शुक्ल ९) के दिन आँवलेका अर्थात् छोटी वस्तुका दान दिया जाता है। इन वस्तुओंके छोटे बड़े आकारसे यानी छोटेबड़े दिनमानके ज्ञानसे यज्ञकी व्यवस्थाका परिमाण रहता था।

३५. वैदिक ग्रंथोंमें लिखा है कि-

"यथाऽऽयतनं वै एतेषा×सवनभाजो देवताऽऽगच्छन्ति" (तै. स. ७.५.६)

"एतानि वै धिष्ण्यानां नामानितान्ये वै भ्यः एतदन्वदिक्षत्"

(श. ब्रा. ३.२.६.११)×

अर्थात्:-'सवन के याने हवन के सेवन करने वाले देवता इन आयतनों के अनुसार यानी अपने २ देव मन्दिरों के अनुरूपसे; आते हैं' और यह 'धिष्ण्योंके अर्थात् देव मन्दिरोंके नाम हैं। इनके अनुरूप ही उनके देवताओंका हवन किया जाता है।" ये श्रुतियाँ हैं, इनसे पता लगता है, कि देवताओंके आयतन 'धिष्ण्य' हैं जिन्हें देवमन्दिर कहते हैं। इस धिष्ण्य नाम से प्रतीत होता है कि उनमें देवता निवास करते है। तभी तो नक्षत्रोंको "धिष्ण्य" यानी मंदिर कहा है।

३६. किन्तु अब यह जिज्ञासा होती है कि ये देवमंदिर कहां हैं, कैसे हैं, और उनमें देवताओंका आगमन कैसे होता है? इत्यादि प्रश्न उत्पन्न होते हैं किन्तु आगे की श्रुति के देखनेसे ये सारे संदेह दूर हो जाते है। जैसा कि-

देवगृहा वै नक्षत्राणि। यानि वा इमानि पृथिव्याश्चित्राणि तानि नक्षत्राणि [तै. ब्रा १.५.२.६]

अर्थात्—"ये नक्षत्र ही देवताओंके दिव्य मंदिर हैं व पृथ्वी में आकृति विशेषको-चित्र कहते है उसके समान होनेसे-उन देवताओंके मंदिरोंको चित्र (नक्शे) भी कहते है।" अर्थात् नक्षत्रोंके आकृतिरूप ही देवता हैं।

३७. इस सम्बन्ध में श्रुति है कि—

चित्रं देवाना मुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः (वा. स ७.४२)

भावार्थ-'मित्र, वरुण, व अग्नि, देवताओं के अनीक मुख्य=योग तारों* को

× 'इम वा व देवा लोक पदनिधनेनाभ्य जयनमु वर्हिर्णिधनेनान्तरिक्ष दिङ्निधनेनामृतत्व मीनिधनेनागच्छन् ब्रह्मवर्चसमयनिधनेनावरुन्धतास्मिनेव लोक इह निधनेन प्रत्यतिष्ठन् (ताड्य ब्रा १०.१२.३) अर्थात् पद, वर्हि, दिङ् इ निधन नामक सामवेद के मन्त्रोंकी मात्रा व अक्षरोंकी गणनासे देवताओंको निश्चित करते थे।

* अग्निर्वैदेवानामनीकम्सेनाया वै सेनानी रनीकम्। (श ब्रा ५.२.५.१) तथा-"श्येनोसि गायत्रछन्दा अनुत्वारभे इन्द्रवन्तो वनेमहि ॥१ ३ ८॥ ऋतधामासि स्वर्ज्योति॥९॥ समुद्रोमिविश्वव्यचाः ॥१०॥ अहिरसि बुध्न्य॥११॥ अजोस्येकपात्॥१२॥" (ताड्य ब्राह्मण १ ४) अर्थात् सुपर्ण [श्येन] चितिमें गायत्री छंदानुसार इन्द्र (संपात स्थान) से आरम करता हू। ऋतुओंमें मुख्य स्वर्ज्योति=वसंत ऋतुमें मंडल पूर्ण होनेपर विश्वव्यचा, अहिर्बुध्न्य व अजैकपात् नक्षत्रोंको उच्चैःश्रवा *Pegasus* नक्षत्र विभागमें निश्चित करता हू। [आगेके स्तम्भ ४१ में उक्त देवताओंके नक्षत्र लिखे है] इसप्रकार देवताओंको देखकर ईंटें रखते थे। [पूर्वा, उत्तरा भाद्रपदा के चित्र देखिये]

बतलानेवाला मघाका चिन्ह (नक्षत्र) उदय हुआ है" इसका तात्पर्य यह है कि मघा नक्षत्रको-इसमें अनुराधा, शततारका व कृत्तिका नक्षत्रों के चतुरस्र विभागका दर्शक कहा है। और इससे निश्चय होता है कि, मघा नक्षत्रसे यह नक्षत्र ९०,१८०,२७० अंश + के स्थान के मुख्य तारावाले नक्षत्र हैं।

ज्योतिः शास्त्रीय गणित प्रणालीसे-इनके-कदंबाभिमुख भोगके अंश ९० के अन्तरसे इस प्रकार हैं:—चक्षुः १२७, मित्र २१७, वरुण २०७, अग्नि ३७ करीब ९० अंशके सब हैं।

३८. इस प्रकार इन नक्षत्रोंका सापेक्ष अन्तर सबका समान है। अर्थात् ६॥ नक्षत्रोंका सबमें अन्तर है। आज कलके कोष ग्रंथोंमें ✻ सेना=पलटनके अर्थमें अनीक कहा जाता है। किन्तु वैदिक कालमें ✻ सेनापतिका नाम अनीक था। क्यों उस समय नक्षत्र पुंजके मुख्य तारेको-जिसे आज कल योग तारा कहते है-अनीक कहते थे? क्योंकि योग ताराओंसे ही. अंशात्मक अन्तरकी गणना हो सकती है। यह उक्त श्रुति कथित देवताओं के सापेक्ष अन्तरकी समानतासे स्वयं ही सिद्ध होता है कि; नक्षत्र, चिन्ह. धिष्ण्य, आयतन, व देव-मन्दिर. ये शब्द सब एक ही अर्थके द्योतक हैं।

३९. तारका, व नक्षत्र इनकी व्युत्पत्ति भी श्रुतिमें इसी प्रकार बतलाई है—

सलिलं वा इदमन्तरासीत्, यदतरन् तत्तारकाणां तारकत्वम्॥
यो वा इह यजते अमुष्म लोकं नक्षते तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्॥
(तै ब्रा १-५-२-५)

इसका भावार्थ यह है कि— "आकाश रुपी जलके अन्दर तिरानेवाली नौका रुप ये तारकाएँ है। इसलिए इनको देख कर जो यहाँ यजन करता है उसके स्थानमें क्षति-न्यालती नहीं हो सकती इससे इनको नक्षत्र कहते हैं।" इससे सिद्ध होता है, कि वैदिक कालमें खगोलीय मापन (क्रिया) नक्षत्रोंसे किया जाता था। नक्षत्र ही देवताओंके स्थान-दर्शक है। अतएव नक्षत्रका उदयकाल ही देवताका आगमन काल व नक्षत्रका अस्तकाल ही देवताका जानेका काल और

+ "शिर्तीयस सवितासहितना श्रीरजासि परिभूर्भीरोचना॥ निर्योदिर पृथिवीमिमय: इन्यानि निभिर्नैगभिनो रक्षनिम्मना ॥४॥ देवेभ्यो॥ प्रथम यज्ञियेभ्योऽमृतत्व सुवति "भाग" मुत्तमम्॥५॥" [ऋ सं ३ ८] इस प्रकार देवताओंमें काल विभाग किया जाता था।

✻ 'अनीके हरी मने मन्ये' इस मेदनी कोशमें युद्ध व सेना को अनीक लिखा है।

✻ वैदिक कालमें वेदद्वारा निश्चित किये हुए नक्षत्रोंके सापेक्षन्तर विभागके "[१] अग्नि [२] अनीक [३] सोम [४] वरुण [५] विष्णुक्रम व [६] प्रजापति" इस प्रकारका क्रम था। (श. ब्रा ३ ३ ५-१ ८)

नक्षत्र लोक ही देवताओंके लोक अर्थात् स्थान विभाग है। तथा इन नक्षत्रों के दर्शन ही देवताओंके प्रत्यक्ष दर्शन हैं।

४०. जब कि यह सिद्धान्त निश्चित हो गया कि, देवता व नक्षत्र एक ही रूप हैं तब यह जाननेकी इच्छा होती है कि, वैदिक ग्रन्थोंमें इनके नाम रूप व संख्या किस क्रमसे लिखी हैं; और उनकी पहचान के लिए ऋषि लोगोंने क्या क्या साधन कर रखे थे कि जिससे वे उक्त देवताओंके आवागमन काल क्रमसे जान सकें। किन्तु तैत्तिरीय संहिता (४.४.११) व ब्राह्मण * (३.१.१) के देखनेसे ज्ञात होता है कि कृत्तिकादि सत्ताइस नक्षत्रोंके अग्नि आदि सत्ताईस देवता हैं। वैदिक ग्रंथोंमें इनका आरम्भ कृत्तिका नक्षत्रसे बतलाया है; किन्तु 'पूषा वै देवानां भाग दुघ एष वा एतस्य भाग दुघो भवति तस्मात्पौष्णो भवति' [श. ब्रा. ५.२.५.९] इस प्रमाणसे तथा तैत्तिरीय संहिता (४.४.११) व ऐतरेय ब्राह्मण (१.४.१८,३.२.८) के प्रमाणोंसे A "अश्विनौ देवानामध्वर्यू" अर्थात् देवताओंमें अग्रगण्य अश्विनौ देवता है। (तै. ब्रा, ३.२.९.१) अश्विनौ को प्रथम देवता लिखे हैं + तथा सुपर्ण-चितिमें ईंटें रखनेमें वसु आदि क्रम अर्थात् धनिष्ठादि क्रम ही पाया जाता है। किंतु वह धनिष्ठा के संपात के समयका है। और उपरोक्त स्तम्भ १९ के प्रमाणसे अश्विनी आदि क्रम हमने लिखा है, वही राशिचक्र का आरंभ स्थान माना गया है।

४१. अतएव आगे के कोष्टक में हमने नक्षत्रोंके क्रम के अङ्क लिख कर २७ देवता, उनके नक्षत्र व उन देवताओंके आसपास रहने वाले तारका पुंजोंकी आकृति विशेष से दिखने वाले चित्र; तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.५.१.१.५)के लेखानुसार लिख दिये हैं। तथा नारदीय संहिता (६.५७.६६) के लिखे अनुसार समिधाओंके नाम जो कि वैदिक प्रमाणोंसे उन नक्षत्रोंकी वही समिधा सिद्ध होती हैं; उन समिधाओंके नाम आगे के कालम में लिख दिये हैं।

* यदसावादित्य । सर्वा इमा प्रजा प्रत्यङ् तस्मादेते एव देवते विभक्तिमानशाते नातो नान्या काचन (ताड्य ब्राह्मण १०-१२-१०) 'तस्मात्सर्व एव मन्यनेमा प्रत्युदगादिनि श्रुते: पूर्वस्या दिग्मुख्यन् भवति" (सायणभाष्य)

A "इद्रतमाहि विष्ण्या मरुत्तमा दस्त्रा दंभिष्ठा रथ्यारथीतमा ॥ पूर्ण रथ वहेथे मध्वऽआचितं तेनदाश्वासमुपयाथोऽअश्विना ॥' (ऋ. स २४.२७) अर्थात् मरुत् (स्वाती) के समीपके इद्र (चित्रा) से समसूत्रवाले अश्विनी नक्षत्रको राशि चक्रके आरंभमें कहा है उसमे

+ (ऋ. स. १.३.४.५) के संपूर्ण अनुवाकमें खगोलके तीन विभाग और उसका नासत्य=अश्विनौसे आरंभ लिखा है। तथा आनामन्यागच्छतं हूयते हविर्मध्व: पिबत मधुपेभि रासभि: युवोर्हि पूर्वं अविनक्षनानि हवान्पूर्वे नानभि रक्षतवस्माकम् पुनरायननार (आ. श्रौ. २.५.६-६२)

नक्षत्र और देवताओंसे

	शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षके चान्द्रमास				
	तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-१०-१	तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-१०-१	तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-१०-१	यजुर्वेद सं. २२-३१	काल माधव २ पत्र ३१
१	२	३	४	५	६
अनुक्रमांक	अमावस्याको याग करनेके पर्व.	पौर्णमासीके पर्व और नाम.	चैत्रादि मासोंके आरमिक नाम.	वैदिक कालमें रूढ नाम.	वर्तमानमें रुढ प्रचलित नाम.
१	पवित्रम्	पवयिष्यन्	अरुणः	मधुः	चैत्रः
२	भूतः	मेध्यः	अरुणजः	माधवः	वैशाखः
३	यशः	यशस्वान्	पुंडरीकः	शुक्रः	ज्येष्ठः
४	आयुः	अमृतः	विश्वजित्	शुचिः	आषाढः
५	जीवः	जीवयिष्यन्	अभिजित्	नभः	श्रावणः
६	स्वर्गः	लोकः	आर्द्रः	नभस्यः	भाद्रपदः
७	सहस्वान्	सहीयान्	पिन्वमानः	इषः	आश्विनः
८	ओजस्वान्	सहमानः	अन्नवान्	ऊर्जः	कार्तिकः
९	जयन्	अभिजयन्	रसवान्	सहः	मार्गशीर्षः
१०	सुद्रविणः	द्रविणोदा	निरावान्	सहस्यः	पौषः
११	आर्द्रः	हरिकेशः	ओषधीसंभरः	तपः	माघः
१२	मोदः	प्रमोदः	महस्वान्	तपस्य	फाल्गुनः

महीनोंके वैदिक नाम

मास दर्शक चलाचल ज्योतिः					सूर्यकी राशि और नाम	
संकर्षण काण्डे	' चित्रा (त्वष्टा) इन्द्रसे परि गणित निश्चित अंश				वराहमिहिर वृ. जा.	बादरायण संहिता
७	८	९	१०	११	१२	१३
पौर्णिमासिके दिनका नक्षत्र	पौर्णिमाके नक्षत्रका शुद्ध निरयन भोग	पौर्णिमाके चन्द्रका विभागात्मक नक्षत्र	विभागसे दृश्य नक्षत्रका अंतर	सूर्यभोगके राशिके अंश	राशिके प्राचीन नाम	राशिके वर्तमानमें नाम
चित्रा	१८०.०	१८०°	० ०	०	क्रिय	मेष
विशाखा	२०१.२	२१०	– ८.८	३०	तावुरि	वृषभ
ज्येष्ठा	२२५.९	२४०	–१४.१	६०	जितुम	मिथुन
पूर्वाषाढा	२५८.८	२७०	–११.२	९०	कुलीर	कर्क
श्रविष्ठा	२९३.५	३००	– ६.५	१२०	लेय	सिंह
पू. भाद्र०	३३०.७	३३०	+ ०.७	१५०	पाथोन	कन्या
अश्विनी	१०.१	०००	+१०.१	१८०	जूक	तुला
कृत्तिका	३६.१	३०	+ ६.१	२१०	कौर्प्य	वृश्चिक
मृगशीर्ष	५९.९	६०	– ०.१	२४०	तौक्षिक	धन
पुष्य	१०४.९	९०	+१४.९	२७०	आकोकेरो	मकर
मघा	१२६.०	१२०	+ ६.०	३००	हृद्रोग	कुंभ
पू. फाल्गु.	१४७.८	१५०	– २.२	३३०	शिशुक	मीन

वेदोक्त देवताओंका क्रम और नाम

नक्षत्र देवताके नाम.	आगेके तारका पुंजके नाम.	पीछेके तारके पुंजका नाम.
३=अग्नेः कृत्तिकाः	शुक्रं परस्तात्	ज्योतिः अवस्तात्
४=प्रजापतेः रोहिणी	आपः ,,	ओषधयः ,,
५=सोमस्येन्वका	वितितानि ,,	वयन्तः ,,
६=रुद्रस्य बाहू	मृगयवः ,,	विक्षरः ,,
७=अदित्यै पुनर्वसू	वातः ,,	आर्द्रम् ,,
८=बृहस्पतेस्तिष्यः	जुह्वतः ,,	यजमानाः ,,
९=सर्पाणामाश्रेषाः	अभ्यागच्छन्तः ,,	अभ्यानृत्यन्तः ,,
१०=पितृणां मघाः	रुदन्तः ,,	अपभ्रंशः ,,
११=अर्यम्णः पूर्वफल्गुनी	जाया (कन्या)	ऋषभः ,,
१२=भगस्योत्तरे	वहतवः ,,	वहमानाः ,,
१३=देवस्य सवितुर्हस्तः	प्रसवः ,,	सनिः ,,
१४=इन्द्रस्य चित्रा	ऋतम् ,,	सत्यम् ,,
१५=वायोर्निष्ट्या	व्रततिः ,,	असिद्धिः ,,
१६=इन्द्राग्नयोर्विशाखे	युगानि ,,	कृषमाणाः ,,
१७=मित्रस्यानुराधाः	अभ्यारोहत् ,,	अभ्यारूढम् ,,
१८=इन्द्रस्य रोहिणी	शृणत् ,,	प्रतिशृणत् ,,
१९=निर्ऋत्यै मूलवर्हणी	प्रतिभञ्जन्तः ,,	प्रतिशृणन्तः ,,
२०=अपां पूर्वा अषाढाः	वर्चः ,,	समिति ,,
२१=विश्वेषां देवानामुत्तराः	अभिजयत् ,,	अभिजितं ,,
२२=विष्णोः श्रोणा	पृच्छमानाः ,,	पन्था ,,
२३=वसूनां श्रविष्ठाः	भूतं ,,	भूतिः ,,
२४=इन्द्रस्यशतभिषक्	विश्वव्यचाः ,,	विश्वक्षिति ,,
२५=अजस्यैकपदः पूर्वप्रोष्ठपदाः	वैश्वानरं ,,	वैश्वावसवः ,,
२६=अहेर्बुध्नियस्योत्तरे	अभिषिञ्चन्तः ,,	अभिपुण्वन्तः ,,

नक्षत्र देवताके नाम,	आगेके तारका पुंजके नाम.		पीछेके तारका पुंजके नाम.	
२७=पूष्णो रेवती	गावः	परस्तात्	वत्साः	अवस्तात्
१=अश्विनोरश्वयुजौ	ग्रामः	,,	सेनाः	,,
२=यमस्याप भरणीः	अपकर्षन्तः	,,	अपवहन्तः	,,

इसप्रकार देवताक्रम कह कर आगे कहते हैं, कि "पूर्णा पश्चाद्यत्ते देवा अदधुः।" "यत्पूर्णनक्षत्रं तद्वद् कुर्वीतोपव्युषम्." (तैत्तिरीय ब्रा. १.५.१व१.५.२) अर्थात् नक्षत्रके पूर्ण होने पर देवताओंको धारण करो और प्रतिदिन उषः कालमें कौन नक्षत्र पूर्ण हुआ उसको निश्चित करना जावे।" ऐसा स्पष्ट लिख दिया है।

ज्योतिर्गोल के २७ देवताओं का मण्डल

अश्विन्यादि क्रम.	सत्ताईस नक्षत्रोंके समान विभाग.		देवताओंके नाम.	नक्षत्रोंके नाम.	नक्षत्रोंके समय हवन करनेकी समिधाओंके नाम.		नक्षत्रोंके दोनोंओरके तारोंकी आकृतिके [एक ओर] दिखनेवाले दृश्य [दूसरी ओर	
	अंश	कला		नक्षत्र.	संस्कृत	हिन्दी.	परस्तात्	अवस्तात्.
१	१३	२०	अश्विनौ	अश्विनी	वृष	अड्डसा	ग्रामः	सेना
२	२६	४०	यमः	भरणी	सकू(र)ल	चन्दन	अपकर्षन्तः	आपघहन्तः
३	४०	०	अग्निः	कृत्तिका	उन्दुबर	गूलर	शुक्र	ज्योतिः
४	५३	२०	प्रजापतिः	रोहिणी	जंबुक	जामुन	आपः	ओषधयः
५	६६	४०	सोमः	मृगशीर्ष(इन्वका)	खदिर	खेर	विततानि	वयन्तः
६	८०	०	रुद्रः	आर्द्रा	फलिवृक्ष	बेहड़ेका वृक्ष	मृगयवः	क्षिकर
७	९३	२०	अदितिः	पुनर्वसु	वंशावृक्ष	अगर	वातः	आप्नमः
८	१०६	४०	बृहस्पतिः	पुष्य	पिप्पल	पीपल	जुव्हतः	यजमानाः
९	१२०	०	सर्पाः	आश्लेषा	नागवृक्ष	पटोल (परपल)	अभ्यागच्छन्तः	अभ्यानृत्यन्तः
१०	१३३	२०	पितरः	मघा	वट	वट	रुदन्तः	अपभ्रंश
११	१४६	४०	अर्यमा	पूर्वाफाल्गुनी	पालाश	पलाश	जायः	ऋषभः
१२	१६०	०	भगः	उ. फाल्गुनी	प्लक्ष	पाकर	वहतवः	वहमाना

१३	१७३	२०	सविता	हस्त	अरिष्ट [नैऋती]	अरिठेका वृक्ष	प्रसवः	सनि
१४	१८६	४०	इन्द्रः	चित्रा	श्रीवृक्ष	बेलेका वृक्ष	ऋतम्	सत्यम्
१५	२००	०	वायुः	स्वाती	अर्जुन	आजुन	प्रततिः	आसिद्धिः
१६	२१३	२०	इन्द्राग्नी	विशाखा	आहिक	अगस्त	युगानि	कृष्यमाणाः
१७	२२६	४०	मित्र	अनुराधा	बकुल	मौलसिरी	अ.यारोहत्	अम्यारुढ
१८	२४०	०	इन्द्रः	ज्येष्ठा रोहिणी	विष्ठिः	वृश्चिकालुरचिका	शृणत्	प्र.तिशृणत्
१९	२५३	२०	निर्ऋतिः	मूल	सर्ज [शार]	विजयसार शाल]	प्रतिभंजन्तः	प्रतिशृणन्तः
२०	२६६	४०	आपः	पूर्वाषाढा	वंजुल	जलवेतस [अशोक]	वर्चः	समितिः
२१	२८०	०	विश्वेदेवाः	उत्तराषाढा	पनस	कटहर	अभिजयत्	अ.भि.जित्
२२	२९३	२०	विष्णुः	श्रवण	अर्कवृक्ष	आकका वृक्ष	पृच्छमानाः	पंथा
२३	३०६	४०	वसुः	धनिष्ठा	शमी	जाँही	भूतम्	भूतिः
२४	३२०	०	वरुणः	शततारका	कदंब [वैरन्त]	कदंब	विश्वव्यचाः	विश्वक्षिति
२५	३३३	२०	अजैकपाद्	पू. भाद्रपदा	चूत	आम	वैश्वानरं	वैश्वरसवः
२६	३४६	४०	अहिर्बुध्न्यः	उ. भाद्रपदा	पिचुमन्द	नीव	अभिषिंचन्तः	अभिशृण्वन्तः
२७	३६०	०	पूषा	रेवती	मधुवृक्ष	मुलहटी	गावः	वत्साः
२८			ब्रह्मा	अभिजित्	[ब्राह्मणोक्ता अष्टाविंशो नक्षत्राणां		तै. ब्रा. १.५.३.४]	

४१. वैदिक ग्रन्थोंमें उक्त २७ देवताओंमें से सघनीय (हृदनीय) देवता को प्रधान देवता व उसके आगे पीछेवालेको अधि देवता व प्रत्यधिदेवता बतलाये हैं। उदाहरणके लिए 'इष ऊर्ज' मासमें अर्थात् आश्विन कार्तिक मासमें प्रातःकालमें उदय होनेवाले इन्द्र देवता की स्तुतिमें वायवस्थ देवो वः सविता (वा. स. १० १०) वायु प्रत्यधि देवता व सवितां अधि देवताका उल्लेख किया है। दूसरी रीति यहभी है कि, पूर्व क्षितिज संलग्न देवता की प्रार्थना करते समय पश्चिम की ओर पश्चिम क्षितिज के संलग्न देवताकी भी उसके साथ प्रार्थना की जाती थी। क्योंकि वह उस देवताके सन्मुख १८० अंश-पर रहती है। उदाहरणके लिए प्रधान देवता अदिति की प्रार्थना करते हुए " विश्वेदेवा अदिति " [वा. सं. २५. २३] विश्वेदेव्यावती [वा. सं. ११. ६१] विश्वेदेवोंका उल्लेख किया है। तथा इसके साथ साथ स्वस्तिक देवताकाभी निर्देश कर देते थे। जिसमें क्रमसे ७, १४, व २१ नक्षत्रोंका अन्तर रहता है। जैसा 'यमः सूय मानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूय मानः [वा. सं. ८. ५७] यहां [१५] वायु [२२] विष्णुः व [८] यम, इनमें सात सात नक्षत्रोंका अन्तर है। तथा ऊपर [कलम ३७ में] मित्र, वरुण, व अग्निका इसी प्रकार अन्तर है।

४२. इन दोनों रीतियोंका रहस्य यह है कि, मुख्य देवताके आजू बाजूके देवताको या खगोलके अन्दर उदयास्त व स्वस्तिक के देवताओंको उसके साथ २ कहनेमें किसी प्रकारभी विस्मृति नहीं हो सकती। आज कलभी यही रीति है जैसा कि कोई स्थान विशेष बतलाना हो तो उसके चित्रके साथ उसके आस पासके वृक्षादि का वर्णन करके अन्तमें उसकी चतुःसीमा बतलाई जाती है। उसी तरह देव मंदिरों के आजू बाजूके चित्र उसकी समिधाके वृक्ष व उपर्युक्त दोनों प्रकारकी प्रणालीसे देवताओंका या उनके आजू बाजूके चिन्होंका वैदिक ग्रन्थोंमें पूर्वोक्त कथन है।

४३. उपर्युक्त सिद्धान्त निश्चित करनेमें संपूर्ण वैदिक वाङ्मय के अर्थ करनेमें इनका इतना उपयोग होता है कि, जिन मन्त्रोंका अमीतक यथार्थ अर्थ नहीं लगता था उन कूट मन्त्रोंका भी सरलता एवं सुगमता से अर्थ लग जाता है। यह हम यहाँ एक उदाहरण द्वारा बतलाते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें उत्तरा भाद्रपदा का मन्त्र

चत्वार एकमभिकर्मदेवाः प्रोष्ठपदास इति यान्वदन्ति ।
ते बुध्नियं परिषद्यं स्तुवन्तः अहि रक्षन्ति नमसोपसद्य ॥
[तै. ब्रा ३. १. २. ९] प्रोष्ठपदा

अर्थात् भाद्रपदा के चार बडे देदिप्यमान तारे भाद्रपद मासके कर्म को सुसम्पन्न करते हैं। अर्थात् सायंकालके समय ये तारे उदय होकर रातभर ये चारों तारे मानो भाद्रपद मासकी रक्षा करते हुए अहिर्बुध्न्य देवताकी स्तुति करते हैं ऐसा इसमें उल्लेख है। किन्तु इसमें दूसरी जगह लिखा है कि "अहिर्बुध्निय मन्त्रम्मे गोपाय ॥२६॥ चतुःशिखण्डा युवतिःसुपेशा। घृतप्रतीका भुवनस्य मध्ये [तै ब्रा. १. २ १] अहिर्बुध्न्य का मन्त्र मेरी रक्षा करे" यह मन्त्र आगे लिखा है कि "अहिर्बुध्न्य के देदीप्यमान चार तारोंमें से जिसके एक तारा चोटीमें है ऐसी एक सुन्दर वस्त्र धारण की हुई युवती स्त्री हमारे सन्देहोंको दूर करके उक्त देवोंके सुन्दर विभागों को दिखलाने के लिए आकाशमें उदय होती है वह मुझ यज्ञकर्ता की कामनाको पूरी करनेवाली हो।

४७. उक्त श्रुतियों में इस प्रकारका वर्णन है सो इसके आगे के पृष्ठमें बतलाये हुए देवयानों के चित्रको देखनसे उक्त श्रुतियोंका रहस्य आपको स्पष्टरीतिसे विदित हो जायगा * उपर्युक्त प्रमाण, संहिता व ब्राह्मण ग्रन्थोंके दिये गये हैं। अब हम इसी प्रकारके कल्पसूत्रोंके भी प्रमाण बतलाते हैं। सर्वत्र देवतागमे नित्यानामपाय [आश्वलायन श्रौ. २. १.] दर्श पौर्णमासादिमें देवताको प्रत्यक्ष देखकर नित्यानुक्रमको त्यागना उचित है। तव देवं त्वा देवेभ्य.श्रिया उद्धरामीत्युद्धरेत् [आ. श्रौ २. २. १. पृ. ५३] इस देवताका उद्धरण कर ले। यदि दिनमें नक्षत्रांतर हो जाय तो सायंकालमें उसके सम्बन्धमें 'उद्ध्रियमाण उद्धर पाप्मनो मा यद् विद्वान् यच्च विद्वांश्चकार। अह्नायदेन कृतमस्ति किंचिदमर्वेस्मान्मोघृतः पाहि तस्मादिति। (आ. श्रौ. २. २.१) एवं प्रातर्व्युष्टायां तमेवाभिमुखः रात्र्य.यदेन इति । अनुदितहोमी चोदयात्। अस्तमिते होमः [आ. श्रौ. २. २. १६५६]

पावकानः सरस्वती पावीरवी कन्या चित्रायुः पिव्रीवांसं सरस्वतो दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्मासवं सवितुर्यथासनो राधास्याभरेति [आ. श्रौ. २.८ पृ ७५] अर्यमणं देवं कन्याम् अग्निमयक्षत इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका (पा. गृ. सू)

* इस अर्थमें औरभी बहुत रहस्य है किन्तु उस विषय के सिद्धान्तों को निश्चित किये बाद वह रहस्य बतलाया जायगा। अभी इस जगह कहनेसे विषयान्तर हो जानेकी संभावना है इसलिए हम उसे छोड़ देते हैं।

४६. उपर्युक्त लेखसे पाठक भलीभाँति समझ गये होंगे कि नक्षत्र और वैदिक देवता एक ही हैं। यद्यपि नक्षत्र रूप मन्त्रिमें उनको मानते हैं तथापि नक्षत्र व देवता एक ही रूप होने से हमने उनको एक ही लिखे हैं। उसमें अन्तर केवल इतना ही है कि जिस प्रकार नक्षत्रोंके नामसे वर्तमान समय में आकाशकी गणना की जाती है: ठीकठीक उसी प्रकार वैदिक कालमें देवताओंके नामसे थी। इस समय नक्षत्रोंके नाम जैसे रूढ़ हैं, उस समय देवताओंके नाम रूढ़ थे। किन्तु उस समयकी-काल-परिमाण पद्धति इतनी शास्त्र सगत व शुद्ध थी जितनी कि आजकल उन मानों को गणितसे निश्चित कर सकते हैं।

४७ अब हमें जब यह ज्ञात हो गया कि वैदिक देवता नक्षत्र ही हैं: तब आगे यह जिज्ञासा होती है कि उक्त संवत्सरयज्ञ द्वारा तत्कालीन सुपर्णचिति नामक कालदर्शक पंचांगकी रचना कैसे की जाती थी? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि उस समय सूर्य चन्द्रके अंशात्मक योग में १२ अंशका अन्तर पड़नेपर १ तिथि इस प्रकार ३६० अंशमें ३० तिथिकी इष्टका सुवर्णचितिपर रख देते थे: और चन्द्र-नक्षत्र-को निश्चित करके उसकी एक समिधाकी आहुति, सूर्य-नक्षत्र-को निश्चित करके उसकी १२ समिधाकी आहुति देते थे इस भाँति तिथियोंकी और चन्द्र सूर्य-नक्षत्र-की आहुतियाँ देकर चितिके ऊपर इष्टका रखते जाते थे।

४८. परन्तु यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि, सूर्यके प्रकाशसे तो सूर्य नक्षत्र दिख नहीं सकता: अतः ऋषि लोग किस प्रकार सूर्यनक्षत्रको निश्चित करते थे: और सूर्य नक्षत्रका ठीक निश्चय हुए बिना उससे चन्द्रमाका अन्तर नापकर तिथि आदिको एवं अमावस्या पौर्णिमा आदि पर्व कालको कैसा ठीक२ निश्चय करते थे? यदि यदि क्षय तिथि या अधिक मास आगया तो उसकी इष्टका चितिपर किस प्रकारसे रखते थे? इत्यादिकोंका उनको यथायोग्य उत्तर देते हुए उस समय के पारिभाषिक शब्दोंका अर्थ भी बतलाते हैं।

४९. वे लोग सूर्य नक्षत्रको पुण्य नक्षत्र कहा करते थे। उस सूर्य नक्षत्रका निश्चय करनेके लिये श्रुतिमें लिखा है कि—

यत्पुण्यं नक्षत्रं तद् बद् कुर्वीतोपव्युषम्। यदा व सूर्य उदेति अथ नक्षत्रं नैति। यावति तत्र सूर्यो गच्छेत्, यत्र जघन्यं पश्येत् तावति कुर्वीत यत्कारीस्यात् [तै. ब्रा १.५.२.१] "सूर्य नक्षत्रको प्रातःकाल व सायंकालकी रात्रिमें निश्चित करे। क्योंकि सूर्यके पासका नक्षत्र सूर्यके साथ २ ही उदय होनेसे नहीं दिख सकता। इसलिए सूर्योदयके पूर्व उसके आगेके नक्षत्रको व सूर्यास्तके बाद उसके पीछेके नक्षत्रको निश्चित कर के उन नक्षत्रोंके

आगे पीछे सूर्योदय सूर्यास्त कालके अन्तर को देखकर, उन नक्षत्रोंके बीचके सूर्य नक्षत्रोंका निश्चय कर ले। जहांतक सूर्य नक्षत्र नहीं बदले, वहांतक पहले नक्षत्रकी आहुति देता जाय, बदलने पर बदले हुए नक्षत्रकी आहुति देवे" इस भावार्थसे प्रतीत होता है, कि उस कालमें ऋषि लोग उपर्युक्त रीतिसे सूर्य नक्षत्रका ठीक ठीक निश्चय करते थे।

५०. सुपर्ण चितिके ऊपर दिनमानके क्रमसे रखी जानेवाली इष्टका कालेरंगकी पहले व सफेद रंगकी बादमें रखते थे, और संपातके समय भूरे रंगकी इष्टका रखते थे जिसके द्वारा उत्तरायण, दक्षिणायन, संपातसमय व दिन और रात्रि मानका निश्चय हो जाता था। इस प्रकार एक अहोरात्रमें दो इष्टका रखी जाती थी।

५१. इन इष्टकाओंका उपधान [रखनेका क्रम] सूर्य चन्द्रकी स्थितिको प्रत्यक्ष देख कर किया जाता था; क्योंकि इस सम्बन्धमें श्रुतियोंमें लिखा है कि-

परिमितमवरुन्धीत, चक्षु र्निमिव आदधीत। चक्षुर्वै सत्यम् अर्धोदित सूर्य आहवनीयमादधाति [तै. ब्रा. १. १. ४. २. ३] "प्रमाण से मापन करे यह प्रमाण अर्थात् तत्कालीन दुर्बीनसे* निश्चित कर के इष्टकाओंका आधान करे। क्योंकि चक्षु-वेधसे निश्चित की हुई बात सत्य होती है और सूर्य के अर्ध बिंबके उदयके समय आहवनीय आहुति देकर इष्टकाका आधान करे" इत्यादि श्रुतियों से विदित होता है कि, ऋषि लोग काल-मापन स्पष्ट सूर्योदयसे करते थे, व आकाशकी स्थितिके अनुसार ही चितिके ऊपर इष्टकाएँ रखते थे। इस वेधलेनेके समयको रेतः सिक वेला, गोलवृत्त को यंत्र, उसके चतुर्थांशको यन्त्रतूर्य और वेधसे नक्षत्रोंके प्रमाण निश्चित करनेकी क्रियाको सोमाभिसव कहते थे।

५२. उस कालमें ऋषि लोग अमावस्या व पौर्णमासीके दिन रवि चन्द्र के नक्षत्रोंका व तिथियोंका निश्चय सूक्ष्म रीतिसे कर के तिथिक्षय व अधिक मासका निर्णय [उस समय] कर लेते थे; इसलिए उस समयको पर्वकाल कहा करते थे। उनको यह ज्ञात हो गया था कि, सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः [श. ब्रा. ९ कां. ४ अ. १ . ब्रा. ९ कं.] चन्द्रमा सूर्यके तेजसे ही प्रकाशित

* वैदिक कालमें पत्थरके कांच (हीरा या पेबल) की दुर्बीन भी बनाते थे, उस दुर्बीनमें तीन काँच हुए तो उसे त्रिककुद और एक हुआ तो उसे एक ककुद दूरवीक्षण यन्त्र कहते थे। इसीको चक्षुक भी कहा करते थे। इसका वर्णन (श. ब्रा. ३. १. ३. १०. १६) में तथा संपूर्ण श्रौत प्रयोगोंमें है। यज्ञ विज्ञानमें हमने इनके चित्र दे कर इस विषयको और भी स्पष्ट कर दिया है।

होता है। इसलिए यदामावास्य श्नोयचन्द्रमाः सयत्रैप एतांरात्रिं न पुरस्तान्नपश्चाद्दशे [श. ब्रा. १. ५. ३. १३] चन्द्रमा का गोलवृत्त [बिंद] जिस रात्रीमें सूर्यके आगे पीछे न हो कर ठीक एक रेखा में आता है, उस समय अमावस्या का अन्त होता है। इसलिए अमान्त पर्वकालको ऋषि लोग वृत्र हत्यं 'यदामावास्यम्' वृत्र हत्या कहा करते थे। इसीप्रकार 'यत्पौर्णमास्यं' विदू।मिवोदितोऽर्धतमता।रात्रिउपैव व्याप्लवते' [श. ब्रा. १.५.३.१३] सूर्यके सन्मुख अर्थात् १८० अंश पर समान रेखा में चन्द्रमा का गोल वृत्त आता है, उस समय पौर्णमासी का अन्त होता है। परंतु पौर्णिमा के बाद चन्द्रमाके गोल वृत्तका घटना आरंभ होता है। इसलिए पौर्णिमान्त पर्वकाल को 'वार्त्रघ्न वै पौर्णमासम्' वार्त्रघ्न कहते थे।

५३. उपर्युक्त शब्द चन्द्रमा के सिवाय खगोल के गोल वृत्त के संबन्धमें भी कहा जाता था। जैसा कि श्रुति में- बभ्रुं पिङ्गाक्षा न विन्देद्...रोहिणी वार्त्रघ्नी स्यात्। [श ब्रा. ३.२.४.१५] "बभ्रु नामक लाल तारे वाली ज्येष्ठा रोहिणीसे वेध न होसके तो उसके सन्मुख वाली वार्त्रघ्नी अर्थात् गोलवृत्तके मध्यकी रोहिणीसे वेध करे" ऐसा बतलाया है। सो ज्योतिःशास्त्रने ज्येष्ठा रोहिणीका कंदबाभिमुख भोग २२५ अंश ५६ कला है। तथा कनिष्ठा रोहिणीका भोग ४५ अंश ५७ कला है। अर्थात् [$225^{\circ}56' - 45^{\circ}57' = 180^{\circ}$] इनमें ठीक ठीक अन्तर १८० अंशका है। गोलीय त्रिकोणमितिके हिसाबसे १८० अंश पर ही त्रिज्यावृत्तके व्याससे जितनी दूरी रहती है, उससे कम ज्यादामें यह दूरी कम हो जाती है। इसलिए १८० अंश परस्थित ज्योतियांको वैदिककालमें वार्त्रघ्न कहना युक्तियुक्त है।

५४. वर्तमान समयमें गुणाकारको घात या हनन कहते हैं। जैसा कि 'सप्तघ्न' शब्दसे सातसे गुणा किया हुआ ऐसा अर्थ निकलता है। वैदिक कालमें ०,९०,१८०,२७० अंशके विभागसे नापनेको घात या हनन कहते थे। इस सिद्धान्तके अनुसार वृत्तके व्याससे उसका नाप होता है। इसलिए १८० अंशके बिन्दुको वार्त्रघ्न कहते थे, और ९० या २७० अंश परके नापको केवल हनन या घात कहते थे। जैसा कि उपर्युक्त श्रुतिमें ही रोहिणीको यः पितृन्रोपति-मघा नक्षत्रसे नापे जाने वाली न कहकर उसके बदलेमें मघाको वेधनेवाली कहा है। क्योंकि उस कालके मघा नक्षत्रकी योग ताराका भोग १३९ अंश.... था। तथा अब भी मघाके विभाग [१३३°२०'] से केवल [२०°३६'] स्वल्पान्तर [१३५°०६] ९० अंशका बिंदु आता है। तथा इतने हजारों वर्षोंके कालमें तारांकी निज गतिसे इतना अन्तर पड़ना संभव ही है। अतः इससे यह सिद्ध होता है, कि वैदिक कालमें ज्योतिर्गोलोंके सापक्ष [परस्पर का] अन्तर ०, ९०, १८० व २७० अंश

पर या उसके विभागपर के बिन्दुके वेधको हनन या घात कहते थे। इसलिए वार्त्रहत्यं व वार्त्रघ्न में हनन शब्द का प्रयोग किया गया है।

५५. वैदिक कालमें ऋषि लोग पर्वान्त कालका सूक्ष्म निर्णय ग्रहणसे करते थे; क्योंकि ग्रहणके विषयमें कहा है कि यदि वार्त्रघ्न [पौर्णिमा के अन्त] के समय स्वर्भानु ‡ [राहु केतु] समीप आ जायँ तो तं निर्धाय निरस्यति स एषघातः पाचाद्दृशे स पुनराप्यायते [श. ब्रा. १.६.३.२०] चन्द्रमा पर भी सूर्य की प्रकाश किरणें तम से वेधित होने से रुक जाती है। जब यह तम [अँधेरा] पश्चिम की ओर से जैसा २ निकलता जाता है, वैसा २ चन्द्रमा पुनः प्रकाशित होने लगता है। और यदि वार्त्रहत्य [अमावस्याके अंत] के समयमें वह तम समीप हो तो "तं ग्रसित्वोदिति स न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृशे ग्रसते ह्येव" [श.ब्रा. १.६.३.१९] वह [चन्द्रमा] उस [सूर्य] को ग्रसन [ग्रहण] करके प्रगट होता है; तब उस पर्वान्त कालमें इधर-उधर नहीं होनेसे (खग्रास) ग्रहण करता है" इन श्रुतियोंसे सिद्ध होता है, कि रवि और चन्द्रका समसूत्रीय पर्वान्त कालका निश्चय ऋषि लोग उत्तम प्रकारसे करते थे।

५६. सुपर्णचितिपर तिथि नक्षत्रादिकों की इष्टका रखते हुए अमावस्य या मासान्तसम्पाद्य पौर्णमास्या मासान्तसम्पाद्य अहरुत्सृजन्ति। अमावस्यया, पौर्णमास्या हि मासान्संपश्यन्ति। संवत्सरायैवतत्प्रमाणं दधति तदनु सत्रिणः प्राणन्ति। सर्वा देवता देवताभिरेव यज्ञं सन्तन्वन्ति।''। यथा यतना देव सवनभाजो देवता अवसन्धते। [तै. सं. ७.५.६] अमावस्यासे आरंभ करके पौर्णिमा के दिन ठीक पौर्णिमान्त कालको निश्चित करके आगे की अमावस्या के समय इष्टकाओंमें यदि अन्तर पड़े तो एक इष्टका छोड़कर पर्वान्त कालका मेल मिला लिया करते थे। इस प्रकार अमावस पौर्णिमाको प्रत्यक्ष * देखते हुए व उनकी इष्टका रखते हुए संवत्सरको पूर्ण करते थे।

---

‡ सूर्य चन्द्रके ग्रहणके विषयमें अत्रि ऋषिने तुरीय और चक्षु यन्त्रोंके साधनसे स्वर्भानुका अनुसन्धान लगाया था इसका वर्णन ऋग्वेद संहिता [४.२ ११] में व शतपथ ब्राह्मणमें 'स्वभानुर्हवाऽआसुर सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत कृष्णा वै तमस्ततमोपहन्ति (श १२ ६.३)

* ता सूर्यं चन्द्रमा। तेजो व सुमद्राजनो दिवि। समामा ना चरत। समचारिणा ययो व्रत न ममे जातु देवयो उभावन्तौ परियात अर्म्या। दिवो न रश्मी स्तनु तो-व्यर्णवे (नक्षत्र मडले) उभा भुवन्ती (तिथि) भुवना (नक्षत्र, कवि क्रतू (योग) सूर्या न चन्द्रा चरतोह तामती॥" [तै. ब्रा २.८.९.१] इस प्रकार.

बीचमेंके सत्रोंका संवत्सर के अंतमें मेल कर लेते थे। यह सारा यज्ञ विधान देवताओं के द्वारा पूर्ण होता था। और नक्षत्रों के अनुसार हवनीय देवताओंका यजन होता था।

५७. संवत्सर की समाप्ति के समय सुपर्णचितिपर तिथिदर्शक ३६० इष्टका ३५४ दिनमें पूरी होती हैं। उसके बादकी १२ इष्टका जो कि अधिक मास के शेष भागकी हैं वे सुपर्णचितिके सामने के भागपर रखी जाती थीं। उन दिनों प्रति दिन सूर्यका उदय देखते जाते थे कि ठीक २ पूर्व दिशामें किस दिन सूर्य उदय होता है? क्योंकि:—

एतस्यांहि दिशि स्वर्गस्य लोकस्य द्वारम् [श. ब्रा, ६ ४ ४ ४.] 'इसी ठीक २ पूर्व दिशामें स्वर्ग लोक का द्वार है।" इसलिए उसका निरीक्षण नित्य प्रति करते हुए जिस दिन सूर्य ठीक २ पूर्व दिशामें उदय हुआ देखते थे उस दिन सूर्यका स्वर्ग लोकमें प्रयाण होना जान कर वे लोग दूसरे संवत्सर का आरंभ करते थे।

५८ देवताओं की समिधाओंका हवन भी उसी क्रमसे होता था जैसा कि-

तं प्राश्चमुद्धरति संवत्सरमेव तद्रेतो हितं प्रजनयति। य समिधोऽना धाऽग्नि माधत्त इति। ताः संवत्सरे नाऽऽदध्यात्। द्वादश्यां पुरस्तादध्यात् संवत्सरप्रतिमा वै द्वादश रात्रयः। '। यदि द्वादश्यां नाऽऽदध्यात् त्र्यहे पुरस्तादादध्यात्। आहिता एवास्य भवन्ति। [तै. ब्रा १.१०.९ १०]"

"सूर्यका ठीक पूर्व दिशामें उदय होनेका दिन निश्चित करके यज्ञका आरंभ किया जाय तो यह शुद्ध किया हुआ काल संवत्सर पर्यन्त के कालको शुद्ध रखता है, और गत वर्षमें संवत्सरके आरंभ के समय जिन समिधाओंका आधान [हवन] किया था, उन समिधाओंका आधान इस वर्ष न करके उस समिधाके आगे की बारहवीं समिधा का हवन करें, और तीसरे वर्षमें उक्त बारहवीं समिधा का आधान न करके उसके तीन दिन पहलेकी समिधाका आधान करे, इस प्रकार करनेसे ठीक २ संवत्सरकी समिधा एवं इष्टकाओंका आधान हो जाता है।"

५९. ऊपर की श्रुति में देवताओंकी अर्थात् नक्षत्रोंकी गणना के बराबर उन देवताओं [नक्षत्रों] की समिधाओं का सवन (हवन) और सुपर्णचिति

'षट्त्रि श च त्रिच शतानि ३६० तावन्ति संवत्सरस्य इति यनि त्रिंशतिंस्तन् ३०×१२=३६० मासस्य रात्रय " "इष्टका उपधीयन्ते (श ब्रा ९ १ १.४३) तथा कात्यायन श्रौतसूत्र १६ २३१-२३२ से सूत्र २८ में तथा इस "चयन" नामक अध्याय में इसका पूर्ण निरूपण किया गया है।

पर उन समिधाओंका आधान [रखना] बतलाया है। ऊपर [स्तंभ ४१ में] सत्ताईस देवताओं के नक्षत्र व उनकी समिधा के नाम लिख दिये हैं। सो सुपर्ण-चिति के अन्दर लिखे हुए देवताओंको आहुति उसी समिधासे दी जाती थी, जो कि उस देवताकी समिधा होती थी। सौर संवत्सरके ३६६ दिनमें उस कालमें ३७२ तिथि व ३६१ नक्षत्र होते थे। इस हिसाबने ३५४ दिनमें ३६० तिथि व ३५१ नक्षत्र बीत जाने पर संवत्सर पूर्ण होने में लगभग १२ दिनकी १२ तिथि व ११ नक्षत्र शेष रहते थे; इनको बतलानेवाली २४ आधी इष्टकाएँ अर्थात् पूर्ण १२ इष्टकाएँ चषालमें यानी सुपर्णचितिके मुख भाग पर रखी जाती थीं।

६०. ऊपर [स्तंभ ५८ में] प्रत्येक वर्षके हिसाबसे १२ वीं समिधाका आधान कहा है, सो उक्त १२ तिथि के लिए है। तीसरे वर्षमें २४ वें नक्षत्र-की चौवीसवी समिधा [२७-२४=३] आरंभिक समिधा के पहिलेकी तीसरी रहती है। इसलिए [त्र्यहे पुरस्तादादध्यात्] तीन दिन पहलेकी समिधा श्रुतिमें लिखी है। उक्त १२ तिथियां [संवत्सर प्रतिमा] संवत्सरकी अंगभूत ही हैं। ये इष्टकाएँ श्रौत ग्रन्थोंमें त्रयोदश मासकी अर्थात् अधिक मास की कहाती हैं। ये ही इष्टकाएँ सुपर्णचिति के चषाल भागपर रखी जाती हैं। पांच वर्षके ५ चषालोंके चित्र आगेके पृष्ठमें दिये गये हैं। उनको देखनेसे इस विषयका और भी अधिक स्पष्ट ज्ञान हो जायगा। किन्तु समिधाओंके सम्बन्धमें वैदिक ग्रन्थोंके दोचार प्रमाण देकर उक्त समिधाओंका उस कालमें कैसा उपयोग किया जाता था यह भी दिखा देते हैं।

६१. जैसा कि चन्द्रमाकी स्थिति कृत्तिका नक्षत्रपर है तो उसके देवता अग्नि व समिधा गूलर की लकड़ी है। तब इस सम्बन्धमें 'समिधा आदधाति यावाने याग्निस्तस्य भागधेयं स्यौदुंत्र र्भवति' [तै. सं. ५.४६.१] में बतलाया है कि समिधाका आधान करे और उसी विभागको दर्शानेके लिये अग्नि देवताकी गूलरकी समिधाका हवन व चितिपर उसका आधान करे; अर्थात् उस समिधाको इष्टकापर रखदे। उसी प्रकार वसु देवताकी अर्थात् धनिष्ठाके लिये 'शमी मयीं आदधाति' [शा. ब्रा. ९.२०.१०.३७] शमीके वृक्षकी समिधा तथा सविता देवता के अर्थात् हस्त नक्षत्रके लिए वैकङ्कतीम् [श. ब्रा. ९.२.१.२९] अंडेि की समिधाका आधान व हवन करे। तथा आपो देवताके अर्थात् पूर्वाषाढा के लिए वेतसोऽपाम् [तै. सं. ५.४.४.२] जल वेतस [वंजुल] की समिधा व सोम देवताके अर्थात मार्गशीर्षके लिए खैरकी समिधाका हवन करे, क्योंकि खदिरेण हि सोममाचखाद [श. ब्रा. ३.५.१.१२] सोमने खैरकी

समिधा स्वीकृत की है। इसलिए सोमकी समिधा खैरकी लकडी है। इस प्रकार २७ देवताओंकी २७ समिधायें श्रुतियोंमें बतलाई हैं। उनके नाम क्रम पूर्वक (स्तंभ ४५ के कोष्टकमें) लिखे हैं।

६२. इस कथनसे पाठक भलीभाँति समझ गये होंगे कि, नक्षत्र, देवता, व उनकी समिधा ये तीनों एक ही अर्थकी द्योतक हैं। इसलिए यदि नक्षत्र, देवता व समिधा इन तीनोंमें से किसी एकका नाम बताया जाय तो उससे उस नक्षत्रका बोध हो जाता है। इस नियमसे ऊपर [स्तंभ ५८ में] जो बारहवीं व २४ वीं समिधा का आधान लिखा है, वह नक्षत्रों के अर्थमें है। अर्थात् बारहवें व २४ वें नक्षत्रमें आधान करे इस प्रकार के अर्थसे उसका बोध होता है।

६३. ऊपर हम बतला चुके हैं कि उस वैदिक कालमें चन्द्र सूर्यकी स्थिति जिस नक्षत्रपर प्रत्यक्ष दिखती थी उसी नक्षत्रकी समिधाका हवन उसके देवताके मन्त्रसे किया करते थे। व उसके स्मरण के स्थलपर इष्टका व इष्टकापर समिधा का आधान किया करते थे। जब कभी मेघादि के कारण यदि वह नक्षत्र नहीं दिखे तो उस विषयमें श्रुति है कि—

यानुपकिरन्ति तेनास्मिनलोके प्रत्यक्षं भवन्त्यथ या ननु दिशन्ति तेनामुष्मिंल्लोके प्रत्यक्षं भवन्ति; तस्माचेहस्य दृश्यमाना एव पुरा संविशन्तऽउतैतर्ह्य दृश्यमानाः [श. ब्रा. ३.५.१.२६]

अर्थात्:—' प्रत्यक्ष वेध लेकर जो आहुती दी जाती है वह तो उक्त देवताको प्रत्यक्ष पहुचही जाती है, किन्तु जब उसके अनुक्रम के आदेशसे अर्थात् उसके विधानके मन्त्रोंसे जो उस देवताको आहुती दी जाती है वह उस अदृश्य लोकमें प्रत्यक्ष रूपसे ही उस देवता को पहुँच जाती है। क्योंकि पूर्व समयमें उन देवताओं को प्रत्यक्ष देखकर ही आहुति दी जाती थी सो ये अब चाहे अदृश्य हो गये हों किन्तु वे उस लोकमें अब भी दृश्यमान हीं हैं, " इससे ज्ञात होता है कि मेघादि के कारण देवता नहीं दिखें तो दूसरे नक्षत्रों के द्वारा जैसा कि ऊपर [कलम ५२ में] के कथनानुसार पार्श्वभ्र [समसूत्रीय] विभागसे या तुरीय [¼ अंश] विभागसे उसका निश्चय कर लेते थे। व वर्षाऋतुके समयमें पूर्व के अनुष्ठान के अनुक्रम से उसका निश्चय करके समिधाओंका हवन व आधान करते थे।

६४. क्योंकि समानीर्देवता भवति समानानि हंविषि भवन्ति [श. ब्रा. ३.२.२.२२] "देवताओंका समान ही विभाग रहता है व उनकी समिधाओंका हवन भी समान ही होता है। इसलिए उसमें गलती नहीं हो

सकती" अर्थात् उक्त सुपर्णचितिके उपदेशानुसार करते रहनेसे यह देवता प्रत्यक्ष समझमें आ जाता था। तथा [कलम १२ से] यह भी सिद्ध हो गया कि, उस वैदिक कालमें समान [१३ अंश २० कला] विभाग के देवता अर्थात् नक्षत्र थे और उनकी दर्शक समिधायें थी। सो सुपर्णचिति पर रखी हुई इष्टका व उसके ऊपर रखी हुई समिधा को देखने से इनदिन अमुक देवताका हवन किया गया। इससे उस दिन अमुक नक्षत्र था यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता था।

६५. उपर्युक्त विधिसे समिधाओंके आधान क्रम को दैवत क्रम कहते थे क्योंकि देवताओंके [नक्षत्रोंके] क्रमसे ये समिधायें सुपर्णचिति पर रखी जाती थी। और इष्टका अमावस्या को ३० पूर्ण कर ली जाती थी। इससे कलम ५६ के कथनानुसार एक ही दिनमें दो इष्टका रखी जाती थी, व दुसरी इष्टका के भी ऊपर उसी नक्षत्र की इष्टका रखी जाती थी। इससे सावन दिनोंकी अर्थात् प्रातः सायं सवन=हवनरूप अहोरात्र की गिनती ठीक २ नहीं लगती थी इससे संवत्सर के आरंभ को कितने दिन हुए इसकी ठीक २ गिनती मालूम होनेके लिए आगे बतलाई हुई सप्तहोत्रा वेदी पर समिधाओंका क्रमपूर्वक प्रति-दिन हवन व उस सप्तहोत्रा वेदी पर उस समिधा का आधान [रखना] उस समय आरम्भ किया गया। सुपर्णचिति पर दैवतक्रम से समिधा रखते थे। इस पर होतृ क्रमसे अर्थात् सावन दिन के अनुक्रमसे समिधा रखी जाती थी।

६६. वैदिक याज्ञिक ग्रन्थोंमें इस वेदी की रचना विधि निम्नलिखित चित्र के समान बतलाई है। [*] उसे वारक्रम विमर्ष अर्थात् वारोंके क्रमकी उपपत्ति उपर्युक्त लेखसे पाठकों को मालूम होगया होगा कि सात वारोंका शोध वैदिक

---

[*] वार एवं वासरके सम्बन्धमें वैदिक ग्रंथोंमें लिखा है कि; "सप्तास्यासन्परिधय ऋत्रि· २१ सप्तसमिधः कृता" (वा स. ३१ १०) "आदित्यप्रत्यरेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासर ॥ परो यदिध्यते दिवा" [ऋ सं ५. ८ १४] "सोमराजन् प्रण आयुषितारी रहानीव सूर्यो वासराणि" [ऋ. स ६ ४ १०] ऐसा वासर शब्द दिनोंके अनुक्रम के अर्थमें कहा है। और

ब्राह्मण को	"पालाशं भवति, तेन ब्रह्मगोभिर्विवति"			सोमवार
क्षत्रिय को	"नैयग्रोधपादं,,	,, राजन्यो	,, "	बुधवार
वैश्य को	"आश्वत्थं	,, ,, वैश्यो	,, "	गुरवार

यह यज्ञके अभिषेक के लिये शुभ वार हैं [शतपथ ब्राह्मण] तथा "[१] लक्ष्मी, [२] कलिश, [३] नराच, [४] कालकर्णि, [५] जय, [७] धनुर्नम-इतिविदेर वाराणामिह सत्क्रम् ॥१॥ न्यास तन्त्रे वारदेवता ॥ (पृष्ठ ७०) रवि शुक्रो बुध चन्द्रो मंद जीव कुज क्रमात् ॥होरेशा उदया ज्ञानोश्चतुर्थे जलदेवता ॥२॥ ऐसा देवज्ञ कामधेनूमें जल (वार) देवता कहे हैं। क्योंकि जलकी धारा के इनके प्रदक्षिणा कालके दिन बढेहुए हैं उनका चक्र ३ तीन पर पूर्ण हुआ है। उपरोक्त चित्र देखिये २१ होरा बीतकर तीन तीन परसे वारक्रम कहा है।

काल में ही ऋषियों को होगया था। जो कि अब भी 'ग्रहमख' नामक पूजा विधानमें "अर्कः पलाश खादिरो अपामार्गश्च पिप्पलः ॥ उदुंबरःशमी दुर्वाकुशाश्च समिधःक्रमात् ॥१। समिधा होमे जाती हैं वैसी उसवक्त नित्यप्रति क्रमसे होमे जाती थी इसलिए उसवक्त उस वारके दिन को समिधाके ही नामसे कहते थे उसका उदाहरण ऊपर लिख दिया है। बादमें लहनी, कलि व नंश आदि नामसे कहने लगे आगे अथर्व ज्योतिष में तो अबके माफक रविवार आदि ग्रहोंके नाम लिखे हैं। साथमें वैदिक ग्रथोंमें जो इसकी वेदी पर चित्र खींचा जाता था वह ऊपर बतादिया है इने शूल्गव भी कहते थे। क्योंकि ग्रहांकी चाल के क्रमसे उनकी २४ होरा निश्चित करके (२५-७ शेष ३) दूसरे दिन तीसरा ग्रह इस क्रमको जैसा यजुर्वेदमें लिखा है। उसको देखते ग्रहोंकी गति ज्ञान का आविष्कार उसवक्त होगया था। पूरी तौरसे उसके ज्ञानके बिना वारोंका क्रम नहीं कहा जासकता। इतनाही नहीं तो इसके चित्रकी ही रचना इतने गूढ तात्पर्योंसे भरी हुई है कि वह सब यहां लिख नहीं सकते।

६७ आग के समय में इस प्रकार के समिधा के- घन क्रमको वार क्रम तथा अर्क आदिको रवि, सोम, मगल, बुध, गुरु, शुक्र व शनि ऐसे सात ग्रह कहने लगे। क्योंकि बहुत बढी हुई आहुति की सख्या का ग्रहण (निश्चित) उक्त ग्रह क्रम से हो सकता है–

ग्रहऽऊर्जा हुतयोव्यन्तो विप्रायमतिम् (वा स. ९. ४)

अर्थात्:–"बहुत बढ़ी हुई आहुतियों का ठीक २ निश्चय अध्वर्यु को ग्रह बतलाते हैं' इत्यादि श्रुतिया स उस वैदिक कालमें सत दिन के वासर क्रमसे सुवर्णचिति [*] के सावन दिनों का निश्चय कर लेते थे। इन प्रमाणों से उस समय का सुवर्णचिति नामक पचाग शास्त्र शुद्ध मान का रहता था व उस वेदीपर आधान की हुई (रखी हुई) समिधाओं से निधि सावन दिनोंका निश्चय किया जाता था।

६८. उपर्युक्त समिधाओंके आधान व हवनसे नक्षत्र मान-जैसा मालूम होता था वैसा ही सापातिक मानके ऋतु आदि जाननेके लिए वसन्तादि ऋतुओंके आरंभिक दिवससे दूसरी ऋतुके प्रारभिक दिवस तक नीचे लिखे हविर्द्रव्य से हवन किया जाता था जैसा कि–

रमसह वसन्त व प्रायच्छद्य व ग्रीष्मा वौषधीर्विर्ष्मभ्यो ब्रीहीञ्छरदे मापविलौ हेमन्तशिशिराभ्याम्। [*] (तै. सं ७ २ १०) रमो व मधुः (श ब्रा. ७ ४ १ ४)

---

[*] श ब्रा ९ ३ १ बगोधांग मय १० इत्यादि प्रकरणोंमे यदविधान मय ने इसका पूर्ण स्पष्टीकरण किया गया है। [*] औषधी अर्थात् धान्यविशेष धान्यभेद–माष–धान्य

[१] वसन्त ऋतुमें मधु (शहद), [२] ग्रीष्म ऋतुमें जौ, [३] वर्षा ऋतु में श्यामाक, [४] शरद् ऋतुमें तिल, आदि वस्तुओंका हवन करते थे व ऋतुके आरंभ दिनमें सुपर्णचितिके पुच्छ पर उस ऋतुकी इष्टका रखते जाते थे।

६९. पहले (स्तंभ २६ में) बतलाया गया है कि, पूर्व दिशामें सूर्योदयके दिन वसन्त ऋतु का एवं यज्ञ का आरंभ करते थे। किन्तु ऋतुओंके निश्चयके लिए और भी कई विधियाँ बना रखी थीं। आदित्यस्त्वेव सर्व ऋतवः।... मध्यंदिन एवादधीत तर्हि ह्येषोस्य लोकस्य नेदिष्ठं भवति तन्नेदिष्ठा देवैन मे तन्मध्यान्निर्मिमीते॥ छाय ये वा अयं पुरुषः। अत्र कनिष्ठो भवत्यधस्पदमि वे यस्यते तत् कनिष्ठम्। [श. ब्रा. २.२.१.९-१०] इस श्रुति का भावार्थ यह है कि- "सूर्य ही सम्पूर्ण ऋतुओं को निश्चित करनेवाला है। उसका मध्याह्न कालमें नाप करे। क्योंकि उस समय इस लोकके निकट व सीधमें रहता है; अतः उस मध्याह्न कालमें सूर्यकी समीप व दूरकी स्थितिको देख कर ऋतुओंका निश्चय करते हैं; और इसी यूपकी छाया से जानी जा सकती है। जैसा ग्रीष्म ऋतु के मध्य में पुरुष की छाया बिलकुल छोटी हो जाती है व यहांतक छोटी हो जाती है कि पुरुष के पैरमें ही सब छाया समा जाती है।

७०. जिस प्रकार सबसे छोटी छाया के समय ग्रीष्म ऋतु का मध्य निश्चित किया है, उसी प्रकार सबसे बड़ी छाया के समय हेमन्त ऋतु का मध्य तथा अनुपात से अन्यान्य ऋतुओं को निश्चित कर लेते थे। सूर्योदय के स्थलों से भी ऋतुओं का निश्चय करते थे। जैसा कि * खात, रशना, चषाल व यूप * के ऊपर क्रम से सूर्य का उदय देख कर शरद, हेमन्त, शिशिर, व व्युत्क्रम से सूर्य का उदय देख कर वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, ऋतु का निश्चय कर लेते थे।

७१. क्योंकि वसन्त, ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में सूर्यका अयन उत्तर गोल में अर्थात् देवलोक में रहता है, और शरद हेमन्त व शिशिर ऋतु में सूर्यका अयन दक्षिण गोल में अर्थात् पितृ लोक में रहता है। ऐसा श्रुति में बतलाया है * और स्वर्गस्यो हैष लोकस्य समारोहणः क्रियते''यूप शकलाचषालं चषालात्

---

* यह सब सुपर्णचिति के सम्बन्धमें खात, रशना, चषाल आदि शतपथ ब्राह्मण में कहे हैं चिति के चित्र को देख कर पाठक उनका स्वरूप समझ सकते हैं।

* सुपर्णचिति के पश्चिम की ओर यजमान के आसन पर से सूर्योदय को देखतेहुए अन्यान्य ऋतुओंमें उसके उदय स्थान के चिन्होंको खात, रशना कहा है। चिति के शिरोभाग को चषाल व पूर्व पश्चिम रेखा में यूप रहता था उनके नाम ऊपर बतलाए हैं।

* [श. ब्रा. २. १. ३. १. ३]

स्वर्गे लोकं समश्नुते । इसका भावार्थ यह है कि [श. ब्रा. ३.४.२४] "यूप शकल व चषाल को लांघकर जब ठीक यूप के मध्यमें अर्थात् पूर्व दिशा में सूर्य उदय होता है उस समय वह स्वर्ग लोक में समारोहण करता है। अर्थात् उस समय सूर्य स्वर्गलोक में चला जाता है।" इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, ऋतु, अयन व अहोरात्र प्रमाण आदि का निश्चय उस वैदिक काल में साम्पातिक मान से ही करते थे।

७२. अब हमें जब उपर्युक्त (स्तंभ ३१-७१ में बतलाए हुए) प्रमाणोंसे प्रतीत हो गया कि वैदिक कालमें ज्योतिः शास्त्र शुद्ध नाक्षत्र व सांपातिक मान निश्चित हो गया था; और सुपर्णचिति आदि नामके काल मापन करने के कई पंचांग उस समय बनते थे। तब ऊपर (स्तंभ ३-७) के कहे हुए आक्षेपों का खंडन व यज्ञ सम्बन्धिनि शंकाओंका समाधान हो जानेसे सिद्ध होता है, कि उस वैदिक कालमें व्यवहारोपयोगी ज्योतिषका ज्ञान सम्पूर्ण ऋषि लोगों को उत्तम प्रकारका हो गया था। इससे उनके बतलाए हुए यज्ञादिकों के काल ज्योतिर्गोलोंकी स्थिति के आधारपर ज्योतिः शास्त्रीय पद्धतिसे उस समयका काल निश्चित करने में हमें किसी प्रकारकी बाधा या शंका नहीं है।

७३. हमने श्रुतियों पर जो अर्थ ऊपर लिखा है वही अर्थ वैदिक काल में प्रचलित था। यद्यपि वर्तमान समय में उक्त श्रुतियों के कई शब्दोंके अर्थ भिन्न होते हैं। किन्तु उसी प्रकारका अर्थ उस समय होता था यह हमने अन्यान्य प्रमाणोंसे सिद्ध किया है। तथा और भी थोड़े पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ से पाठकों को परिचित कर देते हैं कि जिन शब्दोंके अर्थ का सम्बन्ध आगे दिए जानेवाले काल निर्णय का श्रुतियों से है।

७४. वेदार्थ विशारद विज्ञानाचार्यों को उस समय ब्रह्मवादी कहते थे। जैसा कि—

उत्सृज्या ३ नो त्सृज्या ३ मिति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः
(तै. सं. ७.५.७.१)

अर्थात्—अमावस्यादि के समय सूर्य चन्द्रकी स्थिति देखकर चिति के ऊपर इष्टका के स्थल को छोड़े या न छोड़े। इसका ज्योतिः शास्त्रीय आचार्य विचार करते हैं ऐसी श्रुति है। व तात्विक ज्ञान एवं यज्ञप्रयोग को ब्रह्म कहते थे। जैसा कि—

ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् (ऋ. सं. ५.७.४)
"संवत्सर के दूसरे वर्षका यज्ञ प्रयोग कर रहे थे" ऐसी श्रुति है। तथा तात्पर्य निरूपण करनेवाले ग्रंथ को या प्रबन्ध (लेख) को ब्राह्मण कहते थे। जैसा कि

ताद्धिष्ण्यानां ब्राह्मणे व्याख्यायते (श. ब्रा. ३. २. ३. १) "उन नक्षत्रों के तात्पर्य निरूपण करनेवाले दो ब्राह्मण (दो प्रबन्ध) समजे जाते हैं" ऐसी श्रुति है।

७५. उनके यज्ञ प्रयोग वैज्ञानिक प्रयोग थे। जैसे शुनासीरीय यज्ञके संबंध में लिखा है कि:— *

"पूर्वयोः फाल्गुन्योः। अर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रम्। उत्तरयोः फल्गुन्योरग्नि मादधीत भगस्य वा एतन्नक्षत्रम्। कालकंजा वै नामासुरा आसन्। ते सुवर्गाय लोकायाग्निमचिन्वत। पुरुष इष्टकामुपादधात्। पुरुष इष्टकाम्। स इन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण इष्टकामुपाधत्त। एषा मे चित्रा नामेति। ते सुवर्गं लोकमामारोहन्। स इन्द्र इष्टकामावृहत्। तेऽवाकीर्यन्त। येऽवाकीर्यन्त। त ऊर्णविभयोऽभवन्। द्वावुद पतताम्। तौ दिव्यौ श्वानावभवताम्। यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स चित्रायामग्निमादधीत। अवकीर्येव भ्रातृव्यान्। ओ जो बलमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्धत्ते" [तैत्तिरीय ब्राह्मण १. १. २. ४-५]

अर्थात् "पूर्वाफाल्गुनी यह अर्यमा का और उत्तराफाल्गुनी यह भग का नक्षत्र है इन में अग्नि का आधान यानी इन नक्षत्रों से यज्ञ का आरंभ करना अच्छा है" किन्तु आगे चित्रा नक्षत्र के सम्बन्धमें कहते हैं कि "कालकञ्ज नाम के असुरोंने स्वर्गलोक के प्राप्ति के लिये पुरुष के आकार के आकाशीय दृश्य के आधारपर पुरुष इष्टका नामक यज्ञ प्रयोग किया था तब इन्द्र दैवत्य की इष्टका जिसका नाम चित्रा नक्षत्र है वहां से वह स्वर्गलोक में चढ गए [उत्तर की ओर चढे] तो भी इन्द्र [चित्रातारे] से कुछ पीछे हटगए, जहां वे हटगए वहां ऊर्ण नाभि के या धान्य के खले के दृश्य में [जिसे आज अरुंधति थैरा यानें बुढिया के सफेद बालोंके झुबके का तारका पुंज कहते हैं] छोटे छोटे दिखते हैं। और बहुतसे जो ऊपर चढगए उनके तारका पुंजोंकी आकृति दो दिव्य श्वानों [कुत्तों] की सी होगई है। इसलिये उक्त पुरुष, और दिव्य श्वान तथा ऊर्ण नाभी इनका दृश्य चित्रा के समीप होने से जिस किसी यज्ञ करनेवाले को देवताओं [नक्षत्रों] के पहिचानने में भ्रांति [संशय] होवे उसके लिए चित्रा नक्षत्र से दैवत क्रम को निश्चित कर अग्निका आधान करना सर्वोत्तम है क्योंकि चित्रा नक्षत्रसे सब नक्षत्रोंके विभाग निश्चित करने में निःसंशय रीतिसे यथा विभाग में इष्टका [सुपर्णाचिति पर] रखी जाती हैं। इससे देवताओं का तेज, बल, स्वरूप और उनके किये पराक्रम को आप धारण कर लेता है। इसलिये चित्रा नक्षत्रसे ही अन्यान्य नक्षत्रों के विभाग निश्चित कर लेवे" यह इस श्रुतिका तात्पर्य है।

इसीके सम्बन्धमें योंभी कहा गया है कि:-

* शुनासीरीय चित्र देखो।

"शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्। शुनं वरत्रा (घ्रत्रा) बध्नंतां शुनमष्ट्रामुदिंगय ॥ शुना सीरा विमां वाचं शुरेथां यद्दिवि चक्रथु ॥ अर्वाची सुभगे भवसीते वंदामहे त्वा। यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि। इन्द्रः सीतां निगृह्णातु। शुनं नः फाला विकृषंतु भूमिं शुनं कीनाशाऽभियन्तु वा है।" [ऋ सं. ३.८९] इंद्र आसीत्सीरपतिः कीनाशाऽआसन्मरुतः सुदीन वः ॥ त्वष्टा नक्षत्रमभ्यति चित्रां सुभ स्रसं युवतिं रोचमानाम् ॥ निवेशन्नमृतान्मर्त्यांश्च रूपाणि पिंशन्भुवनानि विश्वा ॥" [तै. ब्रा. ३ १.१.९] "अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका।" (पारस्कर गृह्यसूत्र विवाहमें वधूके हाथसे लाजाहोमका मंत्र।

"इंद्र [चित्रातारे] के पास एक किसान [कर्षक] दो श्वानोंके जूए मे जोतकर हल चलाता हुआ दिव्य [तारकापुंज की आकृति] रूप दिखाता है। उसीको ठीक ठीक देखने के प्रयोग को "शुनासीरीय" यज्ञ कहते हैं। उसीके नीचेकी ओर हल की फाल में [सीता=स्वेता] स्वाती=नक्षत्र है। [अरुंधति वेश के] यहां उक्त किसान ने मानों जमीन जोत डाली है" ऐसे ऋग्वेदके मंत्रमें चित्रा नक्षत्र को देवता इंद्र सीर [हल] का पति है। और स्वाती नक्षत्र विभाग के दानव असुर संज्ञक तारे मानों किसान लागोंके मुआफिक खले में मेंढीके चौगिर्द बैलोंको घुमाकर धान्य पुंज तयार कर रहे हैं। तथा चित्रा को त्वष्टा का नक्षत्र कहते हैं जो कि बहुत सुंदर युवति के हाथमें अग्निके मुआफिक दीसिमान् (सुशोभित) हो रहा है। अर्यमा याने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के समीप की "कन्या" मानो चावलो [धान] के रोप [क्षुपा] को जमीनमें बो रही है यहां दृश्य विवाह के अंदर वधू के हाथसे शमी पलाश मिश्राँल्लाजाञ्जुहोति पलाश के शमीके समान छोटे पत्ते अर्यमा देवता के उद्देशसे लाजा सहित होम किये जाते हैं, उसवक्त के ये सब मंत्र शुनासीरीय यज्ञमें बोले जाते हैं।

७६. अब जब वेद मंत्रों के ऐसे सैकड़ों प्रमाणों से 'शुना सीर' का तात्पर्य मालूम हो जाता है तब इस प्रकारसे आकाश के नक्शे को प्रत्यक्ष देख कर जो सिद्धान्त निश्चित हो चुके हैं तब यहां परः—

"वायु शुनः सूर्य एवास्रसीरः शुना सीरौ वायु सूर्यौ वदन्ति ॥ शुनासीर "यास्क" इन्द्रन्तु मेने सूर्येन्द्रौ वा मन्यते शाकपूणिः ॥१॥"

आदि शौनक के कथनका शौनक यास्क और शाकपूणि आदि आचार्योंने इनका कौनसा अर्थ माना है यह देखनेकी हमें आवश्यकता नहीं रही है। क्योंकि प्रत्यक्षा हि श्रुतयः श्रौतेषु प्रवर्तन्ते स्मार्तेषु स्मारणात् A वेदकी रिचाओं का अर्थ प्रत्यक्ष आकाश में दिखता है, किंतु विवाह प्रयोग आदिमें पलाशकी पत्ती व लाजाओंका होम अर्यमा के वृक्ष की पत्ती होमने से उक्त आकाशीय दृश्यका स्मरण रहे इसके वास्ते कहा गया है। यह साथमें दिये चित्र को देख कर पाठक उक्त शुनासीरीय यज्ञका भावार्थ समझ गए होंगे।

७६. संशय, भ्रान्ति, भूल, भ्रम व यथार्थ ज्ञान में बाधा डालने वाले ज्ञान शत्रु को भ्रातृव्य कहते थे; ऊपर (स्तंभ ४१ में) बतलाया गया है, कि नक्षत्र विभाग के चित्रक तारकाओं को देवता कहते थे। अर्थात् देवताओं से उस समय नक्षत्र भोग निश्चित होता था, और देवताओं के विरुद्ध स्थान बतलाने वाले तारों को असुर कहते थे। जैसा कि ऊपर के कथनानुसार कालकंज नामक असुर हुए। वे पुरुष की आकृति के चित्र पर इष्टका रखने से विदित हुए। वे दोनों ऊन के सूतसे बंधे हुए उत्तर के आकाश में दिखते हैं। वे दोनों तारका पुंजाकृति श्वान रूप हैं। इसलिए भ्रान्ति रहित ज्ञाता पुरुष को चित्रा नक्षत्र पर अग्नि का आधान करना चाहिए। ऐसी श्रुति ऊपर कही गई है। इस विषय का स्पष्ट अर्थ समझने के लिए ऊपर के पृष्ठ में शुनासीर का चित्र दिया है। यह चित्र, चित्रा नक्षत्र के ऊपर के विभाग का अर्थात् उत्तरीय विभाग का है। इस चित्र को ही खाल्डियन लोग भूतप कहते हैं।

७७. छाया, अन्धकार, अन्धेरा को पाप तथा छाया की व्याप्ति को पाप्मा कहते थे। जैसा कि:—

छायमेव वा अयं पुरुषः पाप्मनानुषक्तः सोऽस्यात्र कनिष्ठो भवति अधस्पदमिवे यस्यते तद् कनिष्ठमे वै तत्पाप्मान भव बाधवे तस्मादुमध्यन्दिन एवादधीत (श. ब्रा. २. २. १. १०)

अर्थात् ग्रीष्मऋतु के मध्य के समय मध्याह्न काल में पुरुष की छाया की व्याप्ति कम होने से वह बिलकुल छोटी दिखती है। इस आशय को समझाने वाली श्रुति ऊपर लिखी है। इसमें छाया को पाप लिखा है।

७८. नलिका आदिसे ग्रह नक्षत्र नापने की वेध क्रिया को मेध क्रिया व वेध को मेध कहते थे; और युद्ध काल को रेत व रेतः सिग्वेला तथा अभिशवो रश्मयः [श. ब्रा. ५. ३. ५. १४] ज्योतिर्गोल के किरणों को अभिशव

A पारस्कर गृह्य सूत्रके भाष्यके आरंभ में कर्काचार्य के कथन के मुताबिक।

और चित्र व अंकों से संख्या की मापन क्रिया को पशु कहते थे। जैसा कि—
अग्नि देवेभ्य उदक्रामत् । तं पशुभिरन्वैच्छन् स स्वाय रूपायाविरभवत्।
[श. ब्रा. ६. २. ३. २२] "प्रजापते वर्णः परमेण पशुना क्रीयस इति सा यत् त्रिःसंवत्सरस्य विरायते तेन परमः पशुः।" [श.ब्रा. ३. २ ६. ८]
कृत्तिका का नक्षत्र पुंज जब भूल गए थे तब उसके चित्रों की आकृति विशेष को देख कर उसका निश्चय किया था। तथा "प्रजापति का स्वरूप तीन वर्ष के नक्षत्रों के एक ही बड़े चित्र से नापा जा सकता है। इसलिए तीन वर्ष के [११×३=३३] नक्षत्रों का बड़ा नक्शा परम पशु कहाता है" इसीलिए पशवः छन्दांऽसि [तै. सं. ५. ७. ९] गायत्री आदि छन्दों को भी पशु कहा है। तथा अंकों को मिलाने घटाने व गुणने को हनन घात आदि कहते थे।

७९. क्रान्तिवृत्त से नक्षत्रों के दक्षिणोत्तर अंतर को शर कहते थे इसीलिए वसन्त संपात के मास को एष वै मासो विशर इति [तै. सं. ७.५. ७. १] "यह मास विशर है" ऐसा कहा है। तथा मण्डल पूर्ण होने को क्रय व ९०, १८०, २७०, ३६०, अंशों के स्थान को क्रम से द्यौः, अन्तरिक्ष, पृथिवि, व स्वर्ग कहते थे जैसा कि ✱ अमावस्या से यज्ञ का आरंभ करके आगामी मासकी अमावस्या को एक महिने का अर्थात् ३० तिथि का मण्डल पूर्ण होता है। इसी प्रकार ९० सौर दिन में एक एक लोक मुक्त होते हुए ३६० सौर दिनमें चारों लोकों [९०, १८०, २७० व ३६० अंशों] का मण्डल पूर्ण होता है। अतः चितिके ऊपर उन २ लोकोंके स्थानमें इष्टका रखी जाती है। इससे षष्टिश्च त्रीणिच शतानि परिश्रितः [श. ब्रा. १० कां. ५ अ. ४ ब्रा. ५० क.] ३६० इष्टकाएँ बारह मासकी हो जाती हैं। किन्तु यह बारह मास रूपी क्रय=मण्डल पूर्ण होकर उसके ऊपर जो शेष दिन हैं उतनी ही तेरहवें अधिमासकी इष्टकाएँ हैं। इन इष्टकाओंसे धारा (९०°) पृथिवी [२७०°] अंतरिक्ष [१८०°] व स्वर्लोक [३६०°] तभी ढक जाते हैं। जब संवत्सर रूपी क्रय=सौर वर्ष ठीक ठीक पूर्ण होता है और तभी सुपर्णचितिके लोकादि स्थानोंके प्रमाणके समान इष्टका रखी जानेसे वह भी उतनी हो जाती हैं। इस श्रुतिको क्रय श्रुतिभी कहते थे। क्योंकि इस श्रुतिमें "क्रयका" अर्थात् चक्रभोग पूर्ण होनेका निरूपण किया है। इससे यह क्रय श्रुति कहलाती है।

८०. यह पहले शतपथ ब्राह्मण [२. १. ३ १-५] में प्रमाणसे बतलाया गया है कि वसन्तादि तीन ऋतुओंमें देव दिन व शरद आदि तीन ऋतुओंमें देवरात्रि रहती थी और उसीको उत्तरायण दक्षिणायन कहते थे, और ये दो अयन

पूरे होनेपर अर्थात् संवत्सर सम्पूर्ण हो जानेपर देवाकों अहोरात्र पूर्ण होता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण [३.९.२२] में भी लिखा है कि "एक वा एत-द्देवानामहः यत्संवत्सरः" "संवत्सर यह देवोंका एक दिन अर्थात् अहोरात्र है।" इससे ज्ञात होता है कि उत्तर ध्रुव प्रदेशकी स्थितिका ज्योतिष विषयक ज्ञान भी ऋषि लोगोंको था।

८१. हमें अब इस प्रकार के उपोद्घात [उदाहरण] रूप में वैदिक काल की स्थिति सिद्ध करने वाले ऊपर [स्तंभ ११-७९ में] लिखे हुए अनेक वैदिक प्रमाण उपलब्ध हो गये है। उन प्रमाणों से ऊपर (स्तंभ ३-७ में) किये हुए (१-२१) आक्षेपों का खंडन हो गया है। पाठकों को यह विषय जरूर क्लिष्ट मालूम होता होगा, किन्तु करें क्या, लाचार हैं। वे आक्षेप साधारण विद्वानों के नहीं है बल्कि, इतिहासज्ञ तत्ववेत्ता पंडितोंके कहे हुए हैं। इसीलिए उसकी छाया जगत्के अन्यान्य विद्वानोंपर पड़नेसे उन आक्षेपोंकी कल्पना आज जगत्में रूढ़ हो रही है। इसलिए उन आक्षेपोंका क्रमशः उत्तर देतेहुए हम यहां पर वैदिक कालके ज्ञान की स्थितिका यथार्थ स्वरूप बतलादेना आवश्यक समझते हैं।

८२. वैदिक कालमें ऋषिलोगोंको व्यवहारोपयोगी ज्योतिषका शास्त्र-शुद्ध ज्ञान उत्तम कोटिका होगया था। इन सुपर्णचिति आदिका उस समयके पंचांगोंके वर्णनसे स्पष्ट ज्ञान होजाता है। क्योंकि वर्णमाला युक्त लेखन प्रणालीकी पूर्ण व्यवस्था होनेके पूर्व इसी प्रकारके चिन्नोंकी सहायतासे मनुष्य अपने विचारोंको व्यक्त कर सकता था व कर सकता है। यही नहीं किन्तु अपनी वस्तुका भाव व उपयोगिताको दिखानेके लिए अर्थशास्त्रज्ञ लोग वर्तमान कालमें भी ऐसे संकेतके चिन्नोंकी सहायतासे उस वस्तुको प्रसिद्ध करते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार सुपर्णचितिको देखनेसे विदित होता है कि इतने प्राचीन कालमें वेदीपर इष्टकाओंको रख कर उसके द्वारा काल परिमाण करनेका खोज लगाना, ऐसी कल्पना उस कालमें उत्पन्न होना व उस शोधको उक्त सुपर्णचिति आदि पंचांगोंद्वारा उपयोगमें लाना, इत्यादि प्रमाण ही वैदिक कालके उत्तम प्रकारके ज्ञानको सिद्ध करनेवाले साक्षी हैं।

८३. अभीतक जगत्के विद्वानोंकी यह कल्पना है कि, वेद एक धार्मिक ग्रन्थ है। उसमें केवल देवताओंकी स्तुति ही भरी हुई है पर यथार्थमें यह बात नहीं है। वैदिक ग्रन्थ विज्ञानके विशाल रहस्योंसे भरा हुआ है इससे यह

वैज्ञानिक शास्त्रीय ग्रन्थ है। मानव जातिके पूर्वजोंकी कमाई हुई वैज्ञानिक पूंजीका वह ज्ञान-कोष है। उसमें ज्ञान-विज्ञानकी बातें ओतप्रोत भरी हुई हैं। उसमें ज्योतिषका भाग तो आधेसे भी अधिक है। इससे जो लोग यह कहते हैं कि वैदिक ग्रन्थोंमें ज्योतिषका उल्लेख कहीं नहीं है यह सर्वथा उनकी भ्रान्ति और अनभिज्ञता है। वैदिक ग्रन्थोंमें हजारों प्रमाण ज्योतिषके उल्लेखके मिलते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि, जैसे आजकल नक्षत्र तारा ये नाम रूढ़ हो रहे हैं। ऐसे उस कालमें ये नक्षत्र देवताओंके नामसे रूढ हो रहे थे। (स्तंभ नं. ४१ के अनुसार) यह उसी विषयका वर्णन खगोलीय ज्योतिषका प्रकरण है—

८४. वर्तमान समयके पंचांग आदिकी काल-मापन-विधि बदलते हुए उनमें अन्तिम प्रणालीके पंचांगोंको हम वैदिक शैलीके पंचांगोंसे तुलना करके देखते हैं तो उसने उस समयके ज्ञानकी उत्क्रान्तिका सूत्र इस समयसे लगाकर प्राचीन कालतक बँध जाता है। और इसीसे भविष्यमें आनेवाले काल-मापनके कई सिद्धान्त निश्चित होते हैं। उनसे यह भी सिद्ध होता है कि वैदिक कालमें सुवर्णचिति आदि पंचांगोंका आविष्कार हो गया था। उस साधन से ऋषि लोग काल-परिमाण उत्तम रीतिसे करते थे।

सतयुगके कुछ लक्षण ।

अपृथक् दर्शनाः सर्वे ऋक् सामसु यजुंषुच ।
कामद्वेषौ प्रथक् कृत्वा तपः कृत उपासते ॥
[म. भा. शां ६९-८६]

यह बात निश्चित है कि ऋक्, यजु साम और अथर्वण इन चारों वेदोंको बताये गंभीर भावपूर्ण एवं तात्विक सिद्धान्तोंसे ओतःप्रोत वैदिक रहस्य प्रत्यक्ष दर्शक याने दर्शन देनेवाले होजाते हैं। जिसके फल स्वरूप सच्चे अर्थ दृष्टिसन्मुख होजानेसे काम और द्वेष स्वतई दूर होजाते हैं क्योंकि प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणं इस युक्तिकी तरह वैदिक रहस्य ऐसे हल हो जाते हैं कि वाद करनेकी कोईभी स्थळ बाकी नहीं रहता। ऐसी उपासना खासकर कृतयुगके बाचमें ही होती है।

देवा देवर्षय श्चैव स्वं स्वं भागमकल्पयन् ।
ते कार्त-युग धर्माणो भागाः परमसत्कृताः ॥५६॥
[महाभारत शां. ३४०]

साथमें इस बातके कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि देव तथा देवर्षियोंने अमूल्य बुद्धि एव तात्विक शोधोंद्वारा आकाशमें दिव्य ज्योतिरूप देदीप्यमान तारकपुंजोंके जो-जो विभाग और अधिकार निश्चित किये हैं। उनके सच्चे रहस्य एवं तात्विक सिद्धान्तोंको समझनेवाले जो कोई ज्ञानी तथा मर्मज्ञ पैदा होते हैं वह निश्चय ही कार्तयुग धर्मी हैं। क्योंकि परमोत्तम विभाग निश्चित किये की उसकी छटा [धर्म] स्वरूपमें आती है।

यदा वेद श्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुन ।
सवेदाः सश्रुतिकाश्च कृता पूर्वं कृते युगे ॥५॥

जो पहले पहल कृतयुगके आरंभमें वेद तथा श्रुतियोंका अर्थज्ञान बताया गया था वह फिरसे विनष्ट होने लगगया किन्तु जबजब यह विनष्ट होतगया तबतब तत्वज्ञान संचारकोंद्वारा फिरसे इसकी विनष्टता रोकते हुए इस ज्ञानको स्थिर रख पुनः संचार कृतयुगमें ही किया गया है।

कृष्ण चंद्रके उक्त वाक्योंसे निःसन्देह कह सकते हैं कि वेद और श्रुतिके अर्थ ज्ञानका उत्कर्ष प्रायः कृतयुगके बीचमें ही होता है। इसीप्रकार श्रीमद् भागवत पुराणमें लिखा है कि—

युगधर्म व्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ।
भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ [भागवत]

अर्थात्:-"युग धर्मानुसार भौतिक भावोंकी शक्ति कम होनेके फल स्वरूप वेद और श्रुतियोंके ज्ञानमें सन्देह युग युगमें होते आया है।" किंतु इसकी कलियुगमें अधिक प्रबलता रहती है। और जब कृतयुग की छटा आती है, तब फिरसे वैदिक ज्ञान अपने परम उज्वल और वास्तविकताका प्रकाश संचार होनेसे उत्तम स्वरूपसे प्राप्त होजाता है।

इससे भी सारभूत यही निष्पक्ष निकलता है कि वैदिक ज्ञानोंक्रांतिके यदि कहीं लक्षण पाये जायें तो वह सन्देह रहित कृतयुगके लक्षण ही हैं।

त्रेतायुगके कुछ लक्षण।

त्रेतादौ केवला वेदा यज्ञा वर्णा श्रमस्तथा।
[महाभारत शां. ६९-८७]

केवल वेदका अध्ययन, जिसमें प्रत्यक्ष दर्शन ¼ हिस्सेमें कम हो जाता है, ज्ञान क्रांतिकी गति कम हो जाती है, यज्ञ इत्यादिके स्वरूपमें भी इसी हिसाबसे खामी आने लगती है। वर्णाश्रम धर्म ही पर लोग ज्यादा जोर देने लगते हैं। वह त्रेतायुग कहलाता है।

इधर दण्डनीति [1] और शासन प्रणालि आदिमें ¼ (चौथाहिस्सा) भाग कम होजाता है वैसेही पृथ्वी वसुंधरा अधिक प्रयत्न करनेपर भी औषधी एवं वनस्पतियों [धान्यादि] की निपज कम होने लगती है। जगह जगह कई प्रकारके अशुभ चिह्न होने लगते हैं। जिधर देखो उधर जो प्रत्येक विषयमें दिन दूनी और चौगुनी उन्नति होनेके बदले अवनति होने लगती है।

राजा लोग भी अपने शासनमें परिवर्तन करदेते हैं। क्योंकि वे सुभिधायें और आराम तथा अपने कार्यमें निःसंदेह सिद्धी प्राप्त करनेके आवश्यक साधनभी दिनोदिन कम होने लगते हैं। लोगोंके चित्तभी क्रमशः कल्मशयुक्त होने लगते हैं, जिससे सारे कार्य बाधायुक्त हो फसने लगते हैं। वह त्रेतायुग है।

---

[1] दंडनात्या यदा राजा त्रीनंशाननुवर्तते।
चतुर्थमंशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते॥
अशुभस्य चतुर्थांशस्त्रीनंशाननुवर्तते।
कृष्टपच्यैव पृथिवी भवंत्योषधयस्तथा॥
[महाभारत शांति ६९ अ ८८-९२]

द्वापर युगके कुछ लक्षण।

सरोधादायुपस्त्वेमे व्यस्यन्ते द्वापरे युगे।

[महाभा० शां. २३८. १४]

आयुष्य मर्यादामें फरक होजाना यानी आयुमान पहिलेसे कम होने लगता है। ज्ञान संबंधमें केवल वेद अध्ययन करने पर अधिक जोर दिया जाता है। इसका महत्व एवं उपयोगिता बहुतसी यानी आधे हिस्सेमें कम होने लगती है। नाना रोगोंकी उत्पत्ती बार बार होने लगती है। इससे अल्पायुषी लोग अधिक संख्यामें होने लगते हैं।

राजा लोग भी प्रजाके हितकी ओर पूरासा ध्यान नहीं देते।[1] नीतिमें भी परिवर्तन होनेके कारण कई लोगोंको नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं। इससे प्रजाको आपत्तियोंका सामना उठाना पड़ता है। लोगोंके चित्तमें अधिक अस्थिरता बनी रहती है। पृथ्वीमें अधिकाधिक कष्ट करनेपर भी धान्यादि वस्तु की निपज ठीक होती नहीं। राज नीति और राजाओंकी अभिलाषा दूषित होने लगती है। अन्यान्य अशुभ शकुन भी बार बार होने लगते हैं। प्रजाको किसी प्रकारका यत्न करने पर भी श्रेय नहीं मिलता। राजाकी आधी नीयत प्रजारक्षणमें और आधी नीयत निजके रक्षणमें होने लगती है। यह सब लक्षण हो तो निश्चयही वह द्वापर युग है।

कलियुग के लक्षण।

कला व धर्मो भू इष्टं धर्मो भवति न क्वचित्।
सर्वेषामेव वर्णान स्वधर्माच्च्यवते मनः ॥९२॥

जब दण्ड नीति उच्छृंखल होजाती है, यानी अनीतिको ही नीति समझते हैं।[2] राजालोग भी उस ओर प्रायः दुर्लक्ष करते है। अनेक अधिव्याधिसे पीड़ित

---

[1] अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यर्थमनुवर्तते। ततस्तु द्वापरं नाम सकालः सम्प्रवर्तते ॥
अशुभस्य यदा त्वर्धं द्वाप्यंशा ननुवर्तते। कृष्टपच्यैव पृथिवी भवत्यर्धफला तथा ॥
[महा भा. शा. ६९-९०]

[2] शूद्रा भैक्षेण जीवंति ब्राह्मणा परिचर्यया। योग-क्षेमस्य नाशश्च वर्तते वर्णसंकरः ॥९३
वैदिकानि च कर्माणि भवन्ति विगुणान्यितः। ऋतवो न सुखाः सर्वे भवंत्यामयिनस्तथा ॥९४
विधवाश्च भवंत्यत्र नृशंसा जायते प्रजा। क्वचिद्वर्षं तिपर्जन्यः क्वचित् सस्यं प्ररोहति ॥९५
रसाः सर्वे क्षयं यांति यदा नेच्छति भूमिपः। प्रजासंरक्षितुं सम्यक् दण्डनीति समाहितः ॥९६
[महाभारत शा. प. ६९ अ]

होते हैं। अधर्मको धर्मका रंग और धर्मको अधर्मका रंग चढ जाता है। सच्चे धर्मकी विस्मृति होती है। सच्चे वर्णाश्रम धर्मको छोड मनमानी असंख्य जाति पांतियाँ करने लगते हैं। जाति जातिमें भेदभाव की बढती, शूद्र पालक और ब्राह्मण सेवापद स्वीकारते हैं। योग क्षेम का पता नहीं रहता। वर्णसङ्कर प्रजा होने लगती है। वेद मन्त्रोंका अर्थ विहीन प्रलापसे इष्टसिद्धि निष्फल होती हैं। विधवा तथा विधुरकी संख्या अधिकाधिक बढने लगती है। अनावृष्टि और खडवृष्टि बार बार होने लगती है। दुर्भिक्षमी कई बार होता है। नये-नये अपशकुन बार-बार होते हैं। तत्वज्ञान अज्ञान तिमिरमें दबा रहता है तब निश्चय ही कलियुग रहता है।

सतयुग कैसे ?

१. यह कैसे मान सकते हैं कि अब कृतयुग [सत्ययुग] आगया ? क्योंकि आजकल की परिस्थितिका तौल करते कृतयुगका आगमन किसी प्रकार संभवनीय नहीं होता (!)।

२. आजतकके भारतके कुल विद्वानों की दृष्टीमें इतनी मोटी बात अबतक कैसे छिपी रही ? यदि इसमें रहस्य होता तो वे क्या पता नहीं लगा सकते थे ? आज भारत वर्षके घर-घर और कोने-कोनेमें सब ही लोग एक स्वरसे कह रहे हैं कि कलियुग है। पौराणिक भी कलियुग महिमा नित्य प्रति पुराणों में गाते हैं। ऐसी अवस्थामें आपका कथन वैसा ही विचित्र मालूम होता है, जैसे कोई रातको कह देवे दिन।

३. क्योंकि प्रत्यक्षमें कलियुग के अनर्थ ही अनर्थ दिख रहे हैं। समाज समाजसे झगडा, जाति जातिमें झगड़ा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई कहांतक कहे घरघरमें विरोध, वर्णाश्रम धर्मका तो लेश ही नहीं। जिसके जो दिलमें आवे सो ही धर्म वही कर्म वही पंथ वही संप्रदाय। सत्यका लेश नहीं, बात-बातमें मिथ्या कुतूहल खडा होता है। स्त्रियों में सतीत्व नहीं मिलता विधवा विवाहके लिये प्रबलता, स्पर्शा स्पर्श मिटानेकी तयारी हो रही है। मातृसेवा, पितृसेवा, बड़े-बूढोंका आदर आदि बातें कोसों दूर भाग गई हैं।

४. सनातन धर्मका उपहास करनेमें तत्परता, वेदों को जंगली गीत कहना, धर्मग्रंथ का नाम सुनते ही शरीरमें कांटे खडे होना, ईश्वरोपासना से मुंह मोडना-ब्राह्मणोंकी निंदा, गुरुनिंदा, धर्म निंदासे लोगोंको क्षणभर आराम नहीं, अस्पृश्यता निवारणमें अस्पृश्य लोगोंको प्रेरित करनेमें फुरसत नहीं। इत्यादि अनर्थकारक बातें देखनेसे कलिके भयंकर रूपके लक्षण दिखाई देते हैं।

घर-घर धर्म न्यारा, ब्राह्मण ब्राह्मणमें भेद, समस्त भारतमें घोर अन्याय-अत्याचार हो रहा है। असंख्य समाज दिन दूने बढ़ रहे हैं। आयुष्यमान दिनोंदिन घटता जा रहा है। विधवाओंकी संख्या बढ़ती जा रही है। गुप्त व्यभिचार और भ्रूण हत्याएँ बेशुमार बढ़ रही हैं।

ईश्वर पर कोई प्रेम करता नहीं, भय रखता नहीं, भाव भक्ति नहीं। विश्वास नहीं, धर्म श्रद्धा नहीं पूरा प्रेम नहीं। खानपानका तो देखना ही क्या! कोई चलती रेलमें खा रहा है-कोई बोटमें जीम रहा है, कोई भंगियोंके पंक्तिमें बैठकर भोजन कर रहा है।

राजकारणकी ओर दृष्टि फैलाकर देखते हैं तो भारत पारतन्त्र्यकी शृंखलासे जकड़ा पड़ा है। स्वतंत्रताका नाम नहीं चिल्लाकर भी सुननेका काम नहीं, व कोई सुननेवाला भी नहीं। राजसूत्र पराधीन, सम्पत्ति पराधीन, खेती-बाड़ी पराधीन, घर-मकान पराधीन कहांतक कहें सर्वस्व पराधीन ही पराधीन हो रहा है। नौकरीमें श्रम कितना भी करें तो उसकी कीमत नहीं, व्यापार नहीं, व्यवसाय नहीं। हाय धन, हाय धन करके सब लोग चिल्लाते हैं। पैसे नजदीक नहीं।

आध्यात्मिक आदि ज्ञान और योग सामर्थ्यका सपना ही होगया। खगोलिक ज्ञानकी नाम मात्रको भी जानकारी नहीं। इधर शुद्धिकी बीमारी बढ़ती जा रही है। आज हिन्दू मुसलमान होगया फिर कल हिन्दू होजाय परसों क्रिश्चन बन बैठे तो नरसों यहूदी बन जाय। चाहे जो यह चाहे जहां जाय चाहे जो खाय, न कोई किसीका गुरु और न कोई किसीका चेला। ऐसी महाकठिन नानाप्रकार की भयानक आँधी चलरही है, ऐसी विकट अवस्थाके तूफानमें हम कैसे मान सकते हैं, कि अब कृत-युग आगया !!

प्रिय वाचक! उपरोक्त कुल प्रश्न युग-परिवर्तनका नाम लेते ही दृष्टिके सम्मुख खड़े होते हैं। किंतु ईश्वरने सारा-सार-विचार शक्ति सब प्राणियोंके हृदयमें प्रदान की है। सत्यासत्यके परीक्षण के लिए हमें बुद्धि दी है। उस चिकित्सक और तात्विक उज्वलता पर पूर्ण सूक्ष्म विचार करना मनुष्य मात्रका परम कर्तव्य है। अतः पाठकोंकी दृष्टि हम उस ओर खींचकर ले जाते हैं कि परिस्थितिके अनुरूप कौनसा युग माना जाय?

इस ओर जब हम हमारी दृष्टि डालते हैं, तब पता चलता है कि यह युग अट्ठाईसवाँ कलियुग है। अतः यह निःसन्देह है कि भयानक दुःखदाई और धर्म ग्लानि बढ़ानेवाला [और जैसाभी बुरेसे बुरा इसे मान रखा हो] यह युगदेव (कलि) प्रथम एक बार, दो बार ही नहीं किन्तु २७ बार आ चुका है। यानी २७ बार कलियुगका पदप्रवेश हो चुका है। इससे यह बात कोई आश्चर्यकारक नहीं कि यह कलि कोई अनूठा या निराला हो।

अब जब हम इस बातको तय कर चुके कि यह कलियुग अनोखा नहीं है, सत्ताईस बार आया हुआ परिचित है; तब हमें यह देखना परमावश्यक होगया है कि इसके पहिले जब-जब कलि आया है, तब तब ऐतिहासिक दृष्टिसे इसने क्या-क्या परिवर्तन किया? क्या यह पता लगसकता है? यदि कोई ऐसी खोज लगजाय, तो हम कलियुगकी परिस्थितिका अंदाज जरूर निकाल सकते हैं।

इसलिये प्रथम अब हम युगारंभ और कल्पारंभ कालसे पाठकों को दिखा देना चाहते हैं कि युगारंभ कब और कैसे हुआ? पश्चात् परिस्थिति वैदिक कालमें कैसी थी, बीचमें कैसी हो गई, और आज क्या है। क्योंकि पाठकोंको हम इस विषयका निर्णय तबतक ठीक ठीक नहीं बतला सकते, जबतक हम यह न दिखादें कि पूर्व परिस्थितिका स्वरूप कैसा व क्या था।

युगारंभ और कल्पारंभ

काल का दिग्दर्शन।
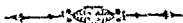
१. अब लीजिये उन प्रमाणोंको जिसके आधारपर आजकल लोग कलियुग को ही लिये बैठे हैं। और उसीको स्थिर करनेकी चेष्टा करते हैं (!)

[१] पंचांगोंको निर्मित करनेवाले ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथ।
[२] संकल्पको निर्मित करनेवाले धर्मानुष्ठानीय ग्रंथ।
[३] धर्माधर्मकी प्रवृत्ति दर्शक धर्मशास्त्रीय ग्रंथ।
[४] देश-दशादर्शक अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रंथ।

इन उपरोक्त निबंधोंसे आपको परिचित करतेहुए, हमारे अन्वेषणके अनुसार कलियुग अंतिम संधिसहित समाप्त होगया यह सिद्ध करेंगे।

२. भारतवर्षमें अब सैंकडों तरहके पंचांग बनकर उनकी प्रतिवर्ष लाखों प्रतियाँ प्रकाशित होती है। तथापि उन सबोंमें युगमान एकही अनुक्रमसे (जो ४३ लाख २० हजार वर्षका) लिखा जाता है। उसमें भी वर्तमान (संवत् १९८७ शके १८५२) में सातवें वैवस्वत मनुके २८ वें युगके कृत, त्रेता, द्वापर बीतकर कलियुगके ५०३१ वर्ष भुक्त होगये, तदनुसार ४२६९६९ वर्ष अभी इसके बीतना बाकी हैं। यह एक ही प्रकार सभी पंचांगोंमें लिखा रहता है।

३. उक्त बातको पुष्ट करनेवाले प्रमाण भूत ग्रह साधनके बहुतसे करण ग्रंथ उपलब्ध हैं। ऐसा ही सिद्धान्त शिरोमणि [१. १. २८] में नन्दाद्रीन्दुगुणा स्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः ॥१॥

अर्थात् शकारंभसे ३१७९ वर्ष पूर्व कलियुगका प्रारंभ होगया है; यों भास्कराचार्यका कथन है। इसीसे वर्तमान शाकेमें उपरोक्त वर्ष जोड़नेपर कलियुगके गत [१८५२+३१७९=५०३१] वर्ष होते हैं। इसी तरह इसके पश्चात्के ग्रंथोंमें ऐसाही लिखा जाता है। और 'सिद्धान्ततत्वविवेक' आदि ग्रंथोंमें भी यही प्रकार है; जो हम ऊपर कह आये हैं।

४. संस्कारभास्कर नामक गृह्य संस्कार प्रयोगोंकी पुस्तक (पृष्ठ २३.२) में अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे-लिखा है। इसी प्रकार बहुत सी प्रयोगोंकी पुस्तकों में जहाँ संकल्प कहा गया है वहां वहां कलियुग ही लिखा है। बस अब इन दोनों मुद्दोंको प्रथम हल करके फिर आगेके दो मुद्दे हल करेंगे।

५. इन प्रश्नोंके हल करने के साथ-साथ यह बात भी दिखा देना हम आवश्यक समझते हैं, कि इसमें वही बातें प्रत्यक्ष प्रमाण-कोटीकी एवं विश्वसनीय समझी जायँगी जोकि उनके काल और समयके लिये प्रत्यक्ष थीं। सिवा इसके भूतकालीन या भविष्यमें होने वाली बातें कही गई हैं; वे सब अनुमान गम्य होनसे प्रमाणकी पात्रता नहीं रख सकती। किंतु, हाँ, इसमें भी वे बातें जो भूतकालीन प्राचीन परंपरागत प्रमाणोंसे ठीकठीक बैठती हो और दिव्य ज्ञानि महर्षियोंके आधार पर कही गई हो, प्रमाण कोटीपर आसकती हैं।

६. इस न्याय दृष्टिसे जब हम उक्त प्रमाणोंको देखते हैं तब पता चलता है कि उक्त ग्रंथकारोंके ग्रंथनिर्माणके समयमें कलियुग प्रारंभ होगया था। क्योंकि यह सच भी है, कि शाके १०७२ में भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रंथको तथा शाके १६२१ में ऋषिभट्टने संस्कारभास्कर नामक ग्रंथको तयार किया। तब उस कालमें या उसके मध्यवर्ती कालमें कलियुगकी प्रतिभावना होना योग्य है। और शिष्ट पुरुषोंकी यह भावना होना भी एक खासा अस्तित्व का द्योतक प्रमाण है।

७. किंतु इस कलियुगारंभ कालको, जिसे भास्कराचार्यने शक पूर्व ३१७९ वर्ष में कहा है; सो बिना इसकी आर्ष परंपरा देखे इनका उक्त कथन ग्राह्य नहीं हो सक्ता। यहां यह शंका होना साहजिक है, कि क्या आर्ष ग्रंथोंके आधार बिना भास्कराचार्यने योंही लिख दिया? क्या तुम भास्कराचार्य से भी बढ़कर हो गये। जो उनका कहा कलियुगारंभ काल नहीं मानते? इनने ही कहा इतना ही नहीं, इनके पश्चात्के सभी ग्रंथ-कारोंने अपने-अपने ग्रंथोंमें जब उनके कथानुकूलही मान्यता दी है; तब फिर उस विषय में यो शंका करना अनुचित है। किंतु यहाँ ऐसी बात नहीं है। क्योंकि तात्विक रीतिसे इसका विचार करनेकी गति ही निराली है।

८. मीमांसा शास्त्र एवं विचार शास्त्रज्ञोंने प्रथम ही इन बातोंको ऐसे स्वरूपमें तय कर रखी हैं कि—

आर्षधर्मोपदेशं च वेदशास्त्र-विरोधिना।
यस्तर्केणाऽनुसंधत्ते सधर्मं वेद नेतरः ॥१॥

—कुमारिल भट्ट

अर्थात्:-ऋषिका वचन हो चाहे स्मृतिका कथन हो, किन्तु उसमें वही बात मान्य हो सकती है, जो कि अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त श्रुति वचनोंसे सम्मत एवं विज्ञान शास्त्रकी संगति युक्त तात्विक रीतिसे और तर्क शास्त्रसे सम्मिलित हो। अन्यथा नहीं।

९. अब ऐसी अवस्थामें जब हम भास्कराचार्यके कथन को देखते हैं, तब न तो इनका कथन किसी ऋषि वाक्यको लेकर है, और न स्मृति वाक्य को आधार मानके कहा गया है। इसीसे हमें तात्विक रीत्या इसकी खोज करना परमावश्यक हो गया है। जब हम इस प्रसंगमें दृष्टि फैलाकर देखते हैं तब पता चलता है कि शक पूर्व [३१७९ वर्षका] कलियुगारंभ काल जो कहा गया है, वह आर्यभट्टके शके ४२१ के समय [६०×६०=३६००] अहोरात्र के पल तुल्य [६०×६०=३६००] अंकोंके भगण को ठीकठीक बैठानेके सुभीतेके लिये वर्ष मानकर उसमें ग्रंथारंभ शक कम करनेपर [३६००-४२१=३१७९] युग चतुर्थ वर्ष कहे हैं। यहां न तो कलियुग, कृत, त्रेता या द्वापरादि युगोंमेंसे किसी एक का नाम है और न भास्कराचार्यके कहे हुए तथा पंचांगमें आजकल लिखे जाने-वाले वर्ष कहे हैं। सचतो यह है कि आर्यभट्टके कहे तीन युगपाद के ३२४०००० वर्षों में उक्त वर्ष मिलानेपर इस अट्ठाइसवें वे युगके ३२४३६०० भुक्त वर्ष होने के कारण भास्कराचार्य कथित या पंचांगों में लिखे जाने वाले उन्हींके प्रमाणित युग प्रमाणसे कृत युगके १७२८००० और त्रेताके १२९६००० वर्ष बीतकर उलट द्वापरके २१९६०० वर्ष उनके समयमें और आज वर्तमानमें [शके १८५२ में] २२१०३१ वर्ष व्यतीत होकर आश्चर्य यह है कि इसी द्वापर युगकेही साम्प्रतमें ६५८९६९ वर्ष बकाये रहते हैं। किंतु कलियुगके नहीं।

१०. इससे स्पष्ट व्यक्त होता है, कि प्रथम ऊपर कहा हुआ जो अर्थ उन लोगोंने किया है, वह सबका सब खींचतानकर बैठाया है। क्योंकि उन्हींके कथनसे न तो द्वापर आता है और न कलियुग। एवं यह बात तो हमने बिलकुल स्पष्ट कर दी है, कि आर्यभट्टने इस गरजसे युग पादोंके वर्ष कहे ही नहीं हैं। † और न कोई कृत त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगोंसे इन युग पादोंका नाता या संबंध है।

११. यदि कहें कि संबंध कैसा नहीं है? देखो निम्न लिखित कथनसे धर्म पाद व्यवस्थाकी साम्यता ठीक तौरसे मिलती है। जैसाकी आर्य भट्टने कहा है किः—

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्धं च ॥
मध्ये युगस्य सुषमादावन्तेदुष्षमेन्दूचात् ॥
[आर्यसि. ३.९]

† षष्ठ्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ॥ त्र्यधिका विंशतिरब्दा स्तदेह मम जन्मनोऽतीताः (आर्यसि ३.१०)

अर्थात् साठ वर्षका युग साठ बार जानेपर मेरे उम्रके २३ वे वर्षमें, यह ग्रन्थ बनाया ऐसा खुद आर्य भट्टने कहा है।

अर्थात्—युगका पूर्वार्ध=उत्सर्पिणी। उत्तरार्ध अवसर्पिणी। मध्य भाग सुषमा और आदि अंतयकी संधि=दुष्षम कहाती है। तथा चंद्रोच्चके भगण यानि चंद्रकक्षा=६००×६०×६० को वर्ष मानकर=२१६०००० उत्सर्पिणी और उतना ही अवसर्पिणी के वर्ष कहे हैं। इस कथनसे तो धर्मका उत्कर्ष व अपकर्ष माननेपर कृतादियुगधर्मकी कल्पना मिल जुलस की है। यदि ऐसा भी कहे तो भी उसकी संगति ठीकठीक नहीं लगती। क्योंकि दोनों प्रकारके वर्ष समान हैं सही; किंतु भास्कराचार्य आदिकोंने जो युगमान स्थिर किये हैं वह आर्यभट्टके कथनानुसार भी बराबर नहीं है। इसके लिये हम जैसाका वैसा टेबल नीचे उध्दत कर देते है, उससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि भास्कराचार्य क्या कह रहे हैं और आर्यभट्ट क्या कहते हैं।

धर्मके चारों पाद	भास्कराचार्य और पचागकारोंका माना युगमान	युग वर्षोंका जोड	आर्यभट्ट कथित युगपाद मान	युग वर्षोंका जोड	
४ कृत	१७२८०००	१७२८००	१०८००००	१०८००००	उत्सर्पिणी
३ त्रेता	१२९६०००	३०२४००	१०८००००	२१६००००	
२ द्वापर	८६४००००	३८८८००	१०८००००	३२४००००	अवसर्पिण
१ कलि	४३२०००	४३२०००	१०८००००	४३२००००	

१२. पाठक देख सके हैं कि आर्यभट्ट जिस बातको खुले तौरसे बिलकुल साफ़ साफ़ दिखा रहा है फिर नहीं समझमें आता कि यह विपरीतार्थ क्यों किया गया?

१३. इससे निःसन्देह यही बात सिध्द होती है कि उपरोक्त युगपाद धर्माचार दर्शक नहीं है; वरना केवल ग्रहगणित के लंबे हिसाबोंको ठीक तौरसे बैठाने के लिये ही आर्यभट्टने इनको कहा है ‡ क्योंकि यहां कहे हुए कृतादि युग गणितका हिसाब ठीक बैठनेके दर्शक हैं। इसलिये तीन युग पादोंको द्वापर युग तक मानकर आगे चतुर्थ पादके ३६०० भुक्त वर्षोंको कलिके भुक्त वर्ष-मानना सर्वथा अयोग्य है।

१४. ज्योतिषके ग्रंथकार कलिके आरंभ कालको प्रधानआधार जिस आर्यभट्टके श्लोक को देते है अब जरा उसका भी रहस्य देखिये—

काहो मनओढ १४ मनु युगश्ख ७२ गता स्ते त ६ मनु युगेच्छना २७ च ॥ कल्पादे युगपादा ग ३ च गुरु दिवसाच्च भारतात पूर्वम् ॥ [आर्यसि. १-३]

---

‡ दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्य युग द्विषट्कगुणम् ॥ ८ ॥
षष्टयब्दा सूर्योद्यानां प्रपूरयन्ति ग्रहाः भपरिणाहम् ॥
दिव्येन नभ परिधिं सम भ्रमंत स्वकक्षासु ॥१२॥ [प्रथमार्यसि अ. ३]

अर्थात्:-" ब्रह्माके १ दिनमें १४ मनु और एक मनुमें ७२ युग होते हैं। उनमेंसे ६ मनु, २७ युग और तीन पाद भारतके गुरु दिवसके पहिले बीत गए" अब देखिये इस श्लोकमें जो भारतका नाम कहा है वह संबंध सचमें भारत वर्ष में जो ग्रंथकार ग्रंथ बना रहा है उसके उपलक्ष में कहा है। यहाँ पेच इतनाही है कि भारत वर्ष होनेकी वजह लोगोंने महाभारत का संबंध जोड़ दिया है। और उसका काल यानी भारतीय युध्द या पाण्डव काल बताते हैं। किंतु यह बताना यहां बिलकुल अप्रासंगिक है। क्योंकि यहां ग्रंथकार अपने शके ४२१ के ग्रंथारंभके समय ग्रहगणित बैठाने के लिये जबकि कल्पादि काल से कहना आरंभ किया है; फिर व्यर्थ ही ३६०० वर्षके पहिले का काल बतानेसे उसे क्या लाभ? इससे न तो कोई गणितकी पूर्ती होती है; और न कोई युगकी सिद्धि; बल्कि यहां महाभारत शब्द का प्रयोग अप्रासंगिक और असंगत है।

१५. युगपादोंके वर्षोंकी भिन्नता और उत्सर्पिणी आदि युगोंके नामकरण देखते निःसन्देह सिद्ध होता है; कि इससे वह अर्थनिष्पत्ति नहीं होती जिसके अर्थ को लोग आज कलियुगारंभकालका आधार स्तंभ मानते हैं। क्योंकि यहां नतो कृतादि युगोंके कोई नाम हैं; और न कोई कलिके आरंभ कालका निर्देश। ऐसे प्रसंगमें कलियुगके आरंभ कालका वर्ष भारतीय युद्ध कालसे बताना कैसे युक्तियुक्त हो सक्ता है। हाँ, इसमें सचतो यह है कि शके ४२१ में चैत्र शुध्द १ को शुक्रवार होकर अमांतमें गुरुवारभी था। इससे निश्चित होता है कि उस वक्त सिर्फ तीन युगपाद ही व्यतीत हुए थे जैसा स्वयं आर्यभट्टने तीन पादतक का काल ही भुक्त लिखा है।

१६. और यह भी मालूम होता है कि धिप् शकात् पूर्वं यह पाठ आर्यभट्टोक्त अक्षरांक विन्यास से धिप=४२१ के शकसे पूर्व इस तरह होता था। उसकी वजह आगे द्वितीय आर्य भट्टके पश्चात् द्वितीय आर्यके पद्धतिसे इसी अर्थमें भारटात्पूर्वम् यानी भा ४ र २ टा १ त्=भारटात् ४२१ के पूर्व ऐसे पाठके जगह भारतात्पूर्वम् पाठ किया प्रतीत होता है। अन्यथा इतने बड़े कल्पादि कालमेंसे ग्रंथारंभका काल दिखाने मात्रका प्रयोजन कालान्तर ज्ञानके सिवा दूसरा नहीं हो सक्ता। और न कहीं आर्यभट्टने आपके शाकेका उल्लेख किया है।

१७. यहांपर यह जरूर निश्चित होता है कि शाके ४२१ में अट्ठाइसवें युगके सिर्फ तीनपाद भुक्त हुए यों ही आर्यभट्टने कहा है। किंतु कलियुगके (३६००) भुक्त वर्ष कहे नहीं है। इससे ऊपर दिखाया हमारा ही अर्थ सिद्ध होता है।

१८. क्योंकि इसके थोड़े ही वर्षोंके यानी ६ वर्षके पश्चात् ही शाके ४२७ में वराह मिहिर नामक बड़े ज्योतिषी हुए उनोने पंच सिद्धान्तिका नामक बड़ा

ग्रंथ बनाया जिसमें पितामह, वासिष्ठ, रोमक पौलिश व सूर्यसिध्दान्त नामक पांच सिद्धान्तोंका संग्रह किया है। किन्तु आश्चर्य है कि इन पांचों सिद्धान्तोंमें और उस कालके प्राचीन कुल संहिता, तंत्रादि ग्रंथोंमें कहींभी कृतादि युगोंका नामो-निशान तक नहीं है। और न इनकी संख्याके युग वर्ष कहीं कहे हैं। तब यह विचारकी बात है कि यदि शक पूर्व ३१७९ वर्षमें कलियुगका आरंभ हो जाता तो क्या कहीं परभी उसका उल्लेख तक भी न मिलता?

१९. इससे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि शाके ४२७ के समय तक ज्योतिषके ग्रंथोंमें चार लाख बत्तीस हजार वाली युग संख्या आदिका प्रवेश ही नहीं होने पाया था। तब बेचारा आर्यभट्ट कहांसे कह सका था कि अब कलियुगके ३६०० वर्ष बीते हैं। यदि कहें कि वराहमहिरके समयतक चाहे लाखों वर्षोंकी युग कल्पनाका ज्योतिषके ग्रंथोंमें पदार्पण न हुआ होगा तथापि भारतादि ग्रंथोंद्वारा पाण्डवोंका काल तो उन्हें मालूम था। क्योंकि वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहिता नामक पुस्तकमें महाराज युधिष्ठिरका शक काल कहा है। किंतु इसके उत्तरमें लाचार होकर कहना पड़ता है, कि यह यथार्थमें युधिष्ठिरका शक वर्ष काल नहीं है। यह खुद वराहमिहिरके निर्धारित प्रमाणोंहीसे सिद्ध होता है। जैसा कि—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ॥
षद् द्विक पंच द्वियुतः २५२६ शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥३॥
एकैकस्मिन्नृक्षे शतंशतं ते चरंति वर्षाणाम् ।
प्रागुदयोप्यविवराद्जूनयति तत्र संयुक्ताः॥ ४ ॥

२०. सप्तर्षि चार में वराहमिहिरने यह श्लोक कहे हैं। इसका अर्थ र निकलता है कि "जब महाराज युधिष्ठिरके अनुशासन काल में यह सप्तर्षि म नक्षत्रपर थे और उनकी चाल सौ-सौ वर्षमें एक नक्षत्र चलने की है। त वर्तमान में इनकी स्थिति देखते [२५-२६ नक्षत्र चालसे] ज्ञात होता है युधिष्ठिरको हुए २५२६ वर्ष हुए हैं।"

२१. यहां शासक कालका लघु शद्ब "शक" काल कहा है। जैसा ि अहोरात्र का होरा शब्द प्रयोगमें लाते हैं। यहां वराहमिहिर के कथनर मतलब सप्तर्षियों की स्थिति के परिवर्तनसे उनकी शत-वार्षिक नाक्षत्र-गा [चाल] बतानेका है। किंतु मघा नक्षत्रपर स्थिति दिखानेका नहीं। देखें महाभारत में ‖ सप्तर्षियोंका वर्णन मात्र आया है। किन्तु मघा नक्षत्रके ऊप

‖ 'तमृते ऋषयः सर्वे देवी चारुंधती तथा' [उद्योग. १११. १४]

स्थिति दिखानेवाला कोई एक प्रमाण नहीं है †। किंतु इसमें यह बात सही है कि महाभारतके युद्धका आरंभ मघा नक्षत्रपर ही हुआ था। क्योंकि ‡ चन्द्रमा की स्थिति मघा नक्षत्रपर थी, यों बिलकुल स्पष्ट कह दिया है। ऐसी सप्तर्षियोंके संबंधमें स्पष्टता नहीं है। और न वराहमिहिरने अपने समयमें स्थिति दिखाई है। फिर सप्तर्षियोंकी स्थिति का २५ नक्षत्रोंका स्थित्यंतर कैसे ग्राह्य हो सकता है।

२२. वस्तुतः सप्तर्षिके सात तारे हैं। वह सौर जगत्के बाहर अत्यन्त दूर होनेके कारण स्थिरप्राय हैं। इससे सिद्धान्ततत्वविवेक भग्रहयुत्यधिकारमें [श्लो. २९-३४] कही हुई उनकी नक्षत्र गति हो नहीं सकती। गणितके हिसाबसे सच तो यह है, कि अयनगतिके कारण ध्रुवका स्थान बदलता जाता है; किन्तु उसकी गति करीब एक हजार वर्षमें एक नक्षत्र पीछे हटती है। और इसी अनुसार ही वराहमिहिरने भी सप्तर्षि-चारके आरंभमें—

ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च ॥
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥२॥

अर्थात्—ध्रुव को केंद्रमें मानकर उसके चौगिर्द घूमनेवाले तारोंका परिवर्तन देखकर गर्गके मतसे मैं सप्तर्षियोंका चार [परि भ्रमण काल] कहता हूँ; यों कहा है।

२३. और इधर भट्टोत्पलने [शाके ७१५ में] जो गर्गसंहिता को छोड़कर कोई वृद्धगर्गके नामसे जो सप्तर्षि चारमें जो कोई श्लोक कहा है उसमें भी युधिष्ठिरका या भारतके काल का गंध तक नहीं है। उसमें तो सिर्फ—

कलिद्वापर संधौतु स्थितास्ते पितृदैवतम् ॥
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः ॥१॥

(बृहत्संहिताकी भट्टोत्पल टीकामें वृद्धगर्ग संहिता सप्तर्षि चार)

अर्थात्—"कलिका आरंभ और द्वापरके अन्तमें जो संधिकाल होता है, उस संधिकालमें सप्तर्षियोंकी स्थिति मघा नक्षत्र पर कही।" और हालमें भी उनकी स्थिति वहींपर है। तब उनकी एक परिक्रमा हो गई क्या? ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। किंतु इसमें सचतो यह है कि सप्तर्षियोंको गति ही नहीं है। यदि अयन गति मानें भी तो षट् द्विकपंचाद्वियुतः (२५०२६) दशं शतंते पाठ होना चाहिये। इससे उक्त कथन विश्वसनीय और शुद्ध नहीं निश्चित होता। इससे प्रमाण कोटीमें यह बात सर्वथैव अग्राह्य है। यदि थोड़ी देरके लिये मान भी

† 'सप्तर्षेन्द्रष्टत' कृत्वा युध्येयुरचला इव' (शांति प. १००. १९)
‡ मघाविषयग सोमस्तद्दिन प्रत्यपद्यत (भीष्म प. १७. २)

लेवें तो भी उससे उस समय गत कलिके ३१७९ वर्षोंका अर्थ निकलता ही नहीं। वरन् भ्रमता व्यक्त होती है। इससे अब यह स्पष्ट हो गया कि कलियुगका आरंभ-काल ठीक-ठीक अमुक शाकेमें हुआ ऐसा सिद्ध नहीं हुआ है।

२४. सूर्यसिद्धान्तादि ग्रंथोंमें कहींपर भी ४३ लाख २० हजार वर्षका युगमान बताया नहीं है। वरन् बार बार उन लोगोंने १२ हजार वर्षोंकी ही संख्या कही है। आर्वाचीन कालके ग्रंथोंसे भी पता चलता है। जैसा कि सूर्य-सिद्धान्तमें कहा है कि–

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः। युगानाम्परिवर्तेन काल-भेदोत्र केवलम् ॥९॥ तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्। सूर्याब्द संख्यया द्वित्रिसागरैरयुता हतैः ॥१५॥ संध्या संध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्। कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥१६॥

(सूर्यसिद्धान्त अ. १)

बारह हजार वर्षका चतुर्युग अर्थात् एक महायुग होता है। यही युगपद्धति मनुस्मृति तथा भारत–भागवत पुराण आदिमें बार-बार समझाई है। और यही पद्धति अथर्वण वेदमें [पृ. १४ पं. ९] मिलती है। इससे बिलकुल स्पष्ट सिद्ध होता है कि इसको दीर्घदर्शी ऋषियोंने बड़े तपोबल के प्रभावसे एवं कई वर्षोंके प्रत्यक्ष अनुभवसे युगमान स्थिर किया है। किंतु यह सच है कि आगे यह कल्पना बदलती गई अर्थात् आगे इसका ३६० से गुणा करने पर वह दिव्य वर्ष होता है ऐसा अर्थ होने लगा। किंतु ऐसा जो अर्थ भास्कराचार्यने किया है वह उनके ग्रंथोंके ही कथनके परस्परके सापेक्षान्तर को देखते सूक्ष्म दृष्टिसे समालोचना करने पर निर्धारित हो जाता है कि उनकी कही ३६० से गुणा कराने वाली समस्या निराधार एवं बिलकुल गलत है। वह इसप्रकार—

(१) अल्पावशिष्टेतु कृते (२) अष्टाविंशात् युगादस्मात्
यातमेतत्कृतं युगम् ॥१॥ अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते ॥५७॥

[मयासुर कृत सूर्यसिद्धान्त अध्याय १]

सूर्यसिद्धान्त का निर्माण कृत-युगके अन्तमें हुआ ऐसा इसमें कहा है।

(२) शेषे त्रेतायुगेत्र संजातः (शा. ब्र. १·४८)

युगके कुछ शेषमें शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त बनाया गया, ऐसा उसमें कहा है।

(३) सप्तमस्य मनोर्याता द्वापरांते गजाश्विनः। सृष्टेरतीताः
सूर्याब्दा वर्तमानात्कलेरथ ॥३६॥ (सोम सिद्धान्त १.३६)

द्वापर-युगके अंतमें याने कलियुगके आरंभमें सोमसिद्धान्तका निर्माण हुआ तव अट्ठाईस युग बीत चुके यों भी कहा है।

(४) कलिसंज्ञे युगपादे पाराशर्यंमतं प्रशस्तमतः ॥
एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौयुगे जातम् ॥
[द्वितीय आर्यसिद्धान्त २. २. पृ. ४३ ख.]

अर्थात् कलियुगके थोड़े वर्ष बीतने पर पराशर सिद्धान्त और नव्य आर्यसिद्धान्त बनाए गए; ऐसा द्वितीय आर्यभट्टने कहा है।

२५. इस प्रकार चारों सिद्धान्तकारोंने चारों युगोंमें अपने २ ग्रंथोंका निर्माण हुआ कहा है। अब उनकी ही लिखी वर्षसंख्यासे उन ग्रंथोंके आपसमें कितने वर्षोंका अंतर होता है तथा तुलनाके लिए ऊपर लिखी हुई भारतोक्त युगपद्धतिकी वर्षसंख्यासे कितना होता है; सो निम्नलिखित कोष्टकमें स्पष्ट करके बताते हैं।

चारों सिद्धान्त ग्रंथोंमें लिखे हुए युगोंद्वारा होनेवाले वर्ष।

अन्यान्य युगोंमें ग्रंथोंका निर्माण काल	ग्रंथोक्त वर्षसंख्यासे शकवर्ष	भारतकी वर्षसंख्यासे शकवर्ष
कृतयुगके अंतमें=सूर्यसिद्धान्त	-२१६३१७९	- ५३५४
अंतरमें त्रेतावर्ष...	१२९६०००	३६००
त्रेतायुगके अंतमें=ब्रह्मसिद्धान्त	- ८६७१७९	- १७५४
अंतरमें द्वापर वर्ष...	८६४०००	२४००
द्वापरयुगके अंतमें=सोमसिद्धान्त ...	- ३१७९	+ ६४६
अंतरमें कलिगताब्द...	३९२५	१००
कलियुगके कुछ बीतने पर आर्यसिद्धान्त...	+ ७४६	+ ७४६

२६. ऊपर लिखे कोष्टकमें ग्रंथोक्त वर्षसंख्या, यानी सूर्यसिद्धान्तादिमें कही हुई युगोंकी वर्षसंख्यासे गिने हुए उस ग्रंथमें लिखे हुए युगके वर्ष है। उन शक-वर्षोंको देख कर हमें आश्चर्य होता है, कि क्या सूर्यसिद्धान्तको बने २१ लाख

वर्ष; ब्रह्मसिद्धान्तको बने ८ लाख वर्ष, और सोम सिद्धान्तको बने, आज ५ हजार वर्ष हो गए! जो कि ऐसा होना कदापि संभव नहीं। क्योंकि यह ज्योतिषके ग्रंथ हैं अतएव इनकी एक-एक बातसे गणितद्वारा कालकी जाँच हो सकती है। तब लाखों वर्ष तो दूर रहे किंतु सौ दोसौ वर्षमें ही इनमें लिखे मंदोच, अयनांश, अयनगति, आदि परिमाणोंमें कितना ही अंतर पड़ जाता है। यद्यपि चाहे इन ग्रंथकारोंके समय उक्त परिमाणोंका तथा परमक्रांति, परमफलादिमानोंका पूरा पता न लगा हो; किंतु अब हमें इन परिमाणोंकी सूक्ष्म गति तक का पता लग गया है, तो इससे अब हम स्पष्ट रीतिसे कह सकते हैं, कि चाहे इनमें लिखे हुए युगोंसे इनके आपसमें उपरोक्त लाखों वर्षोंका फासला बताया जाता हो, किंतु इनमें लिखे भगण, कुदिन, उच्च फल आदि परिमाणोंकी साम्यता देखते निश्चय पूर्वक कह सकते हैं, कि उक्त चारों ग्रंथ आर्यभट्टके इधरके कालमें बने हुए अर्वाचीन हैं। इससे आज इनके ३१७९ वर्ष माने जाते हैं यह ऊपर [स्तंभ १७ में] कहे प्रकार आर्यभट्टके शाके ४२१ के समय ३६०० गताब्द माननेसे ही बन सकते हैं, अन्यथा नहीं।

२७ किंतु इस कथनके साथ यह भी प्रश्न खडा होता है, कि उक्त ग्रंथकारोंने जो अपने ग्रंथ निर्माण कालमें कृत, त्रेता, द्वापरादि युग कहे हैं सो क्या गलत हैं? लेकिन यह भी बात नहीं हमारे कथनसे सिर्फ इनके कहे हुए दिव्य वर्ष गलत हैं, बाकी भारतमें कहे हुए युगोंके वर्ष ठीकठीक [बराबर] हैं। क्योंकि त्रिकालज्ञ ऋषियोंके कहे हुए यह वर्ष हैं। तब भविष्यमें दीर्घदर्शी लोगोंमें युगोंकी भावना हो जाती है यह तत्व हमें मान्य है। इससे हमें मालूम होता है, कि उपरोक्त [स्तंभ २५ के] कोष्टकमें जो भारतकी वर्ष संख्यासे इन ग्रंथोंके द्वारा वर्ष बताए हैं। उस कालमें सूर्य, ब्रह्म, सोमसंहिता नामक ग्रंथ बने हैं। उनके भगणके दिवसादि परिमाणोंको भगणोंका रूप देकर, ये नए ग्रंथ बन हैं। किंतु वे उनमें लिखे हुए युगोंको बताते हुए उनके ही नामपर बनाए गए हैं। इससे न तो इनमें कहे युगोंके नाम गलत होते हैं, और न भारतमें कहे युगोंके वर्ष। सच तो यह है, कि इनमें सूक्ष्मगतिका उस वक्त शोध न लगनेसे प्राचीन परिमाण थे वे ये कहे जाते थे। बाकी दिव्य परिमाण इनमें जो कहा है सो शाके १४६ से ६४६ में पहा हुआ होनेसे, इनके परिमाणोंमें तुल्यता होना स्वाभाविक है।

२८ जब अब इस प्रकार कलियुगके आरंभ कालके शाकपूर्व ३१७९ वर्ष, गणित एवं यथार्थ सिद्ध होगए। और भारतके अनुसार सिर्फ १२ सौ वर्षका कलियुग बताया गया तब भारतका काल भी गलत सिद्ध हो जाता है। क्योंकि आधुनिक विद्वानोंने मुख्यतया कलियुगके आरंभके आधारपर ही भारतका काल बताया है।

तो क्या यह सब गलत है? इसके उत्तरमें इतना ही कथन पर्याप्त है, कि जिन प्रमाणोंको आधार मान कर इन लोगोंने कलियुगका आरंभ स्थिर किया है; उन प्रमाणोंकी गति ही निराली है। यदि ये लोग पूर्वापर संबंध देख कर करते, तो पता लगा लेते, कि इसका सच्चा रहस्य क्या है?

३३. भारतका समय बताना कुछ कठिन नहीं है। क्योंकि "भारत" यह शब्दही उस कालको बता रहा है, कि जिस कालमें वसन्त संपात भारतके महीनेमें होता रहा है। यद्यपि आपको यह भारत मास नया दिखता है, क्योंकि भारत महीनेकी जगह अब मार्गशीर्ष का महीना कहा जाता है; किंतु जो आकाशके नक्षत्र पुंजोंके स्वरूप व नाम जानते हैं वह स्पष्ट कह सकेंगे कि आकाशमें भरतपुंज जो दिखता है, वही मृग नक्षत्र है। इसकी आकृति इसके साथ दिये हुए नक्शेमें वृषभ और मिथुन राशिके चिन्हके साथ देख सकते हैं।

३४. वैदिक संहिता कालमें * इस नक्षत्रका मुख्य रूप वज्रधारी भरतका मानकर, उसके हाथमें मृग चर्मका चिह्न बतलाया है। किंतु ब्राह्मण कालमेंही § मुख्य रूप मृगको माननेसे उसके शिरोभागकी तीन छोटी तारकाओंको मृगशीर्ष नक्षत्र इल्वला=इन्वका कहने लगे थे। पौराणिक कालमें तो इसे रूपक देकर भरतोनाम राजा मृगोभवन्मृग संगाद्वतार्थः "बहुत काल तक मृगकी संगतिसे भरत नामक राजा स्वयं मृग होगया" अर्थात् भारतका महीना मार्गशीर्ष नामसे कहा जाने लगा। इसीलिये भगवान् श्री कृष्णने कहा है कि—

मासानां मार्गशीर्षोहं ऋतूनां कुसुमाकरः

[भीष्म प. म. गीता १०. ३५]

अर्थात्—"महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त मैं हूं" [अहमादिश्च] अर्थात् संवत्सरके यह आरंभके मास व ऋतु हैं। अतएव अनुशासन पर्व [अ.

---

* राजा नाक्षत्रमहुर्गेयमा ॥ अ यते दिवस्थ जनाव ॥ भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विल वासने मनच्छोऽअधि स्यंस्व ॥ [ऋ. मं. ४ ४ ३१] मृगोनभीऽजति यज्जुजुवाणं प्रमदतु ननागृन होता भरते मर्यो मिथुनचान ' [ऋ. सं. २ ४ १३] भरते फेन सूत्र भरतस्य सूनव [ऋ. सं. २ ७ २५] तथा ऋक सं. २ ८ १४ भारताम । मह सत्युम [ऋ. सं. २ ६ २८] अर्थात् मृग=भरत मिथुन राशिके अंतर्गत है। संपात परायन भारत मासमें होनेसे यह नृत्य नाम वैदिक काव्य दिखता आता है। विश मूर्धन सखा [ऋ. सं. २ ६ ३] विभागमें उत्तरायण मृगके रहते नृत्य नाम होता था। (ऋ. सं. २ ६ १३ ७ देखो)

§ ऐतरेय ब्राह्मण [३ ३ ३४] तथा शतपथ ब्राह्मण 'मृगशिरस्प्रजापतेः शिरो यस्य मर्गशीर्षम्' ॥ [२ १. २. १०]

महाभारत और कलियुग।

२९. आज कल जगत् भरके बहुतसे विद्वानोंकी यह भावना दृढ़सी हो गई है कि महाभारत काल, अर्थात् वही कलियुगके आरंभका काल है। और ठीक उसी दिनसे यहां कलियुग प्रस्थापित हुआ है। किंतु हमारे अन्वेषण के अनुसार इस प्रश्नको हल करना परमावश्यक हो गया है, कि ऐतिहासिक और ज्योतिषके प्रमाणोंसे आज भारतको ठीक्-ठीक् कितने वर्ष हुए हैं। और उसमें लिखे हुए युग वर्षोंके हिसाबसे भारतके समय कृतयुग होनेपर भी उसकी प्रस्तुत कलियुगसे एक वाक्यता होती है क्या?

३०. इस ओर जब हम हमारा ध्यान पहुँचाते हैं, तब इतिहासकार कल्हणके मतानुसार वराहमिहिरके समय २९५२ युधिष्ठिरके कालको होते हैं। इससे उसकी एक वाक्यता नहीं होती; वरन् इसी भ्रमपूर्ण कथनसे आगे कल्हणने कहा है कि "कुछ इतिहासकार काश्मीरके पूर्वकालके राजाओंकी गलत फेहरिस्त देते हैं। किंतु कलियुगके उक्त ६५३ वे वर्षमें पाण्डव थे इस कालके अनुसार मैंने राजाओंकी फेहरिस्तको सुधार दिया है" इस कथनसे स्पष्ट हो गया कि राजतरंगिणीमें लिखी काश्मीरके राजाओंकी फेहरिस्तके मुताबिक शुद्ध नहीं है।

३१. इसी प्रकार पुराणों में भी यही भाग मिलाया गया है। जैसा कि भागवत द्वादश स्कंध के १–२ अध्यायमें तो बहुतसे श्लोक शक कालके आठवें शतकतक मिला दिये हैं। क्योंकि उसमें जो भविष्यका इतिहास कहा है, उसमें चन्द्रगुप्त व अशोक सम्राट्से कहते हुए अंतमें यवन, तरुष्क और गुरुंड व मौनों के नाम लिखे हैं, जो कि तुर्क घोरी व मोगल घराने यानी मध्ययुगीन भारत के इतिहासमें पाए जाते हैं।

३२. आधुनिक विद्वानोंने बड़े २ ग्रंथ लिखकर उसमें महाभारतके समयमें जो कलियुग का आरंभ बताया है। उनके मत और नाम इसप्रकार हैं।:–

शकपूर्व	११९६	वर्ष	मद्रासी विद्वान् पिलंडी अय्यर कामत।
,,	१३२२	,,	रमेशचंद्र दत्त और पाश्चिमात्य विद्वान्।
,,	२०९९	,,	विद्वद्वर मिश्रबंधु कृत भारत का इतिहास।
,,	२५२६	,,	राजतरंगिणीके अनुसार कल्हण।
,,	३१७९	,,	वर्तमान पंचांगोंमें लिखे जानेके अनुसार लो. तिलक, दीक्षित, ज्ञानकोष कर्ता केतकर, मि. दप्तरी, रा.ब. वैद्यादिके मतसे।
,,	५०००	,,	कैलासवासी मोडक के मतसे।
,,	५३०६	,,	वे. शा. सं. विसाजी रघुनाथ लेले।

तबसे खुले मैदानमें एक वस्त्र ओढ़कर सोवे तो चंद्रमाकी किरणोंसे बड़ा ही आह्लाद व सौख्यलाभ होता है।

३८. [ख] शांति पर्व [अ. ३०१] में कहा है कि- *आपन्ने तूत्तरां काष्ठां सूर्ये यो निधनं व्रजेत् ॥ नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन् स पुण्यकृत् ॥२३।* अर्थात् उत्तराकाष्ठा यानी पूर्ण उत्तर दिशामें सूर्यके प्राप्त होने पर जिसका मृत्यु होता है, वह बड़ा पुण्यात्मा समझा जाता है। इसी उत्तराकाष्ठाका स्पष्टीकरण वनपर्व [अ. १६३] में किया है कि-" उदीचीं भजते काष्ठां दिशमेष विभावसु ॥ सुमेरुमनुवृत्तःसन् पुनर्गच्छति पांडव ॥१॥ " "जब उत्तर दिशामें पूरा सूर्य प्राप्त हो जाता, तब वह सुमेरु (उत्तर ध्रुव स्थल) को घूम कर उदय होता दिखता है" इससे दिन बहुत बड़ा रहता है -

३९. भीष्माचार्य शरपञ्जर पर सोए बाद जब युधिष्ठिरको धर्मोपदेश करते थे। तब भीष्मजनु आगई [illegible] क्योंकि वहां कहा है कि-ततो मुहूर्ताद्भगवान्

[अयन] होना चाहिये" इससे स्पष्ट हो गया कि माघ [फा] कृष्णमें उस वक्त उत्तरायणका मध्य होता था। क्योंकि अग्निर्ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासा उत्तरायणम् ॥२४॥ गीता [अ. ८] में देव दिनको शुक्र कहा है। और यच्छुष्कं तदाग्नेयम्। यदा ई त्सौम्यम्। य एवापूर्यतेऽर्द्धमासः स आग्नेयः। योऽपक्षीयते स सौम्यः॥ [शतपथ ब्रा. २. ५. ३. २३-२४] सूखी वसंत ग्रीष्म ऋतुको आग्नेय एवं जबसे पानी वर्षने लग जाय तबसे उसे सौम्य कहते थे ऐसे ही शुक्र पक्षको आग्नेय और कृष्ण पक्षको सौम्य कहते थे, इस परंपराके अनुसार भीष्मने माघ महीनेको सौम्य कहा है। अर्थात् उस वक्त पानीके वर्षनेकी मौसिमका शुरू होना और कृष्णपक्षका होना यह दोनों बातें सौम्य विशेषणसे मालूम हो जाती हैं। इससे मालूम होता है कि माघ कृष्णा १० को (यानी फा. व १० को) मध्याह्नके समय भीष्माचार्यका निर्याण हुआ। यह स्थिति [श. ब्रा. २. १. ३ के कथनानुसार] ग्रीष्म ऋतुके मध्यमें आ सकती है। यानी उस उत्तरायणमें सूर्य उत्तरकी तरफ जाता हुआ जब पीछा लौट जाता है तब दक्षिणकी ओर आने लगता है। इससे निश्चित होता है कि भीष्मके निर्याणके समय जो उत्तरायण कहा जाता है वह सूर्यके पूरी उत्तर दिशामें आनेपर कहा जाता था और वह फाल्गुन कृष्णा १० को हुआ कहा है।

४१. ऐसा ही विराटपर्व [अ. ४८] में कहा है कि—

उत्तरं (गोग्रहं) मार्गमाणानाम् ॥८॥ ग्रीष्मे शत्रुवशंगताः ॥२३॥

तथा विराटने उत्तराको कहा है कि—

पश्योत्तरं कृषोदरि ! फाल्गुनमासाद्य निर्जितविपक्षः ॥
वैराटिरिव पतंगः प्रत्यानयनं करोति गवाम् ॥१॥

इसमें फाल्गुन वदि याने अमान्त माघ वदि * अष्टमीको मीनराशिके सूर्यमें + उत्तरकी ओर से सूर्यका लौट आना स्पष्ट कह दिया है। अर्थात् फाल्गुन वदि ८ को उस समय उत्तर दिशासे सूर्य दक्षिणकी ओर लौटने लगता था। यह उपरोक्त उत्तर गोग्रहण व भीष्म निर्याणसे सिद्ध हो जाता है।

४२. [ग] भारतके समय ज्येष्ठमासमें शरद् ऋतुका आरंभ होनेसे निर्मल जलमें कमलोंकी प्रफुल्लताको देख कर उस ज्येष्ठ और आषाढ महीनेको कुमुद

---

* दुर्योधन सैनिकोंको हुक्म देते वक्त अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयंप्रति इमा गावो प्रहीतव्या गते मत्स्ये गवांपदम्। (विराट प. ४८. ११) अश्ववेगपुरो वातो रथी धस्तनयित्नुमान् ॥ शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पांडवम् ॥ [४८. १५]

+ मत्स्य=मीनराशि=विराट आदि उक्त अर्थको ध्वनित करते हैं।

तबसे खुले मैदानमें एक वस्त्र ओढ़कर सोवे तो चंद्रमाकी किरणोंसे बड़ा ही आह्लाद व सौख्यलाभ होता है।

३८. [ख] शांति पर्व [अ. ३०१] में कहा है कि- आपन्ने तूत्तरां काष्ठां सूर्ये यो निधनं व्रजेत् ॥ नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन् स पुण्यकृत् ॥२३। अर्थात् उत्तरकाष्ठा यानी पूर्ण उत्तर दिशामें सूर्यके प्राप्त होने पर जिसका मृत्यु होता है, वह बड़ा पुण्यात्मा समझा जाता है। इसी उत्तराकाष्ठाका स्पष्टीकरण वनपर्व [अ. १६३] में किया है कि-" उदीचीं भजते काष्ठां दिवमेष विभावसुः ॥ सुमेरुमनुवृत्तःसन् पुनर्गच्छति पांडवः ॥१॥ " "जब उत्तर दिशामें पूरा सूर्य प्राप्त हो जाता, तब वह सुमेरु (उत्तर ध्रुव स्थल) को घूम कर उदय होता दिखता है " इससे दिन बहुत बड़ा रहता है ÷

३९. भीष्माचार्य शरपञ्जर पर सोए बाद जब युधिष्ठिरको धर्मोपदेश करते थे। तब ग्रीष्मऋतु आगई थी; क्योंकि वहां कहा है कि-ततो मुहूर्ताद्भगवान् सहस्रांशुदिवाकरः ॥ दहन्वन इवैकान्ते प्रतीच्यां प्रत्यदृश्यत ॥ [शांतिपर्व ५३,२६] सूर्यास्तके दो घड़ी पहिलेतक इतना सूर्य तपता रहा, कि मानों वनको जला रहा है ऐसा पश्चिमके तर्फ दिखने लगा। अर्थात् उतने दिनमें भी बड़ी तेज घाम गिरती रही। यह ग्रीष्मऋतुके सिवाय नहीं हो सकता।

४०. भीष्माचार्यके पास पांडवोंको लेकर कृष्ण गए तब भीष्मको बोले, कि " व्यावृत्तमाने भगवत्युदीचीं सूर्ये जगत्कालवशं प्रपन्ने ॥ गंतासि लोकान् ॥" (शांतिपर्व ५१. १६) "उत्तर दिशामें जानेसे जब सूर्य लौट जायगा तब आप उत्तम लोकमें जानेवाले हैं " निवृत्तमात्रेत्वयन उत्तरे वै दिवाकरे समावेश्य यदात्मानामात्मन्येव समाहितः [शां. प. अ. ४७ श्लोक ३ पृ. ३७. २] अर्थात् उत्तरे अयने निवृत्तमात्रे दक्षिणायनांतेत्यर्थः। तथा आगे अनुशा. प. (अ. १६७) में भीष्म बोले कि—

परिवृत्तोहि भगवान्सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६ ॥
माघोयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ २८ ॥

अर्थात्—" अब सूर्य लौट गया है। और उत्तरायणका माघ महीना आगया है, मालूम होता है एक तिहाई ३ पक्ष बाकी रहा है इसलिये यह शुक्ल

÷ दक्षिण दिशामें सूर्यके जानेसे दिनमान बहुत छोटा होजाता है क्योंकि " काष्ठामाशां दक्षिणतः क्षिप्रं चलितेति " (विष्णु पु. अ. २-११ पृ. २१-१) अर्थात् मानो [illegible] जल्दी चलता हुआ सूर्य दिखाई देता है ऐसा कहा है।

[अयन] होना चाहिये" इससे स्पष्ट हो गया कि माघ [फा] कृष्णमें उस वक्त उत्तरायणका मध्य होता था। क्योंकि अग्निर्ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासा उत्तरायणम् ॥२४॥ गीता [अ. ८] में देव दिनको शुक्ल कहा है। और यच्छुष्कं तदाग्नेयम्। यदा ई त्सौम्यम्। य एवापूर्यतेऽर्द्धमासः स आग्नेयः। योऽपक्षीयते स सौम्यः॥ [शतपथ ब्रा. १. ५. २. २३-२४] सूखी वसंत ग्रीष्म ऋतुको आग्नेय पर्व जबसे पानी बर्षने लग जाय तबसे उसे सौम्य कहते थे ऐसे ही शुक्ल पक्षको आग्नेय और कृष्ण पक्षको सौम्य कहते थे, इस परंपराके अनुसार भीष्मने माघ महीनेको सौम्य कहा है। अर्थात् उस वक्त पानीके वर्षनेकी मौसिमका शुरू होना और कृष्णपक्षका होना यह दोनों बातें सौम्य विशेषणसे मालूम हो जाती है। इससे मालूम होता है कि माघ कृष्णा १० को (यानी फा. व १० को) मध्याह्नके समय भीष्माचार्यका निर्याण हुआ। यह स्थिति [श. ब्रा. २. १. ३ के कथनानुसार] ग्रीष्म ऋतुके मध्यमें आ सकती है। यानी उस उत्तरायणमें सूर्य उत्तरकी तरफ जाता हुआ जब पीछा लौट जाता है तब दक्षिणकी ओर आने लगता है। इससे निश्चित होता है कि भीष्मके निर्याणके समय जो उत्तरायण कहा जाता है वह सूर्यके पूरी उत्तर दिशामें आनेपर कहा जाता था और वह फाल्गुन कृष्णा १० को हुआ कहा है।

४१ ऐसा ही विराटपर्व [अ. ४८] में कहा है कि—

उत्तरं (गोग्रहं) मार्गमाणानाम् ॥८॥ ग्रीष्मे शत्रुवशंगताः ॥२३॥

तथा विराटने उत्तराको कहा है कि—

पश्योत्तरं कृपोदरि! फाल्गुनमासाद्य निर्जितविपक्षः॥
वैराटिरिव पतंग· प्रत्यानयनं करोति गवाम् ॥१॥

इसमें फाल्गुन वदि याने अमान्त माघ वदि * अष्टमीको मीनराशिके सूर्यमें + उत्तरकी ओर से सूर्यका लौट आना स्पष्ट कह दिया है। अर्थात् फाल्गुन वदि ८ को उस समय उत्तर दिशासे सूर्य दक्षिणकी ओर लौटने लगता था। यह उपरोक्त उत्तर गोग्रहण व भीष्म निर्याणसे सिद्ध हो जाता है।

४२. [ग] भारतके समय ज्येष्ठमासमें शरद् ऋतुका आरंभ होनेसे निर्मल जलमें कमलोंकी प्रफुल्लताको देख कर उस ज्येष्ठ और आषाढ महीनेको कुमुद

* दुर्योधन सैनिकोंको हुक्म देते वक्त अष्टम्या पुनरस्माभिरादित्यस्योदयप्रति इमा गावो प्रहीतव्या गते मत्स्ये गवांपदम्। (विराट प ४८ ११) अश्ववेगपुरो वातो रथौघस्तनयित्नुमान्॥ शरधारो महामेघ शमयिष्यामि पाण्डवम्॥ [४८ १५]

+ मत्स्य=मीनराशि=विराट आदि उक्त अर्थको ध्वनित करते हैं।

मास और उसकी पौर्णिमाको कौमुदी कहते थे ° इसी आषाढ़ [ज्येष्ठ] वदी १० को श्रीकृष्णने दुर्योधनको समझानेके लिये प्रस्थान किया तब इसके संबंधमें कहा है कि—कौमुदे मासि रेवत्यां शरदंते हिमागमे ॥ स्फीतसस्य सुखे काले, [उद्योग प. ८३. ७] आषाढ़ वदी रेवती नक्षत्र [दशमी] के दिन शरद् ऋतु उतरने लगी और हिमका आगमन शुरू हुआ ऐसे सस्यसंपत्ति युक्त सुखदाई कालमें कृष्ण गए। अनुशासन पर्व [११५. ७६] में भी " शारदं कौमुदं मासम् " कहा है।

४३. इस बातको पुष्ट करनेवाले बहिरंग प्रमाण भी बहुत हैं, उनमेंसे सिर्फ कात्यायन स्मृतिका १ प्रमाण बताते हैं कि—

अग्रहायण्यावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥
विशेषमाभ्यां ब्रुवते चंद्रचार विदोजना ॥६॥
[कात्यायन स्मृति]

अर्थात् " संवत्सरके पहिले महिनेकी यानी मार्गशीर्ष की, और ज्येष्ठ महीनेकी अमावस्याके समय चंद्रकी गति बहुत तेज़ [विशेष रूपकी] रहती है " ऐसा कहा है। इससे गणित से जान सकते हैं कि रवि चंद्रके क्रांतिकी विशेष गति विषुव संपातके ही वक्त रहती है और आगे कम होते जाती है। इससे मालूम होता है, कि यह स्मृति उस [आग्रहायणिक] कालकी ही बनी हुई है। इसीलिये उस वक्तके विषुव संपातके महीनोंका उल्लेख उक्त कथनसे कात्यायनने किया है।

४४. अतः उक्त दोनों प्रमाणोंसे निश्चित होता है कि भारतके समय ज्येष्ठ महीनेसे शरद् ऋतुका आरंभ होता रहा है। किंतु प्रासंगिक रीतिसे इस बातसे भी पुष्टि मिल सकती है, कि श्रीकृष्ण चरित्रकी रासलीला जो शरद् ऋतुकी पौर्णिमामें कही गई है, सो ज्येष्ठ मासकी पौर्णिमाके उपलक्ष्में कही गई है। अन्यथा विना विशाखाकी अपेक्षा राधा यानी ज्येष्ठाके साथ पूर्णचंद्र=श्रीकृष्णचंद्रकी स्थिति नहीं हो सकती। हमने ज्येष्ठा का राधा नाम यों कहा है, कि उसके पाहिले नक्षत्रका नाम अनुराधाही है।

° " तस्मात्तु कपिलादेया कौमुद्यां ज्येष्ठ पुष्करे " [अनुशा प १३० ३२] ज्येष्ठमासस्य पुष्कर=कुमुद्रूपरा पौर्णिमायामित्यर्थः

गांडीवस्य च घोषेण पृथिवीं समकंपत ॥२४॥
गावः प्रतिन्यवर्तंत दिशमास्थाय दक्षिणाम् ॥२५॥
[वि. प अ ५२]

४५. (घ) इसीप्रकार हेमन्त ऋतुके पहिले महीनेमें गौरी कात्यायनीका पूजन जो श्रीमद्भागवतपुराणमें कहा है वह भाद्रपद मास था क्योंकि भाद्रपद महीनेमें ही प्राचीन प्रणालीसे हरितालिका व गौरी [कात्यायनी] पूजन होती आई है; इस प्रणालीको हमारे त्योहार बता रहे हैं। क्योंकि यह कल्पनामात्र ही नहीं होकर इसका बीज ऐतिहासिक है तभी तो मार्गमासादिकैस्त्रिभिर्ऋतुभिः कल्पितः कालः षण्मासात्मकं उत्तरायणम् ज्येष्ठ मासादिकै दक्षिणायन-मिति (कालमाधव प्रकरण २ पृष्ठ ३०) ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

इसका अर्थ उक्त [स्तंभ ६३ में बताए] गीता वचन और शत. ब्राह्मणके पितर ऋतुओंके अनुसार होता है, कि मार्गशीर्षादि छः महीनोंमें वसन्तादि तीन ऋतु का उत्तरायण और ज्येष्ठादि छः महीनोंमें शरदादि तीन ऋतु का दाक्षिणायन होता है।

४६. इस प्रकारके बहिरंग प्रमाणोंसे तथा भारतमें कहे हुए क ख ग घ आदि प्रमाणोंसे भारतके समय वसंत संपातकी स्थिति भारत मासमें यानी मार्गशीर्षके महीनेमें थी और अब फाल्गुनमें है। इससे स्पष्ट होता है, कि अयन संपात वहांसे पीछे हटता हुआ अब फाल्गुनमें होता है; इससे वसंत संपात ९ महीने पीछे हट गया। तब अयनगतिके गणितद्वारा निश्चित हो सकता है, कि ऐसी स्थिति शक पूर्व १९००० वर्षमें थी। इसमें बारीकीसे देखना हो तो हमारे वेदकाल निर्णय पूर्व खंड [पृष्ठ ३५-६०, १०१-१०४, व २०७-२०८] में तथा उत्तरखंड [ब्राह्मण कालनिर्णय] में 'एता [कृत्तिकाः] ह्वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते' के संबंधका वर्णन और वनपर्व [अध्याय २३०] में धनिष्ठादि कालका अर्थ देख सकते हैं।

पुराणोंमें कलियुगके प्रसादसे घुसी हुई प्रक्षिप्त लीला।

४७. अब पाठकोंके सामने उस विषयको रखते हैं जो मूलपदों और श्लोकोंको बदलते हुए कलि-प्रभावके लीलाने उसमें क्या क्या प्रक्षिप्त किया है? अर्थात् पुराणोंमें कई जगह कलि-प्रभावका कृपाप्रसाद कैसे और कहाँ कहाँ घुसा है? यह केवल कलियुग वर्णन का कुछ विभाग देखनेसे पता लगा है वह जैसाका वैसा नीचे लिखते हैं।

४८. यह मामला [काण्ड] इतना ही नहीं वरन् बहुत गहरा है। और आगे हम गणितद्वारा तथा ऐतिहासिक व शास्त्रीय प्रमाणोंसे सिद्ध करने वाले हैं,

कि शाके ६४६ से प्रस्तुत कलियुग का आरंभ हो गया था, किंतु इसके १२०० वर्षके कालमें इस कलियुगकी परंपरा व अस्तित्व को बतानेके लिए पराशरस्मृति, भारत और पुराणादिकोंमें इतना भाग प्रक्षिप्त कर दिया है, कि उसको ढूंढते २ मति चकरा जाती है। तोभी जैसे पानीमें डाला हुआ तेल अलग ही तैरता हुआ भिन्नता दिखानेमें सामर्थ्यवान है, इसी प्रकार प्रक्षिप्त श्लोकोंकी अप्रासंगिकता व व अनुपयुक्तता तात्विक दृष्टिसे छिपी नहीं रहती। इसलिए हमने आद्यन्तक श्लोकोंके बीचमें बड़े अक्षरोंसे प्रक्षिप्त भाग बतादिया है, कि जिससे पाठकोंको वह भाग सरलतासे समझ सके।

८९. इसमें पहिले भारतमें जो प्रक्षिप्त मिलाया है उसमेंसे दो-चार श्लोक बताते हैं। "त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः॥ असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥३॥ "समन्तपंचकमिति पुण्यं तत्परिकीर्तितम्"॥११॥ येन लिंगेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते॥ तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः॥१२॥ (अंतरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्॥ समन्तपंचके युद्धं कुरुपांडव-सेनयोः॥१३॥ तस्मिन्परमधर्मिष्ठे देशे भूदोषवर्जिते॥ अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया॥१४॥ समेत्य तं द्विजास्ताश्च तत्रैव निधनं गताः॥ एतन्नामाभिनिर्वृत्तं तस्य देशस्य वै द्विजाः॥१५॥ [आदिपर्व अ० २]

इसमें समन्त पचककी विशेषताके वर्णनमें जब कि १४-१५ श्लोको द्वारा अठारह अक्षौहिणी सेनाका युद्ध होना कहा गया है फिर व्यर्थ ही 'जब कलि व द्वापर का संधिकाल प्राप्त हुआ था, तब कौरव पांडवोंकी सेनाका समन्तपंचक क्षेत्रमें युद्ध हुआ।' यह कालवर्णन का अप्रासंगिक १३ वा श्लोक अलग ही प्रक्षिप्त दिखता है अर्थात् इसको नहीं पढते हुए आद्योपांत प्रकरणको देखें, तो बराबर धाराप्रवाह अर्थ लगता है। और इसके साथ पढनेमें आगेका युद्धवर्णन निरर्थक हो जाता है।

९० ऐसा ही पाठ भेद करनेका दूसरा उदाहरण यह है, कि 'गदा युद्धमें नाभिके नीचे आघात नहीं किया जावे' इस युद्धके नियमको त्यागकर जब भीमने दुर्योधनकी जंघाको गदासे फोड़ कर गिरा दिया, तब अधर्म युद्धसे क्रोधित हुए बलरामको इसका कारण समझाते हुए श्रीकृष्ण बोले कि—

"प्रतिज्ञा पालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम्॥ सुयोधनस्य गदया भक्तास्म्यूरू महाहवे॥ इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले॥१७॥ मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा॥ ऊरू ते भेत्स्यते भीमो गदयेति परंतप॥१८॥ अतो दोषं न पश्यामि धर्मात्मा सततं धर्म-वत्सलः भवान्प्रख्यायते लोके तस्मात्संशाम्य मा क्रुधः॥२०॥ प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च॥ आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च

पांडवः ॥२५॥ धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात्सविशांपते । नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संसदि ॥२६॥ हत्वा धर्मेण राजानं धर्मात्मान सुयोधनम् ॥ जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं या स्यति पांडवः ॥२७॥

[शल्य-गदा पर्व अ. ६०]

५१. अर्थात् " प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रियका धर्म है ॥१६॥ और ऐसा मुझे मालूम है, कि पहिले सभामें भीमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्धमें गदासे दुर्योधनकी जंघाओंको फोडूंगा ॥१७॥ दूसरे दुर्योधनको मैत्रेय ऋषिका शाप हुआथा कि तेरी जंघाओंका भीमसेन गदासे भेदन करेगा ॥१८॥ इसलिए दुर्योधनके नाभिके नीचे भीमने गदा मारी है सो इसमें अनुचित नहीं है ॥१९॥ सो आप धर्मात्मा एवं धर्मप्रिय हो; इसलिये उपरोक्त कारणोंको देख आप क्रोधित न होवें ॥२४॥ **प्राप्तं शापं ऋषेर्विद्धि प्रतिज्ञां पांडवस्य च ॥ आनृण्यं यातु शापस्य प्रतिज्ञायाश्च पांडवः ॥२५॥** क्योंकि एकतो यहां ऋषिका शापका फल हुआ समझो और दूसरा भीमकी प्रतिज्ञाको देखो, तो इसमें दुर्योधनका ऋषिके शापसे और भीमसेनका प्रतिज्ञाको पूरी करनेसे ऋणमुक्त होना पाया जाता है ॥२५॥ इस प्रकारके धर्मका आभास बतानेवाली छलरूप श्रीकृष्णकी बातें सुनके नाराज़ हो कर यहां बलराम बोले कि ॥२६॥ अधर्म युद्धसे धर्मात्मा दुर्योधन राजाका घात किया है, इससे पांडव कपट योद्धा है, ऐसी लोकिकमें अपकीर्ति होगी ॥२७॥ " ऐसा कह कर बलराम चले गये ।

५२ उपरोक्त अर्थके पूर्वापर सदर्भको देखते मालूम होता है, कि **शापं ऋषेः** की जगह **कलियुगं** और **शापस्य** की जगह **वैरस्य** ऐसा पाठ भेद किया गया है। यदि उसको मिलाकर अर्थ करें तो शाप और प्रतिज्ञाका कारण पहिले बताए बाद जिसका इस आख्यानमें कहीं नाम तकभी नहीं आया। ऐसे कलियुगकी प्राप्तिका बीचमें ही नया कारण बताते हुए; शापका कारण छोड़कर उसके साथ फक्त एक प्रतिज्ञाका ही कारण बताना मानों भारतके ग्रंथकार एवं श्रीकृष्ण को अज्ञानी बताना है। इतनाही नहीं कलियुग आ जाने पर ऐसे पाप करनेमें दोष नहीं, यह ध्वन्यर्थ निकलनेसे बलराम का धर्मकथन भी निरर्थक होजाता है। इसके लिये शुद्ध पाठका श्लोक बडे अक्षरोंमें ऊपर बता कर उसीके अनुसार यह यथार्थ अर्थ कहा गया है।

५३. ऐसा ही पाठ-भेदका तीसरा उदाहरण यह है कि-वनवासमें भीमसेनके युग धर्म पूछने पर हनुमान कहते हैं कि—

" युगेष्वावर्तमानेषु धर्मो व्यावर्तते पुनः ॥ धर्मे व्यावर्तमाने तु लोको व्यावर्तते पुनः ॥ ३६ ॥ लोके क्षीणे क्षयं यांति भावा लोकप्रवर्तकाः ॥ युग-क्षय-

कृताधर्माः प्रार्थनानि विकुर्वते ॥ ३७ ॥ (एतत्कालियुगं नाम अचिराद्यत्प्रवर्तते) ॥ युगानुवर्तनं त्वेतत् कुर्वंति चिरजीविनः ॥ ३८ ॥ यच्च ते मत्परिज्ञाने कौतूहलमरिंदम । अनर्थकेषु को भावः पुरुषस्य विजानतः ॥ ३९ ॥

[वनपर्व अध्याय १४९]

५४. उपरोक्त श्लोकोंके पहिले चारों युगोंके लक्षण व धर्म कह गये तब द्वापरके अंतमें यदि आगे कलियुग आनेवाला है ऐसा कहा जाता तो वह विषयान्तर होतेहुए भी प्रासंगिक कथन होजाता। किंतु यहां कलियुगके बाद सामान्यरीतिसे युगोंके भाव कैसे २ बदलते जाते है इस प्रसंगमें उपरोक्त प्रक्षिप्त पदकी जगह " एतत् कृतयुगं नाम " पद होना चाहिये । क्योंकि उसके पूर्वापर संबंधसे ऐसा अर्थ निकलता है, कि " यह जो थोड़ेही वर्षोंसे जो शुरु हुआ है उसका नाम कृतयुग है इसके लिये वृद्ध पुरुष नये युगका अनुवर्तन करने लगते हैं ॥३८॥ इससे तुमको मेरे ज्ञानकी अपूर्वता देखनेकी लालसा है तो [मेरा यह सिद्धान्त है कि] विचारवान पुरुषको ऐसी अनर्थकारी बातोंमें क्यों भाव रखना चाहिये? ॥३९॥ अर्थात् मेरी समझसे युगपरिवर्तन हो गया है। यदि मानलो नहीं हुआ है। तो भी अनर्थकारी भावोंको रखनेमें बुद्धिमान पुरुषको क्या फायदा है। इसप्रकार इन श्लोकोंका ही नहीं वरन् सब आसपासका संबंध देखते वहां कृतयुग शब्द होना चाहिये कलियुग नहीं। क्योंकि कलियुगका पाठ मानों तो आगेके ३९ श्लोकोंका उपदेश निरर्थक हो जाता है। और कलिमें आगे संकट परंपरा आवेगी ऐसा कलियुगका संबंध वर्णन किया जाता किंतु यहां वह कहा नहीं है वरन महायुगका पूर्ण होना कहा है।

५५. ऐसा ही अनुशासन प. (अ.१२९) में कहा है कि-" इदं कलियुगं प्राप्य मनुष्याणां सुखावह' " यहां मनुष्योंको सुखदाता कृतयुग होना चाहिये था; किंतु पुस्तकोंके लेखक इतने कालमें अनेक होनेसे कलियुगकी कल्पना छाप डुबोंसे वह कृतयुग शब्द कैसे आ सकता था, अतः आगे असंभवित दिखनेसे इदं कृतयुगं प्राप्य की जगह उपरोक्त पाठ तो कर दिया किंतु सुखावह नहीं बदलने पाये सो बड़ी कृपा करी। नहीं तो सुखावहके सिवा कृतयुग कैसा रह सकते थे।

५६. उपर्युक्त समालोचनाके द्वारा भारतके समय कलियुगके आरंभको बतानेवाले प्रमाण अप्रासंगिक ही नहीं अजागलस्तनवत् निरर्थक होनेसे कल्पित पाठके एवं पाठभेदके सिद्ध हो जाते हैं। अतएव उनके स्थानमें जो संशोधित पाठ हमने बताया है, उससे निश्चित हो सकता है कि उस समय कृतयुगकी

स्थिति थी। क्योंकि उसी सिद्धान्तको पुष्ट करनेवाले प्रमाण और भी बहुतसे मिलते हैं। जैसाकि—

(१) पुरा कृतयुगे राजॅश्चार्वाको नाम राक्षसः ॥

(शांति प. ३९. १-१०)

पहिले कृतयुगमें चार्वाक नामका राक्षस हुआ। यह चार्वाक युधिष्ठिरका समकालीन था। क्योंकि युधिष्ठिरकी सभामें निन्दा करने पर यह मारा गया था।

(२) पूर्वं कृतयुगे राजन्नैमिषेया तपस्विनः ॥ ...सत्रे द्वादश वार्षिके ॥ (शल्य प. ४८. ४१)

पहिले कृतयुगमें नैमिषारण्यवासी ऋषि लोगोंने बारह वर्षका सत्र किया उसमेंके ही मैत्रेय ऋषिने दुर्योधनको शाप दिया था, इसलिए यह दुर्योधनके समकालीन था तथा पुरा कृतयुगे व्याघ्रपाद·। तस्याहमभवन्पुत्रो धौम्यश्चापिममानुजः(अनुशा. प. १४. १२०) पहिले कृतयुगमें व्याघ्रपाद हुए उसके धौम्य नामक पुत्र हुआ, यह युधिष्ठिरका समकालीन था।

५७ इन दो प्रमाणोंमें पुरा कृतयुगे, पूर्वं कृतयुगे ऐसा लिखा होनसे सिर्फ इतना ही अर्थ निकलता है, कि भारतीय कालके पहिलेसे ही कृतयुग शुरू हो गया था। किंतु इसमें अस्मिन्कृतयुगे ऐसा न होनेसे स्वाभाविक ऐसी शंका हो सकती है, कि उस वक्त कृतयुग निकल कर त्रेतायुग क्यों न लग गया हो? किंतु यह शंका आगेके प्रमाणसे हल हो जाती है। वह यह है कि-

[१] असंख्याता भविष्यंति भिक्षवो लिंगिनस्तथा ॥
आश्रमाणां विकल्पाश्च निवृत्तेऽस्मिन् कृतयुगे ॥

(शांतिपर्व ६५. २५)

भीष्माचार्यने मांधाता इंद्रका संवाद देते हुए युधिष्ठिरसे कहा है कि "इस कृतयुगके निकले बाद बहुतसे भिक्षुकोंके भेद और आश्रमोंका परिवर्तन हो जावेगा" इस कथनमें भीष्माचार्यने अस्मिन्कृतेयुगे स्पष्ट कहा है। यदि कहें कि यह संवाद तो मांधाताके वक्तका है। जोकि युधिष्ठिरके २०।२२ पीढ़ी पहिलेका है। किंतु चाहे यह हजार पांच सौ वर्ष पूर्वका हो तो भी कृतयुगका परिमाण इतना बड़ा है, कि उसकी इतने वर्षोंमें निवृत्ति नहीं हो सकती। और यदि निवृत्ति हो जाती, यानि त्रेतायुग लग जाता; तो भीष्माचार्य उसको संदिग्ध नहीं रखते।

५८. अब जब इसप्रकार सिद्ध होगया कि भारतके जिन प्रमाणोंके आधार पर मेरे परमपूज्य बांधवोंने भारतका काल बताने व उसके साथ कलियुगके आरम्भकाल बतानेका कष्ट उठाया। किंतु जब कि उपरोक समालोचनाके आधार ही निराधार सिद्ध हो गए, तब उनका बताया हुआ भारतका काल व वहांसे कलिका

आरंभकाल कैसे माना जासकता है? प्रत्युत भारतके समय कृतयुग था, कलियुग नहीं। ऐसे भारतके ही दो चार प्रमाणोंसे निश्चित होता है। और यह भी बताया गया है कि आज जो पंचागोंमें युगोंके वर्ष लिखेजाते हैं, वह वराहमिहिर के पहिले प्रचलित नहीं थे। तब स्वयंसिद्ध हो जाता है, कि कलियुगका आरंभ जो शकपूर्व ३१७९ वर्षसे पंचागोंमें लिखाजाता है वह गलत है। चाहे गणित के तजवीजके लिये कितने भी वर्ष माने किंतु वह ऐतिहासिक नहीं है। तब भारत के समय यह युगोंके वर्ष कहांसे होसकते हैं। किंतु साथमें यह प्रश्न खडे होते हैं कि फिर भारतके समय युगोंके वर्ष कैसे माने जाते थे? और जब भारतके समय कृतयुग था ऐसा मानलेवें तो वहांसे इस कलियुगतक कृत, त्रेता, द्वापर व कलियुग इनके भी उल्लेख अन्यान्य ग्रंथोंमें मिलने चाहिये तथा उनका मेल भारतमें कहे वर्षोंसे ठीक ठीक मिलना चाहिये?

५० उपरोक्त प्रश्नके उत्तरमें हमारा यह कहना है कि जब हम भारतमें लिखे हुए कृतयुगसे उसका काल निश्चित करना है, तब भारतमें ही लिखी युग संख्यासे कर सक्ते हैं। क्योंकि उस वक्त वही युगसंख्या प्रचलित था, अतएव आज चाहे पंचागोंमें युगसंख्या और ही हो, किंतु जब कि उसका थी ही नहीं फिर उसके द्वारा कालनिर्णय कैसा करसक्ते हैं? इसके लिये भारतमें युगसंख्या कैसी लिखी है सो हम बताते हैं।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतयुगम्॥२२॥ तस्यतावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ त्रीणि वर्ष सहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते॥२३॥ तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ तथा वर्षसहस्रेद्वेद्वापर परिमाणतः॥२४॥ तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ सहस्रमेकं वर्षाणां ततः कलियुगं स्मृतम्॥२५॥ तस्य वर्षशतं संधिः संध्यांशश्च ततः परम्॥२६॥ क्षीणे कलियुगे चैव प्रवर्तति कृतं युगम्॥ एषा द्वादश साहस्री युगाख्या परिकीर्तिता॥२७॥ एतत्सहस्रपर्यन्तमहोब्राह्म मुदाहृतम्॥२८॥ लोकानां मनुजव्याघ्र प्रलयं तं विदुर्बुधः॥२९॥ [वनपर्व अ १८८]

युग	संख्या	जोड		युग	संख्या	जोड	
कृतसंधि	४००	४००	कृत	द्वापरसंधि	२००	८६००	द्वापर
कृतयुग	४०००	४४००		द्वापरयुग	२०००	१०६००	
कृतसंध्यांश	४००	४८००		द्वा संध्यांश	२००	१०८००	
त्रेतासंधि	३००	५१००	त्रेता	कलिसंधि	१००	१०९००	कलि
त्रेतायुग	३०००	८१००		कलियुग	१०००	११९००	
त्रेतासंध्यांश	३००	८४००		कलिसंध्यांश	१००	१२०००	

अट्ठाईसवें कलिका आरंभ काल।

६०. अब जब इस प्रकार उपरोक्त (स्तंभ ४४में बताए हुए) दोनों प्रश्नोंको हल करते हुए बताया गया है, कि १२ हजार वर्षमें चारों युग पूर्ण हो जाते है तथा भारतके समय कृतयुग था और भारतको हुए शकपूर्व करीब १९ हजार वर्ष हुए हैं। किंतु अब यह मुद्दा हल करना है कि इस कलियुगका आरंभ कब हुआ है? क्योंकि आरंभ-काल निश्चित होने पर इसका समाप्ति-काल भी निश्चित हो सकेगा।

६१. कृतादि युग धर्मपाद व्यवस्थापर कहे गये हैं और, कलियुगमें ¼ अंश धर्म रहता हुआ अंतमें यह भी लुप्त हो जाता है ऐसा (स्तंभ २१ में) कहा गया है; किंतु महाभारतमें ऐसे कई प्रमाण उपलब्ध होते हैं, कि हरएक युगके अंतके समय अत्याचारादिके कारण धर्माचारमें बड़ी गड़बड़ी पैदा होती है और ऐसा ही विष्णुस्मृतिके आरंभमें लिखा है कि:—

कृते युगे ह्यपक्षीणे लुप्तो धर्मः सनातनः॥ तत्र वैशयिम.णे च धर्मो न प्रतिमार्गितः॥२॥ त्रेतायुगऽथ संप्राप्त कर्तव्यश्चास्य सग्रहः॥

अर्थात् "कृतयुग समाप्त होनेपर सनातन धर्म भी लुप्त हो गया। इससे पूर्व परंपरागत बातें विस्मृत होनेसे उसकी खोज भी रुक गई थी; किंतु अब त्रेतायुग प्राप्त हो गया है वास्ते अब अपने कर्तव्योंका संग्रह करना चाहिये" इस कथनसे ज्ञात होता है, कि हरएक युगके संधिकालमें सनातन कालसे आये हुए वैदिक धर्ममें गड़बड़ी होती आई है। और आगे यों भी कहा है कि—

चलितं ते पुनर्ब्रह्म स्थापयंति युगे-युगे।

विचालित वैदिक धर्मकी युग-युगमें पुनः पुनः स्थापना होती गई है।

६२. उक्त विष्णुस्मृतिमें जब कि त्रेतायुगका आरंभ काल बताया है। उक्त (स्तंभ ५० के) भारतोक्त युग वर्षोंसे इसके शक पूर्व ५३१४ वर्ष हो सकते हैं। यद्यपि उपरोक्त (स्तंभ २८ के) कथनानुसार शाके ४२१ के पर्यन्त अब कलियुग है ऐसा वर्तमान कालीन प्रमाण ज्योतिर्विद्वाने कहा नहीं है किंतु स्तंभ ४९–५० से मालूम होता है, कि शाके ६४६ में सोमसिद्धान्त कारने चाहे किसी रूपमें कहो' किंतु उसमें कहा है कि "द्वापर युगका अंत हो कर अब कलियुगका आरंभ हो गया है।"

६३. ऐसाही पराशर स्मृतिमें भी वर्तमाने कलौयुगे (अ. १ श्लो. २) कर्माचारं कलौ युगे [अ. २ श्लो. १] वर्तमानमें कलियुग है। ऐसा एक

एक स्थलमें कहा है किंतु यह प्रक्षित है, क्योंकि आगे कही जानेवाली कलिवर्ज्य प्रकरणकी बातें इसमें कहीं भी कही नहीं हैं। इतना ही नहीं, किंतु किसी भी स्मृति-ग्रंथमें कलिवर्ज्य बातें कही नहीं हैं, इससे निश्चित होता है कि शाके ६४६ के पहिले कलियुग होता तो इसमें वर्ज्यकी बातें भी मिलनी चाहिये थी, जब कि यह सब बातें उक्त कलियुगारंभ के बाद ही पुराण इत्यादिमें भी प्रक्षित रूपसे मिलती हैं। इससे तथा पराशर स्मृतिमें जहाँ ऊपर लिखे मुआफिक प्रत्यावित रूपके ८।१० श्लोक मिलते हैं वे प्रक्षित हैं।

६४. किंतु हमें यहां विष्णु व पराशर स्मृतिका कालनिर्णय नहीं करना है, सिर्फ यह बताना है कि कुल २६ स्मृति ग्रंथोंमें जब कलियुग है, इसमें वर्ज्य ये-ये बातें हैं ऐसा किसी भी स्मृतिग्रंथ का कथन नहीं है 'तब यह कलिवर्ज्य प्रकरण किसने कहा है' यह देखना चाहें तो निर्णयसिंधु [तृ. प्र. पूर्वार्ध] में देख सकते हैं। यद्यपि उसमें बृहन्नारदीय पुराण और हेमाद्रि, माधव, अपरार्क आदि निबंधकारोंके बताए हुए पुराणोंके नामसे कुछ श्लोक कहे हैं; किन्तु उन २ पुराणोंमें उसके स्थल को देखते हैं तो ये श्लोक उन उक्त पुराणादिकों में भी प्रक्षित नजर आते हैं। इससे पता चलता है कि यह सब शाके ६४६ के इधर के ही बने हुए हैं। इसका अधिक विस्तृत विवरण आगेके प्रकरण में मिलेगा।

६५. हमें इसमें भी कुछ कहना नहीं है। चाहे कलि वर्ज्य बातें अर्वाचीन, क्यों न हों, किंतु वह कलिकालकी स्थिति को देख कर ही वर्ज्य की हुई बातें योग्य हैं। कलि में उनका वर्ज्य करना चाहिये ऐसी हमारी भी राय है। क्योंकि उस समय वैसी ही स्थिति हो गई थी।

६६ पाठकों को स्मरण दिलाने के लिए प्रासंगिक रीतिसे इस समय का थोड़ा इतिहास लिखते हैं कि ईस्वी सन की छठी शताब्दी में अरबस्थान में मुसलमान धर्म की स्थापना होकर सातवें शतकमें उन लोगोंका भारत व यूरप में प्रथम ही प्रवेश हुआ। और आगे तीन सौ वर्षों में इन लोगोंने वहां व यहां अपना राज्य स्थापन करते हुए, बहुत ही अत्याचार किये उसके साथ प्राचीन ज्ञान१ संग्रहरूप पुस्तकोंको जला डाला व प्राचीन धर्माचारका उच्छेद भी किया। सन् ६८४ में अब्दुल मलेक १० वां खलीफा हुआ था। इसके अब्दुल रहिमान नामक सरदारने स्पेन देशमें ग्रंथोंको जला कर भस्म कर डाला। इधर सन् ७११ में कासिम नामके सरदारने हिन्दुस्थानमें आकर देबल नामक बंदरको स्वाधीन करके वहांके मंदिर नष्टभ्रष्ट कर दिये। वहांके बहुतसे लोगोंका सुन्नत करके उन्हें मुसलमान बना दिये। वहांके बहुतसे ब्राह्मण व क्षत्रिय सुन्नत न

१ [illegible] 'हिन्दुस्थानका [illegible]
[illegible] के अनुसार यह लेख लिखा है।

करानेसे कत्ल किये गये। उन लोगोने सिंध देशके दाहिर राजाको मार कर उसकी २ कन्याओंको खलीफाके पास ले गये, किंतु वे वीर कन्याएँ पिताका बदला लेनेके उद्देश्यसे खलीफा को बोली, कि कासिम ने हमे भ्रष्ट किया है। तब क्रोधमे आकर खलीफाने कासिम सरदारको व बादमे इन कन्याओंको भी मरवा डाला।

६७. पश्चात् भारतमे तो इनके अत्याचारोंकी सीमा न रही। हमारे हजारों ग्रंथ जलाए गए, तीर्थक्षेत्रोंके मंदिर उध्वस्त करके वहा मस्जिदें बनवाई गई। नगरोंके नाम बदलकर दूसरे नाम रखे गए, जैसे कि प्रयागका=अलाहाबाद, नाशिकका गुल्शनाबाद, पाटलीपुत्रका पटना, अवंतिका का अरवराबाद, नागरकोटका फैजाबाद, सम्भलपुरका सरमसपुर, चंपावतीका वन्हानपुर, भागानगरका हैद्राबाद रायगढका इस्लामगढ, इत्यादि नामोका भी निशान मिटानेका प्रयत्न किया गया। जजिया कर सरीखे जुलमी कर लगानेसे बहुतसे लोग विधर्मी हो गए। तो भी ब्राह्मण व क्षत्रिय धर्म नहीं छोडनेके कारण इतने मारे गये थे कि केवल चितोडगढमें मरे हुओंकी जनेऊ ७४॥ मन हुई।

६८ हाय, ऐसोको हम उस वक्त और क्या उपमा दे सकते थे कि वे साक्षात् कल्कि ही थे। कालरूप इनके पजामे हमारी कन्याएँ न आवें, इसके लिये स्मृति पुराणादिकों के स्थलमें कैसे २ श्लोक प्रक्षिप्त किये गए सो तुलना करके देखने के लिए एक संवर्त स्मृतिका उदाहरण बताता हू, वह ऐसा है कि—

रोम काले तु संप्राप्ते सोमो भुक्तेऽथ कन्यकाम् ॥
रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः ॥६५॥

इसी अर्थको दर्शानेवाली अन्य स्मृतियोंमे भी कहा है कि—

सोमस्त सामदाच्छौचं गंधर्व शिक्षिता गिरम् ॥
अग्निश्च कार्यदक्षत्वं तस्माद्रत्नसमा स्त्रिय ॥७॥
(वृ स अ ७३)

अर्थात् "रोमकाल प्राप्त होनेपर पवित्राचार रूपी सोमकी प्राप्ति, रजोदर्शन होनेपर शिक्षित (मधुर भाषण) रूप गंधर्वकी प्राप्ति और कुचोंके दिखाई देनेपर सौंदर्य व कार्य-दक्षतारूप अग्निकी प्राप्ति इस प्रकार तीन अवस्था के प्राप्त हुए बाद चौथी अवस्थामें मनुष्य पतिको प्राप्त करना चाहिये" ऐसा उक्त कथनका तात्पर्यार्थ है।

६९ इससे बताया गया है कि 'कुच पुष्प सम्भव हुए के बाद' यानी अंदाजन १६ वर्षके ऊपर कन्याका विवाह काल है किंतु उसीके नीचे आगे जब कि

ऐसे श्लोक अत्याचारोंसे उकताकर उससे बचने के लिये जो नया विधान किया थे इस प्रकार हैं—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥६६॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां ॥ ६७ ॥ तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥ विवाहो ह्यष्ट वर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ६८॥ अर्थात् आठ वर्षकी गौरी, नौ वर्षकी रोहिणी, व दशकी कन्या कहाती है। ऊपर उसकी रजस्वला संज्ञा हो जाती है। इस प्रकार कन्याकी रजस्वला संज्ञाको देखकर उसके मातापिता व बडा भ्राता यह तीनों नरकमें चले जाते हैं इसवास्ते जहांतक कन्या ऋतुवती न हो उसके पहिले ही आठ वर्षकी अवस्थाम कन्याका विवाह कर देना उत्तम है।

७०. इससे बताया गया है कि कन्याका १० वर्षके अंदर ही विवाह-काल है। उसमें भी ८ वर्षका मुख्य काल है। अब विचार करनेका स्थल है कि यदि संवर्त ऋषिको ८ वर्षका ही विवाह काल कहना था तब ऊपर १६ वर्षकी अवस्थाका काल क्यों कहा। यदि कहें कि "ऊपरका कथन तो केवल कन्याकी अवस्था विशेष बतलाने के वास्ते है, न कि विवाह कालके लिये" किंतु ऐसा नहीं है; क्योंकि कन्याके पाणिग्रहण करते समय विवाह प्रयोगमें जिस मन्त्रको वर कहता है, उसमें साफ-साफ कहा गया है कि—

"सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः। सोमो ददद्गन्धर्वाय गंधर्वोऽददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्। सा नः पूषा शिवतमा मैरय सा न ऊरू उशती विहर" (पारस्कर गृह्य विवाह सूत्र १६)

अर्थात् "तुमने प्रथम सोम (पवित्राचार) को प्राप्त किया, दूसरे गंधर्वरूप (शिक्षित वर्णों) को, तीसरे अग्नि रूप तेजस्विता (कार्य दक्षता) को प्राप्त करके अब चौथेमें मनुष्यज (मानव विज्ञान ही अवस्था प्राप्त होनेपर मनुष्यपति) को प्राप्त किया है। सो तुमको सोमने गधर्वके लिये गंधर्वने अग्निके लिये, और अग्निने संपत्ति व संततिकी देनेवाली तुमको मेरे लिये दी है। क्योंकि तुम इन गुण-शीलकी पोषण करनेवाली हो; इसलिये मुझमें अनुरक्त होकर आनंद भोगो"

७१. इस प्रकारके विवाहके समय वरके मुखसे कहे जानेवाले मन्त्रोंसे सिद्ध होता है कि ... विवाह वेदाव

विधिसे हो सकता है। क्योंकि कुच पुष्पके संभव के यानी सज्ञान हुए बिना कन्याका ८ वर्षमें विवाह करनेपर यह मंत्र मिथ्या प्रयुक्त अतएव व्यर्थ हो जाता है,. और उसका फल मंत्रशास्त्र में नेष्ट कहा है कि—

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तदर्थमाह ॥
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्तिर्यथेंद्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ॥१॥

अर्थात् मिथ्या प्रयुक्त मंत्रसे यजमान [हवन करनेवाले वर] का नुकसान होना बताया है।

७१. इस तरहके तथा और भी अन्यान्य श्रुति, स्मृति महाभारत और पुराण आदिके अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होने वाले कन्याके विवाहके कालको संवर्त ऋषिने रोमकाल व कुच पुष्प संभव कालसे स्पष्ट करके बता दिया है, जो कि करीब १६ वर्षका होता है। इसी कारण अविवाहित कन्याका मरणाशौच १६ वर्षके ऊपर ही पूर्ण लगता है ऐसा धर्मशास्त्र कहता है—

" स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् । " " विवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिक स्मृत इत्युते " (नि. सिंधु ३'२) " अनूढानां तु कन्यानाम्." " षोडशाद्वत्सरात्परम् ।।६॥ "

(शंखस्मृति अ १५)

अर्थात् " स्त्री और शूद्रको विवाहके ऊपरही उसजातिका कहा हुआ पूर्ण आशौच लगता है। इसलिये शंख स्मृतिमें अविवाहित कन्याका मरणाशौच सोलह वर्षके ऊपर ही पूर्ण कहा है, सो विवाह कालको समझकर है।

७२. अब जब सिद्ध हो गया कि कन्याका विवाहकाल १६ वर्षका है और वही संवर्तने कहा है, तब उसके नीचेके कहे हुए श्लोक मिथ्यार्थ दर्शक एवं अप्रसंगिक तथा पूर्वापर संदर्भ रहित होनेसे स्वयं सिद्ध होजाता है कि ये प्रक्षिप्त हैं। इसी प्रकार और भी कई बातें कलिमें वर्ज्य की हैं किंतु यह—

एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः ॥
निवर्तितानि विद्वाद्भिर्व्यवस्था पूर्वकं द्विजैः ॥१॥

(निर्णय सिंधु कलि वर्ज्य प्र में माधवीय पृथ्वीचंद्रोदय)

अर्थात्—" कलियुगके आदिमें लोगोंके संरक्षणके लिये महात्माओं (दूरदर्शी विद्वानों) ने विद्वान् ब्राह्मणोंकी सूचित की हुई व्यवस्था पूर्वक कई बातें मना की हैं "।

७४. किंतु कई बातोंको धर्मशास्त्र संमत कहनेके लिये उपरोक्त कन्याविवाह कालके उदाहरणके मुआफिक स्मृति भारत पुराणादिकोंमें स्थलस्थलपर प्रक्षिप्त

की हैं। भारत पुराणादिकोंमें भी इसके प्रकरणके प्रकरण मिला दिये गए हैं। जैसाकि महाभारतमें लिखी अनुक्रमणिकाके अतिरिक्त कई स्थल हैं। इसीसे एक लाख भारतके श्लोकोंकी जगह व्यासका भारत, सौतिका भारत, व कलियुगके बादका भारत, ऐसे भारतकी श्लोक संख्या बढ़ती गई, जिससे आज करीब सवा लाखसे भी अधिक श्लोक पाए जाते हैं। यद्यपि यह पचीस हजार श्लोक थोड़े थोड़े करते हुए इतने वर्षोंमें प्रक्षिप्त किये गए हैं, तो भी एक-दो हजार श्लोक तो निश्चय ही इस कलिकालके बाद मिलाए गए हैं।

जैसाकि भारतमें कई स्थलपर वायु पुराणका आधार कहा गया है। विष्णु पुराणमेंतो साफ २ कहा है कि हरएक द्वापरमें नए २ काम होकर पुराणोंको सुधारते आए हैं इसीसे २८ व्यासोंकी फेहरिश्त कही है।

७५. पुराण ग्रंथोंकी तो रचना ही ऐसी है, कि उनका जो स्वरूप आज हमें दिखाई देता है। उसमें का कोई भाग तो इतना प्राचीन है कि शास्त्रीय पद्धति से उसका इतिहास महाभारतके भी पहिलेका निश्चित हो सकता है। किंतु यह बहुत थोड़ा है। महाभारतके बाद ही इनकी पूर्णतया रचना हुई है। और थोड़ा भाग तो यहांतक अर्वाचीन है कि उसमें मगध देशके राजावलि तक मिला दी गई है जिसमें सम्राट चंद्रगुप्त व अशोक तथ. शुंग, तक्षक, घोरी घरानोंका और राजतरंगिणी के मुआफिक बहुतसा भाग भविष्यकालीन इतिहास के नाम से कहा गया है।

७६. उक्त ग्रंथोंमें प्रस्तुत कालियुग के लगे बाद भारतमें लिखे कथानक कलियुगको लगा कर कहे गये है, जैसा कि भारतमें च्यवन ऋषिने मदके स्थान बताए हैं कि—

अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ॥
एतैर्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न संशयः ॥३९॥
(अनु शा. प. अ. १५६)

और ये ही चारों स्थान भागवत पुराणमें कलियुगको परीक्षित ने दिए ऐसा कहा है कि—

द्यूतं पानं स्त्रियं सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥३८॥
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पंचमम् ॥३९॥
(प्रथम स्कंध अ. १८)

इसी तरह वनपर्व में कहा हुआ महाप्रलय के युगांत समयका भविष्य कथन पुराण-ग्रंथोंमें कलियुग के अंतमें जैसाका वैसा कहा गया है। इस तरहके बहुतसे उदाहरण हैं, किंतु उनका सारांश यह है, कि तत्कालीन दुःस्थिति को देखकर ही कलियुग के भविष्य कथनमें ये कथानक प्रक्षिप्त किये गए हैं।

७७. उनमें यह भी लिखा है कि जब भगवान् श्रीकृष्णका निर्याण हुआ तभीसे कलियुग शुरु हो गया था, इसी कारण आधुनिक पंडित भी कलियुग के आरंभ कालको महाभारतका काल समझने लग गए हैं; किंतु उपरोक्त स्तंभ २७-२८ में हमने बता दिया है कि शाके ४२७ के पहिले कलियुग के संबंधकी ऐसी बातें नहीं थीं, जोकि पांडव व श्रीकृष्णादि के समयमें कालके आरंभको बतलाती हैं। इसीलिये इस तरहके कथनपर भारतादिका ऐतिहासिक कालका निश्चय करना अयुक्त है।

७८. तो भी हम उक्त कथाओंको उस समयके लिये उपयोगी ही समझते हैं। जैसाकि परीक्षितने उपरोक्त [स्तंभ ८६ के] चारों स्थानों के सिवा अन्य स्थलोंसे कलिका उच्चाटन करके कृतयुगके मुआफ़िक तपः, शौचं, दया, सत्यं नामक चतुष्पाद धर्मकी स्थापना की अर्थात् राजा अपने सामर्थ्यसे कलियुगमें भी कृतयुगकी स्थापना कर सकता है। यह इसमें बता दिया है। तथा शाके १२२१ के बाद के स्मृतिचंद्रिका नामक ग्रंथमें तो ऐसा भी लिख दिया है कि—

चत्वार्यब्द सहस्राणि चत्वार्यब्द शतानि च ॥
कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा पूर्वयुगाश्रिता ॥ १ ॥
[निर्णयसिंधु प्र. ३ पूर्वार्ध]

अर्थात्—" गत कलिके ४४०० वर्ष हुए बाद पूर्वयुग याने पुनः कृतयुगके मुआफ़िक युग लग जायगा। इसका पाठ भेद त्रेतापरिग्रह भी लिखा है अर्थात् त्रेतायुगमें अग्निहोत्र व संन्यास दीक्षादि बातें होने लग जायेंगी " ऐसा कहा है। यह वर्ष भास्कराचार्य के कहे शकपूर्व ३१७९ में १२२१ मिलानेपर ४४०० वर्ष ही होते हैं।

७९. ऐसा ही देवलस्मृतिमें बहुतसा भाग प्रक्षिप्त किया गया है। उसमें तो यहां तक लिख दिया है कि—

यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ॥
संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥२॥
[नि. सिं. ३ पूर्वार्ध.]

अर्थात् जहांतक ब्राह्मणादि चार वर्ण माने जायँगे। और वेदका प्रचार रहेगा, वहांतक कलिमें मनाई हुई बातें जैसे संन्यास अग्निहोत्र हैं, अमलमें लाकर कलियुगमें भी करते रहना चाहिये। इत्यादि प्रमाणोंसे मालूम होता है कि ये बातें समयानुकूल प्रक्षिप्त की गई हैं। अतएव उस समयके लिये उपयुक्त थीं।

.८०. क्योंकि कलियुग के आरंभसे ही परिस्थिति बड़ी गहरी होगई थी। ऊपर [स्तंभ ७६] में कहा गया है कि सन् ७११ में मुसलमानोंका कासिम सरदार सिंधमें आया था, किंतु सन् ७२४ याने संवत् ७८१ शाके ६४६ के आगे तो उन लोगोंने बहुतसे नगरों में अपना राज्य जमाना शुरू किया तब ऐसे २ भयंकर अत्याचार किये गये कि उनको पढ़ कर रोमांच हो जाता है। ऐसे कालमें स्त्रियोंके सतीत्वको नष्ट न होने देनेके उद्देशसे ५ से १० वर्ष के अंदर ही कन्याके विवाह कालकी मर्यादा बताना ही उन्होंने धर्म समझा। इसी प्रकार और भी जो कलिवर्ज्य की बातें हैं, सो उस वक्त अमलमें लानेसे ही हमारा अस्तित्व कायम रहा; नहीं तो सब मुसलमान हो जाते इसमें कुछ संदेह नहीं है।

८१ उन दिनोंमें हमारे भारत वर्षने ही धर्मपर आघात हुए ऐसी बात नहीं है; किन्तु ऊमर नामके खलीफ़ाके [सन् ६३४-६४४] समयमें इन लोगोंने अलेक्झांड्रियाका भव्य पुस्तक संग्रह जला डाला तदनंतर सन् ७२४ के लगभगमें उधर भी बहुत अत्याचार किये गए। इससे बायबलमें भी यह भविष्यका लेख बताया जाने लगा कि 'पूर्वसे लोग आकर ऐसा अत्याचार करेंगे ही उसका हम कुछ प्रतीकार नहीं कर सकते। यह तो भविष्यमें अनर्थ होनेवाला ही है।

८२. हम कहते हैं कि ऐसी भावनाका होना ही कलियुग है। अब ऐतिहासिक धारीक शोधसे हमें पता लगता है कि ऐसी भ्रामक भावनाका आरंभ करीब उपरोक्त सन् ७२४ शाके ६४६ से ही हुआ है। और सोमासिद्धान्तादि आदिकी भी भावना उक्त समयसे ही हुई थी। यह सब हमने बता दिया है। पुराण ग्रंथोंमें भी ऐसी ही कलिकी भावना बतलाई है कि—

> इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ॥५८॥
> अयंतु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥७७॥

[पद्मपुराणोक्त भागवत माहात्म्य अ. १]

अर्थात्—"इसमें सज्जन पुरुषतो दुःखी होते हैं और दुर्जन आनंद मनाते हैं क्योंकि यह तो कलियुगका धर्म ही है। इसलिये किसीको दोष देना उचित नहीं" इस प्रकार उन्होंने यहांतक मान लिया था कि—

"यह संकटोंकी परंपरा तो अब आगे इस कलियुगमें लाखों वर्ष तक होनेवाली है। तब हम इसका प्रतिकार क्या कर सकते हैं?"

८३. बस ऐसी कलियुगी भावनाके प्राबल्यसे ही यहांके वीरोंका साथ जनताने नहीं दिया इसीकारण भारत गारत हो गया, किंतु इससे भी हम

कालका ही प्रभाव कहते हैं नहीं तो इसी कलिकालके आरंभ कालके लगभग क्या सुधरी हुई रोमन बादशाही को इन जंगली लोगोंने मिट्टीमें मिला दिया" [सर देसाई इतिहास पृ. १३] यह बात कदापि संभव नहीं थी, किंतु संसारके इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि अशिक्षित लोगोंका उत्थान और शिक्षित लोगोंका अधःपात इस कालमें बहुत जगह हुआ है" ऐसा पाया जाता है।

८४. इतना ही नहीं तो हमारी परिशोधित युग-पद्धतिके अनुसार शाके १७४६ से सौ वर्षकी कलियुगकी अंतिम संधिका काल शुरू हुआ तबसे उपरोक्त कलिकी भावना कम होते होते साथ ही कृतयुगकी भावना अंकुरित होने लगी कि "हमारा देश, हमारा धर्म, हमारे शास्त्र इत्यादिका अभ्युत्थान हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा।" यह काल कृतके संधिका परिवर्तन नहीं तो क्या है। यदि आप संसारके इतिहासकी ओर दृष्टिपात करेंगे तो आपको विश्वास हो जायगा कि असलियतमें बात ऐसी ही है जो कि सारे संसारकी जातियाँ अपने २ उन्नतिके योगपथकी तरफ अग्रसर होती जा रही हैं। यह सब हमारे ऋषियोंके परिशोधित युगचक्रके कृत संधिके कालका प्रभाव है। इस तरहके युगोंके तत्वको मानना या नहीं मानना और बात है किंतु उक्त मानवी भावनाका होना प्रायः युग-धर्मानुसार ही होता है।

कृतयुग की संधिका आरंभ।

८५. अब लिजीये विक्रम संवत् १९८२ शाके १८४६ सन १९२४ से कृतयुग की पूर्वसंधि [वर्ष ४००] का आरंभ हो गया है। किंतु उसे हम कृतयुग ही इसलिये कहते है कि संधि व संध्यंश सहित उसका ४८०० वर्ष का परिमाण कहा जाता है। इस काल के पहिलेके १०।१२ वर्ष का इतिहास देखिये और इस इतिहास की युगपद्धति के युगांत में कहे हुए भारतीय भविष्य कथन से तुलना कीजिये तब ज्ञात हो जायगा कि योरप के विश्वव्यापी युद्ध और भारत के प्लेग व इन्फ्लुएंझा आदिमें जो संसार के जानमाल की हानि हुई सो युगांतके भविष्य के मुआफ़िक ही अनर्थकारी हुई है।

८६. उक्त कृतयुग को हुए अभी सिर्फ ५ ही वर्ष हुए हैं। किंतु सार्वि उन्नति के लिये मान व समाज अपने प्राणोंका बलिदान देने को उद्यत होने की उदात्त भावना ही कृतयुग को सिद्ध करने में पर्याप्त है। अर्थात कर्तव्य कर्मों को दृढताके साथ करते हुए कार्य को पार पाड़ देनेकी भावना ही कृतयुग के काल का प्रभाव है। वेदमें भी समाज के स्थिति के अनुसार युगों को कहे हैं कि-

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ॥
उत्तिष्ठन्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥[ऐतरेय ब्रा.]

समाज के सोने पर कलि, जाग्रत होने पर द्वापर, अपने पैरों खड़े होने पर त्रेता व कर्तव्यको करने लग जाने पर कृतयुग हुआ कहाता है" इससे सिद्ध होता है कि उक्त युगोंकी स्थिति का वर्णन श्रुति सम्मत अतएव यथार्थ होनेसे वह आज हमें ग्राह्य है।

८७. यदि कहें, कि जब अब कृतयुग का आरंभ हुआ आप कहते हैं तो कृतयुगारंभ में होने वाली ग्रहस्थिति भी मिलनी चाहिये अन्यथा उक्त भावना का होना कल्पना मात्र हो सकता है। सिद्धान्त रूप नहीं। इससे यह प्रश्न खड़ा होता है कि जो हरएक कृतयुग के आरंभ के वक्त की ग्रहस्थिति भारत पुराणादि आर्ष ग्रंथोंमें कई जगह कही गई है; वैसी ही क्या ग्रहस्थिति उस समय में आई थी?

इस प्रश्नके उत्तरमें कहा जाता है कि—

ततस्तुमुलसंघाते वर्तमाने युगक्षये ॥८८॥
द्विजातिपूर्वको लोकः क्रमेण प्रभविष्यति ॥
दैवः कालान्तरेऽन्यस्मिन्पुनर्लोकविवृद्धये ॥८९॥
भविष्यतिपुनर्दैवमनुकूलं यदृच्छया ॥
यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पती ॥
एकराशौ समेष्यन्ति प्रपत्स्यति तदा कृतम् ॥९०॥
कालवर्षी च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानि च ॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम् ॥९२॥
(भारत वनपर्व अ. १९०)

८८. अर्थात् "पहिले युगके पूर्ण होने के समय बड़ी २ कठिन परिस्थिति-योंका सामना करते हुए क्रमसे ब्राह्मणादि वर्णोंका अभ्युत्थान होगा, उसके कुछ काल के बाद मानव समाज के कल्याण के लिए ईश्वरकी इच्छा से दैव अनुकूल होने लगेगा कि जब चंद्र, सूर्य, पौष और बृहस्पति एक राशिमें समान अंश हो जायेंगे, तब पुनः कृतयुग का आरंभ होगा। तदनंतर शुभ नक्षत्रों में यथाकाल पर्जन्यकी वर्षा होगी। क्षेम, कल्याण, सुभिक्ष (सस्ताई) और आरोग्य प्राप्त होकर आनंदपूर्वक सब लोग रहेंगे।"

८९. यही श्लोक भारतके और स्थलोंमें, तथा भागवत व विष्णुपुराण आदि ग्रंथोंमें कहा गया है। इसलिए इस कथनपर अधिकतर दृढ़ विचार

होता है। यद्यपि तिष्य बृहस्पति इसका अर्थ टीका कारोंने पुष्य नक्षत्र और बृहस्पति किया है तो भी वह ठीक नहीं है। क्योंकि:- तिष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः। माघ शुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहनि ॥९६॥ [मनुस्मृति ४. ९६] यहां सर्व नारायण टीकाकार लिखते हैं कि तिष्ये पौष मासे पुष्यर्क्षे कुल्लूक के पाठमें पुष्ये कहा गया है पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्म दिनेऽथवा [खादिर गृ. सू.] तिष्य और पुष्य इनका अर्थ पौष महीना होता है पुष्य नक्षत्र नहीं। क्यों कि श्रावणी के ४॥ महीनेके पश्चात् पौष की ३० आती है; उसीका उल्लेख तिष्य शब्दसे किया गया है।

९०. पूर्व प्रकरण में हमने कह दिया है कि मानवी युग १२ वर्ष का और दिव्य युग १२००० वर्षोंका ही होता है। तब बारह वर्ष के युग के संबंधमें कहा गया है कि—

> तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः ॥
> बृहस्पतेऽस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादश वार्षिकम् ॥१॥
> [बृ. सं. बृ. चार ऋषिपुत्रः]

इसमें तिष्यसे यानी पौषमें बृहस्पति के उदयसे युगका आरंभ होकर सौम्यान्त यानी मार्गशीर्ष पर्यन्त १२ वर्षका युग कहा है। इसीको बृहस्पति के उदयसे, जिसे पौष नामक संवत्सर भी कहते हैं। इन प्रमाणोंसे तो स्पष्ट ही हो गया कि यहाँ बारह वर्षके युगारंभ में जो तिष्य शब्द है सो पौष महीनेके अर्थमें कहा गया है। पौष मासमें सूर्य चन्द्र व बृहस्पति एक राशिके बारह वर्षमें आते हैं। किंतु एक अंशमें तो बारह हजार वर्षमें ही आते हैं। इसलिए पौषकेही अर्थमें तिष्य कहा गया है। सो यही योग पौषमें आया है।

९१. अब जब इस तरहके अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका कि उक्त वर्षसे अब कृत युगका आरंभ होगया। और उक्त [स्तंभ ४६ के] भारतीय युग पद्धतिसे यह भी ज्ञात होगया कि पहिले चार सौ वर्षकी कृतयुग की पूर्व संधिका काल है। तब निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि शाके २२४६ में पूरा पूरा कृतयुग शुरू हो जायेगा। संसारके ज्ञानी मनुष्य मात्र इन वर्षों में अपने दीर्घ प्रयत्नसे बहुत ही उन्नति हासिल कर लेवेंगे क्योंकि जब भूतकालीन बातें युग-पद्धतिसे पूर्णतया मिलती है तब निश्चय ही भविष्य मय कृत युगीन बातें बराबर मिलनी चाहिये।

९२. अतः अब हमें यह मालूम हो गया कि आजकल पंचांगोमें जो युगों के वर्ष लिखे आते हैं, सो धार्मिक युगके दर्शक नहीं है; किन्तु वे पंचांगके गणित

के सुभीते के लिये बताए हैं। और यह भी ज्ञात होगया कि धार्मिक युगों के वर्ष जो कहे हैं, वह केवल मानवों वारह हज़ार वर्ष ही हैं। यह ऋषियोंका परिशोधित युगचक्र इतना यथार्थ और उपयोगी है कि मानव जातिके प्राचीनतम इतिहासका उलझनमें पड़ा हुआ कालक्रम इसीके द्वारा ठीक ठीक बराबर सुलझ सकता है। इतना ही नहीं सृष्टि की उत्पत्तिसे लगाकर आजतक उत्क्रांति तत्वके अनुसार प्रति बारह हज़ार वर्ष के सोपान (पायरी) से ज्ञानोन्नति के उच्चतम स्थलपर मानव समाज कैसा प्राप्त हुआ, यह इसीके द्वारा स्पष्ट हो सकता है।

९३. यद्यपि इस चक्रका शोध बहुत प्राचीन कालसे लग गया था, किंतु इसका उपयोग इस कृत युगारंभसे ही होने लगेगा। क्योंकि इस युग-पद्धतिसे *पंचांग-साधन के सुलभ ग्रंथ बनाये हैं; जिनसे उक्त कृत युगके गताब्दोंसे* शास्त्र शुद्ध दृग्गणित कर सकते हैं। और यह पूर्ण सिद्ध होनेके कारण यह शोध संसारमें विद्वन्मान्य होजाना कोई कठिन बात नहीं है।

९४. किंतु यहां अब हमारा यह कर्तव्य हो गया है कि शास्त्रीय (वैज्ञानिक) रीतिसे इसके तत्वोंकी उपयोगिता को सिद्ध करके बता दें ताकि इतिहास सरीखे बड़े उपयोगी विषयमें काल गणना के लिये इस बारह हज़ार वर्ष के मानदंड [स्केल] का उपयोग करने लग जाँय।

९५. *यद्यपि हमें कई पदार्थ मोटी दृष्टिसे देखने में एकही स्वरूपमय दिखते* हैं; तथापि वैज्ञानिक सूक्ष्म रीतिसे उसकी छानबीन करने पर उन पदार्थों में कई तरहके भेद व्यक्त हुए पाए जाते हैं। उदाहरण के लिये 'प्रकाश' यह एक पारदर्शक-उज्वल-दैदीप्यमान दिखाई देता है। किंतु यह पदार्थ तिपहलू बिल्लोरी मोटे कांच के [लोलक के] सहारे से देखने पर उस प्रकाश में इंद्र धनुष के *मुताबिक मिश्र रंगके ३ और शुद्ध रंगके ४ ये ७ [कलर] सात पट्टे* दिखाई देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सप्तरंग के मिश्रित किरणों को हम प्रकाश कहते हैं।

९६. क्योंकि इसमें शुद्धवर्ण [रंग] चार हैं। किंतु वर्णसे दूसरे वर्णकी संधिमें मिश्रवर्ण का पट्टा नजर आनेसे ऊपर हमने समिश्र रंगके तीन पट्टों सहित ७ रंग कहे हैं। वस्तुतः उसमें भी चढ़ते उतरते रंगके उपरसे कई और भेद निकल सकते हैं। किंतु उसके मूल [मुख्य] चार रंग ये हैं १-सफ़ेद, २-लाल, ३-पीला, ४-काला।

९७. ठीक इसी प्रकार चारों युगोंके वर्ण बताये हैं—

श्वेतो रक्तस्तथा पीतः कलौतु कृष्णतां गतः

[भारत]

जैसे एक रंगके कांचमेंसे वही रंग पार आता है जोकि उसकी जातिका [रंग] है। बाकीके विजातीय रंग उस कांच पर रुक जाते है इसी तरह कालका प्रभाव एक साथ होते हुए भी कृतयुगमें सत्व गुण का विकास, त्रेता व द्वापरमें रजोगुण का विकास और कलियुगमें तमोगुण का विकास होता है। ऐसे इनका पूर्णचक्र १२ हजार वर्षमें पूरा होता है।

९८. जैसे एक अहोरात्र में जागृत, स्वप्न, तन्द्रा-आलस्य व सुषुप्ति ये चार अवस्थाएँ मनुष्यकी होती हैं। उनमें सत्व, रज, तम का जैसे विकास होता है ठीक उसी तरह युगचक्र है। जैसे निद्रावस्थामें अज्ञानता का प्राबल्य रहता है और यह आधिक दृष्टिसे निरर्थक मालूम होता है। किंतु यह निरर्थक नहीं है। क्योंकि जागृति में कर्म करते करते जो थकावट आ घेरती है; सो उसका प्रतीकार निद्रासे ही होता है। अतः इस निद्रामें यह अप्रतिम गुण है कि इसके द्वारा श्रमका परिहार होकर पुनः जागने पर प्रवृत्त कराती है।

९९. ऐसे स्थल पर 'हमें क्या करना है' यह कलि निद्रा है। हमारा जन्म सिद्ध हक हम प्राप्त नहीं करेंगे तो कौन करेगा! और पराधीनता के पंक से निकल कर स्वाधीनता रूप सुमार्ग पर आना ही कृतयुग का खासा प्रमाण है। अर्थात् हर बातमें स्वाधीनताकी विचारक्रांति इसी समय में हुआ करती है।

१००. आजकाल की ज्ञान क्रांतिसे चकाचौंध हुए हमारे विद्वान् आजकाल इस बातको झटसे कह बैठते है कि नई खोजें अभी हुई हैं [किंतु यहां इस बारह हजारके मानदंडसे ही इसकी उत्क्रांति और अपक्रांति होती आई है, यही सच है] और वैदिक सरीखे प्राचीनतम काल में एवं भारत सरीखे पौराणिक काल में इतना शोध लगा ही नहीं था अतः उन पुराने ढर्रोंकी बातों पर कैसे विश्वास रखा जाय ?

१०१. किन्तु यह शंका बिलकुल गलत है। यह प्रश्न ही खड़ा न हो सके इसलिये पूर्व प्रकरणमें बता दिया है कि वेदकालमें संपूर्ण वैज्ञानिक बातों का शोध लगता गया था; इतना ही नहीं अध्यात्म शास्त्रके बलपर इतनी खोज उस कालमें लगी थी कि उसके आधार के बिना उन बातोंको आज भी हम अचिन्त्यही कह सकते हैं। और आगे हम वैदिक प्रमाणोंसे बातें बतलानेवाले हैं कि आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि अभी वहाँतक पहुँची ही नहीं है।

१०२. इसके संबंधमें भारतमें कहा है कि—

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पांचभौतिका-
स्तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ १० ॥

नाप्रविष्टिवतर्केण गंभीरार्थस्य निश्चयः ॥ ११ ॥
अचिंत्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ॥
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिंत्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥
[भीष्म पर्व अ. ५]

अर्थात् " जहा तहा भौतिक पदार्थ दिखते हैं, उनको शोधकर देखनेसे विद्वान लोग तर्कशास्त्र द्वारा कई प्रमाणोंको निश्चित करते हैं क्योंकि शास्त्रीय शोधके विना गभीर अर्थका निश्चय नहीं हो सक्ता ॥ ११ ॥ और यह तर्क सृष्टि की उत्पत्ति तक चल सक्ता है, किंतु सृष्ट पदार्थ के पहिले की सब बातें अचिन्त्य हैं। उन अचिंत्य भावोंका निश्चय तर्क (शास्त्र) से नहीं हो सकता। " तथापि इस विषयके प्रमाण अध्यात्म शास्त्रज्ञोंके वेद वाक्य ही हैं। किंतु आधुनिक भूगर्भ शास्त्रादिसे जो सिद्धांत आज हम निश्चित करते हैं वैदिक कालमें भी ऐसा ही किया जाता था।

वेदोंमें विश्वके उत्पत्ति का प्रकार।

१०३. जैसा कि सृष्टिके उत्पत्तिके सबधमें ऋग्वेद [८. ३. २] में लिखा है:—

" यद्देवाऽअदः सलिले सुसंरब्धाऽअतिष्ठत ॥ अत्रावो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥ यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ॥ अत्रा समुद्रमागूढ मासूर्यमजभर्तन ॥ परामार्तंडमास्यत् सप्तभिः पुत्रैरदिति रुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ॥ प्रजायै मृत्यवत्वत् पुनर्मार्तंडमाभरत्। "

भावार्थः—" विश्वके उत्पत्ति के समय सारे जगत् परिमाणु रूप था यानी आकाशमें फैलाहुआ था। बादमें सूर्यका निर्माण हुआ। जैसे परिमाणु रूप भापका द्रव रूप पानी हो जाता है उसी प्रकार सूर्यसे तो महाकी कक्षाओं तक फैले हुए परिमाणु इकट्ठे होते होते घनरूपवाले ग्रह बन गए तब यह पृथ्वी भी ठोस होगई। सात ग्रह और पृथ्वी यह आठ अदिति [पुनर्वसु नक्षत्रकी दीप्ति] के तत्वसे उत्पन्न हुए हैं। किंतु यह पहिले दीप्तिमान् [प्रज्वलित] थे। उनमेंसे सात तो ठंडे हो गए अब आठवा पृथ्वी गोलक ठंडा हुआ है। इसे मार्तंड कहते हैं ये सातो जिस कालमें ठंडे हुए उसे पूर्वका युग समझें किंतु अब ठंडे हुए पृथ्वी गोलकपर जीवसृष्टिका होना शुरू है और इसीने ही सब जीवोंको धारण कर रखा है।

१०४. भारत स्मृति व पुराणादिकों में भी इस कालको सात मन्वंतरोंके रूपमें कहा है इसमें स्पष्ट यह है कि अब वर्तमान वैवस्वत मनु सातवां है। किन्तु इसके संबंधका भी वर्णन उक्त श्रुतिमेंही आगे कह दिया है कि—

"देवानां तु वयं जानां प्रवोचाम विपन्यया॥ उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥ ब्रह्मणस्पतिरेतासं कर्मार इवाधमत् ॥"॥ अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाददितिः परि ॥ तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः"

अर्थात् "यज्ञोंमें आहुतिकी प्रणाली को देखनेसे तथा प्राचीन देवताओंकी बातें सुननेसे हम निश्चय पूर्वक कहते हैं कि इस उत्तर युग [वैवस्वत मनु] का आरंभ ब्रह्मणस्पति [रोहिणी नक्षत्र] से हुआ कि जब वहांसे यज्ञ होते थे। बाद में अदितिके पहिले दक्ष हुआ किंतु आगे दक्षके पहिले अदिति हो गई। अर्थात् आर्द्रासे पुनर्वसु होकर आगे पुनर्वसुसे आर्द्रा होगई। रोहिणी [ब्रह्मा] से अदिति पर्यन्त हरएकमें ज्ञानका संपादन कल्याणकारी देवता लोग करते हुए। इसका तात्पर्य यह है कि इस सातवें वैवस्वत मनुके आरंभमें रोहिणीपर यज्ञारंभ होते हुए-आगे पुनर्वसु तक बढ़ कर वहांसे पीछे लौट कर यज्ञ होने लगे उस कालके यज्ञोंमें ऐसे प्राचीन यज्ञारंभके मंत्र बोले जाते हैं उस परसे यह स्थिति बताई गई है।

१०५. शतपथ ब्राह्मण में तो सृष्टिके उत्पत्ति के संबंधका वर्णन ऐसा किया है कि आधुनिक वैज्ञानिक लोग भी ऐसा ही कहते हैं। तब आश्चर्य है;कि इतने प्राचीन काल में शास्त्रीय कथन के तुल्य ऐसा स्पष्ट वर्णन होना ? वह यह है इसमें आकर्षण के तत्व बताए हैं प्रजापतिर्वा इदमग्रऽआसीत् । तपो तप्यत तस्मादापो जायंते, अपांतप्तानां फेनो जायते" "मृदेव भवति सातप्यात सा सिकता यदेनां विकृषंति । तस्माद्यपि सुमात्स्नंऽभिकृपन्ति सैकत- मिवेवस्येतावन्नु । सिकताभ्यः शर्करा । शर्करायाः अश्मानं । अश्मनोऽय- स्तस्मादश्मनो यो धमन्त्ययसो हिरण्यं तस्मादयो बहुध्मातऽहिरण्य- संकाशमिवैव भवति । [श. ब्रा. ६. ३. १. ५]

अर्थात्-" सबके पहिले प्रजापति थे। उन्होंने तेजको बढ़ाया उससे जल पैदा हुआ, किंतु वह भी तपने लगा तो उससे फेन हुआ आगे उसकी भाप बन कर ठंडी होने पर उससे परिमाणु रूप मृत्तिका बनी। इन परिमाणुओंके आपसमें खींचनेकी क्रिया से रेती हुई व आगे उसके भी परस्पर के आकर्षण से कंकर बने उससे आगे नरम पत्थर, फिर कठिन पत्थर बने उससे भी अधिक आकर्षणसे लोह बना। और जैसे बहुत तपानेसे लोहके गोलेके ऊपर अग्निरूप

पतला पदार्थ दिखता है उसी प्रकार बहुत आकर्षण व तपाव होनेसे लोहे के बाद सुवर्ण बनता है।"

१०६. यह ही इसके आगेकी स्थिति बताई है कि "स तपो तप्यत स श्रा (शा) न्तस्ते पानः फेनमसृजत,××श्रांतस्तेपानो मृद् ऽशुष्का पयूप सिकल ऽशर्करायश्मानि मयो हिरण्यमोषधिर्वनस्पत्य सृजत तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत्। तेवा आर्द्राः स्युः एषद्वेषां जीव मेतन स तेजसऽएतेन वीर्यवन्तस्तसादार्द्रा स्युः [श. ब्रा. १. ३. १. १ तथा १. ३. ४. १]

"वह उष्णता बहुत तपती हुई जब शान्त [ठंडी] होने लगी अन्तमे ठंडी होने पर इस पृथ्वी पर पानीका झाग उत्पन्न हुआ वह भी तपता हुआ आर्द्रमृत्तिका, शुष्कमृत्तिका, अग्निरूप से के बने हुए स्तर, रेती, छोटे कंकर, पत्थर, लोह और सुवर्ण इस प्रकार [धातुरूप निरींद्रिय पदार्थों की सृष्टि हुई आगे ओषधि [जो चांवल आदि धान्य] और वनस्पति [फल फूल शाक आदि] उत्पन्न हुई वैसे इन सृष्ट पदार्थोंसे यह पृथ्वी हरी-भरी [आच्छादित] हो गई। यह सेंद्रिय पदार्थ सजीव होनेसे इनकी वृद्धि सतत होती रहती है। जहां तक वृक्ष हरा-भरा रहता है वह सजीव स्थितिसे ही आर्द्र रहता है। अर्थात् जिस वृक्षका जीव निकल जाता है, तब वह सूखने लगता है।" वृक्षोंको पंचज्ञानेंद्रिय है। प्रत्येक इन्द्रिय की वैज्ञानिक रीतिसे वर्णन भारत शांतिपर्व अ. १८३-१८४ में लिखा है।

१०७. आगे यों भी लिखा है कि—

अथो आहु प्रजापतिरस्तेमा ऽल्लोकान्त्सृष्ट्वा पृथिव्यां प्रत्यतिष्ठत् तस्माऽइमा ओषधयोऽन्नमपच्यन्त तदाश्नात्सगर्भ्यं भवत्सऊर्ध्वेभ्य एव प्राणेभ्यो देवा न सृजत। ये वाञ्च प्राणास्तेभ्यो मर्त्या प्रजा इत्यतोयत मथासृजत तथा सृजत प्रजापतिस्त्वेवेदंऽसर्व्वं मसृजत यदिदं किं च

[श. ब्रा. ६. १. २. ११]

अर्थात्—"अब कहते हैं कि प्रजापतिने ही (उपरोक्त) तीन लोक याने संसारकी रचना करके पृथ्वीमें प्रतिष्ठित होकर पकी हुई अन्नरूप औषधियोंका भोजन करके अपने गर्भसे ऊपरके प्राणोंसे देवोंकी व नीचेके प्राणोंसे मनुष्योंकी सृष्टि पैदा की उसे प्रजा कहते हैं। आगे उनकी आपसमें सृष्टि पैदा होने लगी। इससे कहा जाता है कि पृथ्वीपर जो कुछ स्थावर जंगम दिखता है सो सब समष्टि रूप प्रजापति की प्रेरणासे हुआ है।"

१०८. इससे सिद्ध होता है कि वैदिक कालमें ही उक्त वैज्ञानिक बातोंका शोध लग गया था। ये सब बातें अभ्या मशास्त्र के बलपर कही गई हैं किंतु

इतनी ठीक २ है कि भूस्तर शास्त्र, उत्क्रांति तत्व, जीवनेंद्रिय शास्त्र, मानुष्यक-शास्त्र और सृष्ट पदार्थ विज्ञान शास्त्र आदिसे भी ऐसा ही बतलाया जाता है। इतना ही नहीं, आकर्षण शास्त्र व ज्योतिः शास्त्र इनके भी मूलतत्वोंका ज्ञान अध्यात्म बलसे ऋषियोंने हांसिल कर लिया था। और ऊपर कह चुके हैं कि उक्त युग चक्रका भी पता वेद कालमें ही लग गया था।

मन्वंतरावतार और वर्ष संख्या ।

मनु और संधि काल.	ईश्वरीय प्रादुर्भाव (अवतार)	सृष्टि आरंभसे वर्ष संख्या
पूर्व संधि	वायुचर प्राणिमें	४८००
१ स्वायंभुव १	हंस प्रादुर्भाव [1]	८५६८००
संधि २	जलचर प्राणिमें	८६१६००
२ स्वारोचिप २	मत्स्य प्रादुर्भाव	१७१३७००
संधि ३	स्थलचर प्राणिमें	१७१८४००
३ उत्तम	कच्छप प्रादुर्भाव	२५७०४००
संधि ४	स्थलचर प्राणियोंमें	२५७५२००
४ तामस	वराह प्रादुर्भाव	३४२७२००
संधि ५	वनचर प्राणियोंमें	३४३२०००
५ रैवत	नारसिंह प्रादुर्भाव	४२८४०००
संधि ६	मनुष्य प्राणियोंमें	४२८८८००
६ चाक्षुप	वामन प्रादुर्भाव	५१४०८००
संधि ७	उत्तम पुरुषोंमें	५१४५६००
७ वैवस्वत के युग २८ में	परशुराम राम कृष्णादि पुरुषोत्तम प्रादुर्भाव	५४८१६००

[1] हंसः मत्स्यश्च कूर्मश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तमः ॥ ३॥
वाराहो नारसिंहश्च वामनो राम एव च ॥
रामो दाशरथि श्चैव सात्वतः कल्कि रेव च ॥ ४॥
यदा वेद श्रुति नंष्टा मया प्रत्याह्लता पुनः ॥
सवेदाः स श्रुति काश्च कृता. पूर्वं कृते युगे ॥ ५॥ (भारत अनुशासन)

१०९. इस कोष्टक के देखने से आपको ज्ञात हो जायगा कि इस पृथ्वीपर जीव सृष्टिके आरंभ से मानव समाज को उत्पन्न होनेतक ६ मनु और ७ संधि बीती हैं उसको बारासौ वर्षका युग ऐसे ७१ युगका एक मनु और कृतयुग के इतनी संधि मिलाकर ठीक ५१४५६०० वर्ष होते है।

११०. अब जब इस तरह वेदमें विश्वकी और सृष्टिकी उत्पत्ति पाए जाती है और स्मृति पुराण ग्रंथोंसे इसके भी आगेकी अर्थात् २८ वें वर्तमान युगतक का वर्णन मिलता है; तब हमें यह देखना है कि उक्त २८ वें युगके समाप्तिके वर्षसे इनका कालानुक्रम मिलता है या नहीं? सो वैवस्वत मनुके आरंभसे ही मनुष्य सृष्टिका आरंभ कहा है रोहिणी नक्षत्रपर संवत्सर यज्ञसे इसकी सब बातें ठीक ठीक मिलती हैं। और उपरोक्त भारत के कालमें कृतयुग की स्थिति कही है सो भी इससे कालानुक्रम ठीक २ मिलता है इतनाही नहीं तो मानव जाति के उत्पन्न हुए बादका इतिहास उक्त युगानुसार मिलता है।

१११. वैदिक कालमें जब ठीक ठीक पूर्व दिशामें सूर्यका उदय होता था उस समय सालभर चलनेवाले यज्ञोंका आरंभ किया जाता था। इस संबंध का स्पष्टी करण पूर्व प्रकरणमें, तथा हमारे किए वेदकाल निर्णय ग्रंथमें किया गया है। और यह शास्त्र सिद्ध बात है कि ऐसा सूर्योदय वसंत संपात के समय ही होता है। इससे ऊपर जो यज्ञारंभ के नाम आए हैं वह वसंत संपात के दर्शक हैं। अतएव हमने प्रस्तुत मनुके आरंभ के युगसे २८ युगों के शास्त्रशुद्ध सूक्ष्म गणित द्वारा हरएक युगारंभ के वसन्त संपात की स्थितिके नक्षत्र मास आदि के कोष्टक में लिख दिये हैं। इससे और भी कई बातों की तुलना करके देख सके और उसकी वर्ष संख्या भी मालूम हो जाय ऐसी योजना इन कोष्टकों में की गई है।

११२. हमारे प्रभाकर सिद्धान्त नामक ज्योतिष के ग्रंथमें हमनें ग्रहोंके उच्च पातका शून्य स्थानसे आरंभ उक्त कल्पसे बताया है। किंतु शून्य स्थानसे मध्यम ग्रहोंका आरंभ उक्त कल्पादि से बताया है। अर्थात् शाके १८४६ तक युग समाप्त होनेतक ५४८१६०० वर्षोंकी मध्यम गतिसे ग्रह साधन बताया है।

११३. किंतु प्राचीन ग्रंथोंमें युगों के उल्लेखसे काल मापन करने वालों उक्त युग वर्षके निर्देश मात्रही से समाधान नहीं होता। अतः हमें अब चा युगों के पूर्वोत्तर संधि काल बताना अवश्य हो गया है। क्योंकि उस से उ समय की अयन की स्थिति और उससे होनेवाले स्पष्ट चमत्कारों में परिवर्त वगैरे झटसे मालूम हो जाता है। वास्ते उसके टेबल उतार कर देते हैं।

कृतयुग की आरंभसंधि वर्ष ४०० यानी महायुगारंभ ।

युग संख्या.	शकारंभ के पूर्व.	अयनांश अंश.	एक वर्षकी अयनगति विकला	सांपातिक वर्षमान ३६५ दिन घ.	प.	वि.	सांपातिक नक्षत्र व चरण	सांपातिक माह	वेद ज्ञानका जिन को स्फुरण हुआ सो वेदव्यास ‡
१	-३२४१५४	४६·६	+२५ ६१	१५	४८	५६	रोहिणी २	वैशाख	स्वयंभूः
२	३२२१५४	१२७·५	२२·९०		४६	११	मघा ३	श्रावण	दक्षप्रजापतिः
३	३१०१५४	१९९·३	२०·१०		४३	२६	स्वाती ४	आश्विन	उशना
४	२९८१५४	२६२·१	१७ ४८		४०	४२	पू षाढा ३	मार्गशीर्ष	बृहस्पतिः
५	२८६१५४	३१५·९	१४·७७		३७	५७	शतता ३	माघ	सविता
६	२७१५५४	०·७	१२·७७		३५	१२	अश्विनी १	चैत्र शु.१	मृत्युः
७	२६२१५४	१६·४	९·३६		३२	२७	कृत्तिका ३	वैशाख	इंद्र.
८	२५०१५४	६३·१	६ ६५		२९	४२	मृगशी. ३	ज्येष्ठ	वसिष्ठ
९	२३८१५४	८०·७	३·९४		२६	५७	पुनर्वसु १	,,	सारस्वत
१०	२२३१५४	८९·३	+ १·२३	१५	२४	१२	,, ३	,,	त्रिधामा
११	२१४१५४	८८·९	- १·४८		२१	२७	,, ३	,,	त्रिवृषा
१२	२०२१५४	७५·५	४·११		१८	४२	आर्द्रा ४	,,	भरद्वाज
१३	१९०१५४	६१·०	६·९०		१५	५७	मृगशी. ३	,,	अन्तरिक्ष
१४	१७८१५४	३३ ५	९·६१		१३	१२	कृत्तिका ३	वैशाख	वप्री
१५	१६६१५४	३५७·०	१२·३२		१०	२७	रेवती ४	फाल्गुन	त्रय्यारुणः
१६	१५४१५४	३११·४	१५·०३		७	४२	शतता १	माघ	धनंजयः
१७	१४२१५४	२५६·८	१७ ७८		४	५७	पू. षाढा २	मार्गशीर्ष	कृतंजय
१८	१३०१५४	१९३·२	२०·४५	१५	२	१२	स्वाती ३	आश्विन	ऋणजय
१९	११८१५४	१२०·५	२२ १६	१४	५९	२८	मघा १	श्रावण	भरद्वाज
२०	१०६१५४	३८·८	२५ ८७		५६	४३	कृत्तिका ४	वैशाख	गौतम
२१	९४१५४	३०८ १	२८ ५८		५३	५८	शतता १	माघ	हर्यात्मा
२२	८२१५४	२०८·३	३१·२८		५१	१३	विशाखा ३	आश्विन	वेन [राजस्रवा]
२३	७०१५४	९९·५	३३ ९९		४८	२८	पुष्य ३	आषाढ	तृणबिन्दु०
२४	५८१५४	३४१·७	३६ ७०		४५	४३	उ. भाद्रपदा ३	फाल्गुन	ऋक्ष [वाल्मीकि
२५	४६१५४	२१४ ९	३९·४१		४२	५८	अनुरा. २	कार्तिक	शक्तिपराशर
२६	३४१५४	७९·०	४२·१२		४०	१३	आर्द्रा ४	ज्येष्ठ	पाराशर(जातुकर्ण
२७	२२१५४	२९४·१	४४·८३		३७	२८	धनिष्ठा १	पौष	कृष्ण द्वैपायन
२८	-१०१५४	१४०·२	४७ ५४		३४	४३	पू. फाल्गु ३	श्रावण	अश्वत्थामा
२९	श.+१८४६	३३७ २	-५०·२५	१४	३१	५८	उ. भाद्र. २	**फाल्गुन**	× × ×

‡ विष्णुपुराण अंश ३, अध्याय ३ में गत २८ युगके २८ वेदव्यास के नाम लिखे हैं कि जिनको वेदके अर्थका स्फुरण हुआ ।

कृतयुगारम्भ (वर्ष ५०००) मुख्य युग।

युग संख्या	युगारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांश अंतरांश	एक वर्ष में अयनगति विकला	सांपातिक वर्षमान ३६५ दिन			सांपातिक नक्षत्र व चरण		सांपातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	−३३३७५४	४९ ५	+ ८० ।	+२७ ५२	१५	३८	०१	रोहिणी	४	वैशाख
२	३२१७५४	१३० ०	७१ ५	२२ ८१		४६	६	पू फा	१	श्रावण
३	३०९७५४	१०१ ६	६२ ५	२० १०		४३	२१	विशाखा	२	आश्वि
४	२९७७५४	२६४ १	५३ ५	१७ ३९		४०	३	उ षाढा	१	मार्गशी
५	२८५७५४	३१७ ६	४४ ४	१४ ६८		३७	५१	पू भाद्र	१	माघ
६	२७३७५४	२ ०	३५ ४	११ ९८		३५	८	अश्विनी	२	चैत्र
७	२६१७६४	३७४	२६ ४	९ २७		३०	२१	रोहिणी	१	वैशाख
८	२४९७५४	६३ ८	१७ ४	६ ५६		२९	३८	आर्द्रा	१	ज्येष्ठ
९	२३७७५४	८१ २	+ ८ ३	३ ८५		२८	५१	पुनर्वसु	१	„
१०	२२५७५४	८९ ५	− ० ७	+ १ १४		२४	६	„	३	„
११	२१३७५४	८८ ८	८ ९	− १ ५७		२१	२१	„	३	„
१२	२०१७५४	७९ ०	१८ ८	४ ५७		१८	३७	आर्द्रा	४	„
१३	१८९७५४	६० २	२७ ८	६ ९९		१५	५०	मृगशि	३	„
१४	१७७७५४	३२ ८	३६ ८	९ ७०		१३	८	कृत्तिका	२	वैशाख
१५	१६५७५४	३५५	४५ ९	१२ ४१		१०	२२	रेवती	३	फाल्गुन
१६	१५३७५४	३०९ ७	५४ ९	१५ १२		७	३७	शतता	१	माघ
१७	१४१७५४	२५४ ८	६३ ९	१७ ८३		४	५०	पू षाढा	१	मार्गशी
१८	१२९७५४	१९० ९	७२ ९	२० ५४	१४		५	स्वाती	२	आश्वि
१९	११७७५४	११८ ०	८२ ०	२३ २५	१४	५९	२०	आश्लेषा	४	आषाढ
२०	१०५७५४	३६ ०	९१ ०	२५ ९२		५५	३८	कृत्तिका	३	वैशाख
२१	९३७५४	३०८ ०	१०० १	२८ ६७		५३	५	धनिष्ठा	४	माघ
२२	८१७५४	२०४ ४	१०९ १	३१ ३७		५१	७	विशाखा	२	आश्विन
२३	६९७५४	९१ ८	११८ १	३४ ०८		४८	२२	पुष्य	१	आषाढ
२४	५७७५४	३३७ ७	१२७ २	३६ ७९		४५	३७	उ भाद्र	२	फाल्गुन
२५	४५७५४	२१० ५	१३६ २	३९ ५०		४२	५०	विशाखा	४	कार्तिक
२६	३३७५४	७४ ३	१४५ २	४२ २१		४०	५	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ
२७	२१७५४	२८९ १	१५४ २	४४ ९२		३७	२३	श्रवण	३	पौष
२८	− ९७५४	१३४ ९	−१६३ ३	४७ ६३		३४	३८	पू फा	२	श्रावण
२९	श.×२२४६	३३१ ६		५० ३४	१४	३१	५२	पू भाद्र.	४	फाल्गुन

कृतयुग की अंतिम संधि वर्ष (४००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांशों का अंतर	एक वर्ष की अयनांति विकला	सापातिक वर्षमान ३६५ दिन			सापातिक नक्षत्र व चरण		सापातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	−३२९७५४	७७ ३		+२४ ६२	१५	४७	५६	आर्द्रा	४	ज्येष्ठ
२	३१७७५४	१५४ ९	+ ८७ ६	२१ ९१		४५	११	उ फा	३	भाद्रपद
३	३०५७५४	२२३ ४	६८ ५	१९ २०		४२	२६	अनुरा	४	कार्तिक
४	२९३७५४	२८२ ९	५९ ५	१६ ४९		३९	४१	श्रवण	१	पौष
५	२८१७५४	३३३ ३	५० ४	१३ ७८		३६	५६	उ भा	१	फाल्गु
६	२६९७५४	१४ ७	४१ ४	११ ०८		३४	११	भरणी	१	चैत्र
७	२५७७५४	४७ १	३२ ४	८ ३७		३१	२६	रोहिणी	३	वैशाख
८	२४५७५४	७० ५	२३ ४	५ ६६		२८	४१	आर्द्रा	२	ज्येष्ठ
९	२३३७५४	८४ ९	१४ ४	२ ९५		२५	५६	पुनर्व	२	"
१०	२२१७५४	९० २	+ ५ ३	+ ० २४		२३	११	"	४	"
११	२०९७५४	८६ ५	− ३ ७	− २ ४७		२०	२६	"	२	"
१२	१९७७५४	७३ ७	१२ ८	५ १८		१७	४२	आर्द्रा	३	"
१३	१८५७५४	५१ ९	२१ ८	७ ८९		१४	५७	रोहिणी	४	वैशाख
१४	१७३७५४	२१ १	३० ८	१० ६०		१२	१२	भरणी	३	चैत्र
१५	१६१७५४	३४१ ३	३९ ८	१३ ३१		९	२७	उ भा	४	फाल्गुन
१६	१४९७५४	२९२ ४	४८ ९	१६ ०२		६	४२	श्रवण	४	पौष
१७	१३७७५४	२३४ ५	५७ ९	१८ ७३		३	५७	ज्येष्ठा	३	फाल्गुन
१८	१२५७५४	१६७ ६	६६ ९	२१ ४४	१५	१	१२	हस्त	३	मार्गशी
१९	११३७५४	९१ ६	७६ ०	२४ १५	१४	५८	२७	पुनर्व	४	आषाढ
२०	१०१७५४	०६ ६	८५ ०	२६ ८६		५५	४२	अश्विनी	२	चैत्र
२१	८९७५४	२७२ ६	९४ ०	२९ ५७		५२	५७	उ षा	२	पौष
२२	७७७५४	१६९ ५	१०३ १	३२ २७		५०	१२	हस्त	२	मार्गशी
२३	६५७५४	५७ ४	११२ १	३४ ९८		४७	२७	मृग	२	वैशाख
२४	५३७५४	२९६ ४	१२१ १	३७ ६९		४४	४२	धनिष्ठा	१	पौष
२५	४१७५४	१६६ १	१३० २	४० ४०		४१	५७	हस्त	२	भाद्रपद
२६	२९७५४	२६ ९	१३९ २	४३ ११		३९	१२	कृत्तिका	१	चैत्र
२७	१७७५५	२३८ ७	१४८ २	४५ ८२		३६	२७	ज्येष्ठा	४	कार्तिक
२८	५७५४	८१ ५	१५७ २	४८ ५३		३३	४३	पुनर्वसु	१	ज्येष्ठ
२९	श.+६२४६	२७० २	−१६६ ३	−५१ २४	१४	३०	५८	उ. षा.	३	पौष

त्रेतायुग की आरंभ संधि वर्ष (३००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व	अयनांश	अयन-गति	सांपातिक वर्षमान ३६५ दिन			सांपातिक नक्षत्र व चरण		सांपातिक मास	संपातके देवता
	वर्ष	अंश	विकला	घ.	प.	वि	नक्षत्र	च.	मास	संपातके
१	–३२९३५४	८०·१	+२४·५३	१५	४७	५०	पुनर्वसु	१	ज्येष्ठ	आदित्य
२	३१७३५४	१५७·३	२१·८२		४५	५	उ. फा.	४	भाद्रपद	अर्यमा
३	३०५३५४	२२५·५	१९·११		४२	३०	अनु.	४	मार्ग.	मित्र
४	२९३३५४	२८४·७	१६·४०		३९	३५	श्रवण	३	पौष	विष्णु
५	२८१३५४	३३४·९	१३·६९		३६	५०	उ. भा.	२	फाल्गु.	अहिर्बुध्न्य
६	२६९३५४	१६·१	१०·९९		३४	५	भरणी	२	चैत्र	यम
७	२५७३५४	४८·३	८·२८		३१	२०	रोहिणी	४	वैशा.	ब्रह्मा
८	२४५३५४	७१·४	५·५७		२८	३५	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ	रुद्र
९	२३३३५४	८५·४	२·८६		२५	५१	पुनर्व.	३	,	अदिति
१०	२२१३५४	९०·६	+ ०·१५		२३	६	,,	४	,,	,,
११	२०९३५४	८६·२	– २·५६		२०	२१	,,	२	,,	,,
१२	१९७३५४	७३·१	५ २७		१७	३६	आर्द्रा	२	,,	रुद्र
१३	१८५३५४	५१·०	७ ९८		१४	५१	रोहिणी	४	वैशाख	ब्रह्मा
१४	१७३३५४	१९·९	१०·६९		१२	६	भरणी	२	चैत्र	यम
१५	१६१३५४	३३९·७	१३·४०		९	२१	उ. भा	२	फाल्गु.	अहिर्बुध्न्य
१६	१४९३५४	२९०·५	१६·११		६	३६	श्रवण	४	पौष	विष्णु
१७	१३७३५४	२३२·३	१८ ८२		३	५१	ज्येष्ठा	२	कार्ति.	इन्द्र
१८	१२५३५४	१६५·१	२१ ५३	१५	०१	६	हस्त	२	भाद्रप.	सविता
१९	११३३५४	८८·९	२४·२४	१४	५८	२१	पुनर्व.	३	ज्येष्ठ	अदिति
२०	१०१३५४	३·६	२६ ९५		५५	३६	अश्वि.	२	चैत्र	अश्विनी
२१	८९३५४	२६९·३	२९·६६		५२	५१	उ. पा.	१	मार्ग.	विश्वेदेव
२२	७७३५४	१६५·०	३२·३६		५०	७	हस्त	२	भाद्रपद	सविता
२३	६५३५४	५३·५	३५·०७		४७	२२	मृग	१	वैशाख	सोम
२४	५३३५४	२९२·१	३७·७८		४४	३७	श्रवण	४	पौष	विष्णु
२५	४१३५४	१६१·६	४०·४९		४१	५२	हस्त	१	भाद्रपद	सविता
२६	२९३५४	२२·१	४३·२०		४९	७	भरणी	३	चैत्र	यम
२७	१७३५४	२३३·६	४५·९१		३६	२२	ज्येष्ठा	३	कार्ति.	इन्द्र
२८	–५३५४	७६·१	४८·६२		३३	३७	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ	रुद्र
२९	श.+६६४६	२६१·५	–५१·३३	१४	३०	५२	उ. पा.	१	मार्ग.	जल

मुख्य त्रेतायुग वर्ष (३०००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अय-नांशके अंतरांश	एक वर्षीय अय-नांश विकला	सापातिक वर्षमान ३६५ दिन			सापातिक नक्षत्र व चरण		सापातिक मास
	गतवर्ष		अन्तरांश	विकला	घ	प	वि	चरण		मास
१	−३२९०५४	८२ २	+ ७६ ०	+२४ ४८	१५	४७	४६	पुनर्वसु	१	ज्येष्ठ
२	३१७०५४	१५९ १	६७ ०	२१ ७५		४५	१	उ फा	४	भाद्रपद
३	३०५०५४	•२७ ०	५८ ९	१९ ०४		४२	१६	ज्येष्ठा	१	कार्तिक
४	२९३०५४	२८५ ९	४९ ९	१६ ३३		३९	३१	श्रवण	३	पौष
५	२८१०५४	३३५ ८	४८ ५	१३ ६२		३६	४५	उ भा	२	फाल्गुन
६	२६९०५४	१६ ७	३१ ९	१० ९२		३४	१	भरणी	२	चैत्र
७	२५७०५४	४८ ७	२२ ९	८ २१		३१	१६	रोहिणी	४	वैशाख
८	२४५०५४	७१ ५	१३ ९	५ ५०		२८	३१	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ
९	२३३०५४	८५ ४	+ ४ ९	२ ७०		२५	४७	पुनर्व	३	”
१०	२२१०५४	९० ३	− ४ २	+ ० ०८		२३	२	”	४	”
११	२०९०५२	८६ १	१३ ३	− २ ६३		२०	१७	”	२	”
१२	१९७०५४	७२ ८	२२ ३	५ ३४		१७	३२	आर्द्रा	२	”
१३	१८५०५४	५० •	३१ ३	८ ०५		१४	४७	रोहिणी	४	वैशाख
१४	१७३०५४	१९ २	६० ३	१० ७६		१२	-	भरणी	२	चैत्र
१५	१६१०५४	३३८ ९	४९ ४	१३ ४७		९	१७	उ भा	२	फाल्गुन
१६	१४९०५४	२८९ ५	५८ ६	१६ १८		६	३२	श्रवण	३	पौष
१७	१३७०५४	२३१ १	६७ ५	१८ ८९		३	४७	ज्येष्ठा	२	कार्तिक
१८	१२५०५४	१६३ ६	७६ ५	२१ ६०	१५	१	२	हस्त	२	भाद्रपद
१९	११३०५४	८७ १	८५ ५	२४ ३१	१४	५८	१८	पुनर्व	३	ज्येष्ठ
२०	१०१०५४	१ ०	९४ ६	२७ ०२		५५	३३	अश्विनी	१	चैत्र
२१	८९०५४	२५७ ०	१०३ ६	२९ ७३		५२	४८	उ षा	१	मार्गशी
२२	७७०५४	१६३ ४	११२ ६	३२ ४३		५०	३	हस्त	२	भाद्रपद
२३	६५०५४	५० ८	१२१ ७	३५ १४		४७	१८	रोहि	४	वैशाख
२४	५३०५४	२८९ १	१३० ७	३७ ८५		४४	३३	श्रवण	३	पौष
२५	४१०५४	१५८ ४	१३९ ७	४० ५६		४१	४८	उ फा	४	भाद्रपद
२६	२९०५४	१८ ७	१४८ ८	४३ २७		३९	३	भरणी	२	चैत्र
२७	१७०५४	२२९ ९	१५७ ८	४५ ९८		३६	१८	ज्येष्ठा	१	कार्तिक
२८	−५०५४	७२ १		४८ ६९		३३	३३	आर्द्रा	२	ज्येष्ठ
२९	श.+६९४६	२६५·२	−१६६ ९	−५४ ४०	१४	३०	४८	पू. षा.	४	मार्गशी.

त्रेतायुग की अंतिम संधि वर्ष संख्या (३००)

युग संख्या	युगारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांतक अंतरांश	एक वर्षीय अयनांति विकला	सांपातिक वर्षमान ३६५दिन			सांपातिक नक्षत्र व चरण		सांपातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	−३२५०४८	१०२ ३	+ ४३७	+०३ ७९	१५	४७	५	पुष्य	३	आषाढ
२	३१४०५८	१७७ ०	६५७	२१ ०८		४४	२०	चित्रा	२	भाद्रपद
३	३०००५८	२४२ ७	५६७	१८ ३७		४१	३५	मूल	२	मार्गशीर्ष
४	२९००५८	३११ ४	४३७	१५ ५५		३८	१०	धनि.	३	पौष
५	२७८०५८	३४७ १	३८७	१२ ५५		३६	५	रेवती	२	फाल्गुन
६	२६६०५८	२१७	२९५	१० २०		३३	२०	कृत्ति	१	चैत्र
७	२५४०५८	५० ३	२०५	७ ५४		३०	३५	मृग	२	वैशाख
८	२४२०५४	७० ९	११६	४ ८३		२७	५०	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ
९	२३००५८	८७ ५	+ २५	+ २ १२		२५	५	पुनर्व	४	„
१०	२१८०५४	९० १	− ६५	− ० ५९		२२	२१	„	४	„
११	२०६०५४	८३ ६	१५५	३ ३०		१९	३०	„	२	„
१२	१९४०५८	६८ १	२४५	५ ०१		१६	४१	आर्द्रा	१	„
१३	१८२०५८	४३ ६	३३६	८ ७२		१४	०	रोहिणी	२	वैशाख
१४	१७००५८	१० ०	४२६	११ ४३		११	२१	अश्वि	३	चैत्र
१५	१५८०५८	३२७ ४	५१६	१४ १४		८	३६	पू भा	३	माघ
१६	१४६०५४	२७५ ८	६०७	१६ ८५		५	५१	उ षा	४	पौष
१७	१३६०५४	२१५ १	६९७	१९ ०६		३	६	अनु	१	कार्तिक
१८	१२२०५४	१४५ ४	७८८	०२ २७	१५	०	२१	पू फा	४	श्रावण
१९	११००५८	६६ ०	८७९	२४ ९८	१४	५७	३६	मृग	४	ज्येष्ठ
२०	९८०५८	३३८ ८	९५८	२७ ६९		५४	११	उ भा	२	फाल्गुन
२१	८६०५८	२४२ ०	१०१५	३० ४०		५२	५	मूल	२	मार्गशीर्ष
२२	७४०५४	१३६ १	११६९	३३ १०		४९	२२	पू फा	१	श्रावण
२३	६२०५४	२१ २	१२३९	३५ ८१		४६	३७	भरणी	३	चैत्र
२४	५००५४	२५७ ३	१३३०	३८ ५२		४३	५२	पू षा	२	मार्गशीर्ष
२५	३८०५४	१२४ ३	१४२०	४१ २३		४१	७	मघा	२	श्रावण
२६	२६०५४	३४० ३	१५१०	४३ ९४		३८	२२	उ भा	३	फाल्गुन
२७	१४०५८	१९१ ३	१६०१	४६ ६५		३५	३७	स्वाती	२	आश्विन
२८	−२०५४	३१ २	−१६९१	४९ ३६		३२	५२	कृति	२	वैशाख
२९	शा.+१९४६	२८२ १		−५२ ०७	१४	३०	७	अनु	३	कार्तिक

द्वापर युग की पूर्व संधिका आरंभ वर्ष (२००)

युग संख्या.	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग के अयनांशक अंतरांश	एक वर्षकी अयनगति विकला	सांपातिक वर्षमान ३६५ दिन			सांपातिक नक्षत्र चरण		सांपातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ.	प.	वि	नक्षत्र	च.	मास
१	–३२५७५४	१०४.२		+२३.७३	१५	४७	१	पुष्य	४	आषाढ
२	३१३७५४	१७८.७	+ ७४.५	२१.०३		४४	१६	चित्रा	२	भाद्रपद
३	३०१७५४	२४४.२	६५.५	१८.३०		४१	३१	मूल	२	मार्गशीर्ष
४	२८९७५४	३००.७	५६.५	१५.५९		३८	४६	धनिष्ठा	२	माघ
५	२७७७५४	३४८.२	४७.५	१२.८८		३६	१	रेवती	१	फाल्गुन
६	२६५७५४	२६.६	३८.४	१०.१८		३३	१६	भरणी	४	चैत्र
७	२५३७५४	५६.०	२९.४	७.४७		३०	३१	मृग.	१	वैशाख
८	२४१७५४	७६.४	२०.४	४.७६		२७	४६	आर्द्रा	३	ज्येष्ठ
९	२२९७५४	८७.७	११.३	+ २.०५		२५	१	पुनर्वसु	३	,,
१०	२१७७५४	९०.०	+ २.३	– ०.६६		२२	१६	,,	३	,,
११	२०५७५४	८३.३	– ६.७	३.३७		१९	३२	,,	१	,,
१२	१९३७५४	६७.५	१५.८	६.०८		१६	४७	आर्द्रा	१	,,
१३	१८१७५४	४२.७	२४.८	८.७९		१४	२	रोहिणी	१	वैशाख
१४	१६९७५४	८.९	३३.८	११.५०		११	१७	अश्विनी	३	चैत्र
१५	१५७७५४	३२६.०	४२.९	१४.२१		८	३२	पू. भाद्र	२	माघ
१६	१४५७५४	२७४.१	५१.९	१६.९२		५	४७	उ षाढा	३	पौष
१७	१३३७५४	२१३.२	६०.९	१९.६३		३	२	विशाखा	४	कार्तिक
१८	१२१७५४	१४३.३	६९.९	२२.३४	१५	०	१७	पू. फाल्गु.	३	श्रावण
१९	१०९७५४	६४.३	७९.०	२५.०५	१४	५७	३२	मृग.	४	ज्येष्ठ
२०	९७७५४	३३६.३	८८.०	२७.७६		५४	४७	उ. भाद्र.	१	फाल्गुन
२१	८५७५४	२३९.३	९७.०	३०.४७		५२	२	ज्येष्ठा	४	कार्तिक
२२	७३७५४	१३३.२	१०६.१	३३.१७		४९	१७	मघा	४	श्रावण
२३	६१७५४	१८.१	११५.१	३५.८८		४६	३२	भरणी	२	चैत्र
२४	४९७५४	२१४.०	१२४.१	३८.५९		१३	४८	पू. षाढा	१	मार्गशीर्ष
२५	३७७५४	१२०.८	१३३.२	४१.३०		४१	३	मघा	१	श्रावण
२६	२५७५४	३३८.६	१४२.२	४४.०१		३८	१८	उ. भा.	२	फाल्गुन
२७	१३७५४	१८७.४	१५१.२	४६.७२		३५	३३	स्वाती	१	आश्विन
२८	– १७५४	२७.१	१६०.३	४९.४३		३२	४८	कृत्तिका	१	चैत्र
२९	+ १०२४६	२१७.८	–१६९.३	–५२.१४	१४	३०	३	अनु.	२	कार्तिक

मुख्य द्वापर युग वर्ष (२०००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांश अंतरांश	एक वर्ष की अयनगति विकला	सापातिक वर्षमान ३६५ दिन			सापातिक नक्षत्र व चरण		सापातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	−३२५५५४	१०५ ५	+ ७६४	+२३ ६७	१५	४६	५८	पुष्य	४	आषाढ
२	३१३५५४	१९७ ९	६५४	२० ९६		४४	१३	चित्रा		भाद्रपद
३	३०१५५४	२४५ ३	५६३	१८ २५		४१	२८	मूल	२	मार्गशीर्ष
४	२८९५५४	३०१ ६	४७३	११५४		३८	४३	धनिष्ठा	३	माघ
५	२७७५५४	३४८ ९	३८३	१२ ८३		३५	५८	रेवती	१	फाल्गुन
६	२६५५५४	३७ २	२९२	१० १३		३३	१३	कृत्तिका	१	चैत्र
७	२५३५५४	५६ ४	२०९	७ ४२		३०	२८	मृग	१	वैशाख
८	२४१५५४	७६ ६	११२	४ ७१		२७	४३	आर्द्रा	२	ज्येष्ठ
९	२२९५५४	८७ ८	+ २०	+ २ ००		२४	५८	पुनर्वसु	३	
१०	२१७५५४	९० ०	− ६९	− ० ७१		२२	१४		३	
११	२०५५५४	८३ १	१५९	३ ४२		१९	२९		१	
१२	१९३५५४	६७ २	२६९	६ १३		१६	४४	आर्द्रा	१	
१३	१८१५५४	४२ ३	३३९	८ ८४		१३	५९	रोहिणी	१	वैशाख
१४	१६९५५४	८ ४	४ ९	११ ५५		११	१४	अश्विनी	३	चैत्र
१	१५७५५४	३२६ ५	५२०	१४ २६		८	२९	पू भाद्र	२	माघ
१६	१४५५५४	२८२ ५	६३०	१६ ९७		५	४४	उ षाढा	२	पौष
१७	१३३५५४	२३९ ५	७००	१९ ६८			५९	विशाखा	४	कार्तिक
१८	१२१५५४	१८१ ५	७९१	२२ ३९	१५	०	१४	पू फा	२	श्रावण
१९	१०९५५४	९२ ६	८८१	२५ १०	१४	५७	२९	मृग	३	ज्येष्ठ
२०	९७५५४	३३४ ३	९७१	७ ८१		५४	४४	उ भाद्र	१	फाल्गुन
२१	८५५५४	२३७	१०६२	३० ५२		५१	५९	ज्येष्ठा	४	कार्तिक
२२	७३५५४	१३१ ०	११५२	३३ २		४९	१५	मघा	४	श्रावण
२३	६१५५४	१५ ८	१ ४२	३५ ९६		४६	३०	भरणी	१	चैत्र
२४	४९५५४	२५१	१३३३	३८ ६४		४३	४५	मूल	४	मार्गशीर्ष
२५	३७५५४	११८ ३	१४२३	४१ ३५		४१	०	आर्द्रा	४	आषाढ
२६	२५५५४	३३६ ०	१५१३	४४ ०६		३८	१५	उ भा	१	फाल्गुन
२७	१३५५४	१८४ ७	१६० ४	४६ ७७		३५	३०	चित्रा	४	आश्विन
२८	− १५५४	२४ ३	−१६९ ४	४९ ४८		३२	४५	भरणी	४	चैत्र
२९	+ १०४४६	३१४९		−५२.१९	१४	३०	००	अनु	१	कार्तिक

द्वापर युग की उत्तर संधि वर्ष संख्या (२००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांश के अंतरांश	एक वर्ष की अयनगति विकला	सापातिक वर्षमान ३६५ दिन			सापातिक नक्षत्र व चरण		सापातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	−३२३५५४	११८ ६		+२३ २२	१५	४६	३१	आश्लेषा	४	आषाढ
२	३११५५४	१९१ ४	+ ७२ ८	२० ५१		४३	४६	स्वाती	२	आश्विन
३	२९९५५४	२५५ २	६३ ८	१७ ८०		४१	१	पू षा	१	मार्गशी
४	२८७५५४	३१० ०	५४ ८	१५ ०९		३८	१६	शतता	२	माघ
५	२७५५५४	३५५ ८	४५ ८	१२ ३८		३५	३१	रेवती	३	फाल्गुन
६	२६३५५४	३२ ६	३६ ८	९ ६८		३२	४.	कृत्तिका	२	वैशाख
७	२५१५५४	६० ४	२७ ८	६ ९७		३०	१	मृग	३	ज्येष्ठ
८	२३९५५४	७९ १	१८ ७	४ २६		२७	१६	आर्द्रा	४	”
९	२२७५५४	८८ ८	९ ७	+ १ ५५		२४	३१	पुनर्वसु	३	,
१०	२१५५५४	८९ ५	+ ० ७	− १ १.		२१	४६	”	३	”
११	२०३५५४	८१ १	− ८ ६	३ ८७		१९	१	”	१	”
१२	१९१५५४	६३ ७	१७ ४	६ ५८		१६	१७	मृग	४	”
१३	१७९५५४	३७ ३	२६ ४	९ २९		१३	३२	कृत्ति	४	वैशाख
१४	१६७५५४	१ ८	३५ ५	१२ ००		१०	४७	अश्वि	१	चैत्र
१५	१५५५५४	३१७ ३	४४ ५	१४ ७१		८	२	शत	४	माघ
१६	१४३५५४	२६३ ८	५३ ५	१७ ४२		५	१७	पू षा	४	मार्गशी
१७	१३१०५४	२०१ २	६२ ६	२० १३	१५	२	३२	विशा	१	आश्विन
१८	११९५५४	१२९ .	७१ ५	२२ ८४	१४	५९	४७	मघा	३	श्रावण
१९	१०७५५४	४८ ९	८० ५	२५ ५५		५७	२	रोहिणी	३	वैशाख
२०	९५५५४	३१९ २	८९ ७	२८ २६		५४	१७	शत	४	माघ
२१	८३५५४	२२० ५	९८ ७	३० ९७		५१	३२	अनु	३	कार्तिक
२२	७१५५४	११२ ८	१०७ ७	३३ ६७		४८	४७	आश्ले	२	आषाढ
२३	५९५५४	३५६ ०	११६ ८	३६ ३८		४६	२	रेवती	३	फाल्गु
२४	४७५५४	२३० २	१२५ ८	३९ ०९		४३	१७	ज्येष्ठा	२	कार्तिक
२५	३५५५४	९५ ४	१३४ ८	४१ ८०		४०	३२	पुष्य	१	आषाढ
२६	२३५५४	३११ ५	१४३ ९	४४ ५१		३७	४७	शत	२	माघ
२७	− ११५५४	१५८ ६	१५२ ९	४७ २२		३५	२	उ फा	४	भाद्रपद
२८	शके + ४४६	३५६ ७	१६१ ९	४९ ९३		३२	१७	रेवती	३	फाल्गुन
२९	+ १२४४६	१८५ ५	−१७१ ०	−५२ ६४	१४	२९	३२	चित्रा	४	आश्विन

मुख्य कलियुग का आरंभ वर्ष (१०००)

युग संख्या	शकारंभ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांशके अंतरांश	एक वर्षकी अयनगति विकला	सांपातिक वर्षमान ३६५ दिन			सांपातिक नक्षत्र व चरण		सांपातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अंतरांश	विकला	घ.	प.	वि	नक्षत्र	च.	मास
१	−३२३२५४	१२०·५	+ ७२·६	+२३·१५	१५	४६	२७	मघा	१	श्रावण
२	३११२५४	११३ १	६३·६	२०·४४		४३	४२	स्वाती	१	आश्विन
३	२९९२५४	२५६·७	५४·६	१७·७३		४०	५७	पू. षा.	१	मार्गशी.
४	२८७२५४	३११·२	४५·६	१५·०२		३८	१२	शत.	२	माघ
५	२७५२५४	३५६ ९	३६·५	१२·३१		३५	२७	रेवती	४	फाल्गुन
६	२६३२५४	३३·४	२७·५	९·६१		३२	४२	कृत्तिका	३	वैशाख
७	२५१२५४	६०·९	१८·५	६·९०		२९	५७	मृग.	३	ज्येष्ठ
८	२३९२५४	७९·४	९·५	४·१९		२७	१२	आर्द्रा	४	„
९	२२७२५४	८८ ९	+ ०·४	+ १·४८		२४	२७	पुनर्वसु	३	„
१०	२१५२५४	८९·३	− ८·६	− १·२३		२१	४२	„	३	„
११	२०३२५४	८०·७	१७ ७	३·९४		१८	५७	„	१	„
१२	१९१२५४	६३·०	२६·७	६·६५		१६	१२	मृग	३	„
१३	१७९२५४	३६·३	३५ ७	९ ३६		१३	२७	कृत्तिका	३	वैशाख
१४	१६७२५४	०·६	४४·८	१२·०७		१०	४२	अश्वि.	१	चैत्र शु
१५	१५५२५४	३१५·८	५३·८	१४ ७८		७	५७	शत.	३	माघ
१६	१४३२५४	२६२·०	६२·८	१७·४९		५	१२	पू षा	३	मार्गशी.
१७	१३१२५४	१९९·२	७१·८	२०·२०	१५	२	२७	स्वाती	४	आश्विन
१८	११९२५४	१२७·४	८०·९	२२·९१	१४	५९	४३	ज्येष्ठा	१	श्रावण
१९	१०७२५४	४६·५	८९ ९	२५ ६२		५६	५८	रोहि	२	वैशाख
२०	९५२५४	३१६·६	९८ ९	२८·३३		५४	१३	शत.	३	माघ
२१	८३२५४	२१७·७	१०७ ९	३१·०४		५१	२८	अनु.	२	कार्तिक
२२	७१२५४	१०९·८	११७·०	३३·७४		४८	४३	आश्ले	१	आषाढ
२३	५९२५४	३५२·८	१२६·०	३६·४५		४५	५८	रेवती	२	फाल्गुन
२४	४७२५४	२२६·८	१३५ ०	३९·१६		४३	१३	ज्येष्ठा	१	कार्तिक
२५	३५२५४	९१·८	१४४ १	४१·८७		४०	२८	पुनर्वसु	४	आषाढ
२६	२३२५४	३०७·७	१५३·१	४४·५८		३७	४३	शत.	१	माघ
२७	−११२५४	१५४·६	१६२·१	४७·२९		३४	५८	उ. फा.	३	भाद्रपद
२८	शके + ७४६	३५२·५	−१३१·२	५०·००		३२	१३	रेवती	२	फाल्गुन
२९	+ १२७४६	१८१·३		−५२·७१	१४	२९	२७	चित्रा	३	आश्विन

कलियुग की उत्तर संधि पर्व संख्या (१००)

युग संख्या	शकारम्भ के पूर्व वर्ष	अयनांश	एक युग में अयनांशों का अंतरांश	एक पर्व की अयनगति विकला	आपातिक वर्षमान ३६५ दिन			आपातिक नक्षत्र व चरण		आपातिक मास
	गतवर्ष	अंश	अन्तरांश	विकला	घ	प	वि	नक्षत्र	च	मास
१	–३२२२५४	१२६ ९		+२२ ९३	१५	४६	१३	मघा	२	श्रावण
२	३१०२५४	१९८ ८	+ ७१ ०	२० २२		४३	२८	स्वाती	४	आश्विन
३	२९८२५४	२६१ ७	६२ ९	१७ ५१		४०	४३	पू षा	३	मार्गशीर्ष
४	२८६२५४	३१० ७	५३ ८	१४ ८०		३७	५८	शत	४	माघ
५	२७४२५४	० २	४४ ८	१२ ०९		३५	१३	अश्वि	१	चैत्र [शु १]
६	२६२२५४	३६ १	३५ ८	९ ३९		३२	२८	कृत्ति	३	वैशाख
७	२५०२५४	६२ ९	२६ ८	६ ६८		२९	४३	मृग	२	ज्येष्ठ
८	२३८२५४	८० ६	१७ ७	३ ९७		२६	५८	पुनर्व	१	"
९	२२६२५४	८९ ३	+ ८ ७	+ १ २६		२४	१३	"	३	"
१०	२१४२५४	८९ ३	– ० ३	– १ ४५		२१	२८		३	"
११	२०२२५४	७९ ६	९ ४	४ १६		१८	४३	आर्द्रा	४	"
१२	१९०२५४	६१ २	१८ ४	६ ८७		१५	५८	मृग	२	"
१३	१७८२५४	३३ ८	२७ ४	९ ५८		१३	१३	कृत्ति	१	वैशाख
१४	१६६२५४	३५७ ३	३६ ५	१२ २९		१०	२८	रेवती	४	फाल्गुन
१५	१५४२५४	३११ ८	४५ ५	१५ ००		७	४३	शत	२	माघ
१६	१४२२५४	२५७ ३	५४ ६	१७ ७१		४	५८	पू षा	२	मार्गशीर्ष
१७	१३०२५४	१९३ ७	६३ ६	२० ४२	१५		१३	स्वाती	३	आश्विन
१८	११८२५४	१२१ १	७२ ६	२३ १३	१४	५९	२८	अनु	३	श्रावण
१९	१०६२५४	३९ ५	८१ ६	२५ ८४		५६	४३	कृत्ति	४	वैशाख
२०	९४२५४	३०८ ९	९० ६	२८ ५५		५३	५८	शत	१	माघ
२१	८२२५४	२०९ २	९९ ७	३१ २६		५१	१३	विशा	३	आश्विन
२२	७०२५४	१०० ५	१०८ ७	३३ ९६		४८	२८	पुष्य	३	आषाढ
२३	५८२५४	३४२ ८	११७ ७	३६ ६७		४५	४३	उ भा	३	फाल्गुन
२४	४६२५४	२१६ ०	१२६ ८	३९ ३८		४२	५८	अनु	१	कार्तिक
२५	३४२५४	८० २	१३५ ८	४२ ०९		४०	१३	पुनर्व	४	ज्येष्ठ
२६	२२२५४	२९१ ४	१४४ ८	४४ ८०		३७	२८	धनिष्ठा	१	पौष
२७	– १०२५४	१४१ ५	१५३ ९	४७ ५१		३४	४३	पू षा	३	श्रावण
२८	शके+१७४१	३३८ ६	१६२ ९	५० २२		३१	५८	उ भा	२	फाल्गुन
२९	+ १३७४६	१६६७	–१७१ ९	–५२ ९३	१४	२९	१३	हस्त	३	भाद्रपद

११४. उक्त बारह टेबलोंमें दिखा दिया है कि प्रत्येक युगादिके आरंभ काल में अयनांश कितने थे। एक महा युगमें सम्पात के कितने अंशोका अंतर पड़ता गया। उस समय अयन गति क्या थी। साम्पातिक वर्षमान कितना था। वैसेही सम्पात की स्थिति किस नक्षत्रपर एवं किस मासमें हुवा करती थी यह सब उक्त टेबलों में स्पष्ट दिखा दिया है। जिससे ज्योतिष के अनभिज्ञ पाठक भी बिना गणित के सहारे उक्त विषयों को सरलतासे समझ सकते है।

११५. उक्त लेखसे निश्चित होता है कि वैदिक ग्रंथों के इतिहास का एवं कालका निश्चय १२ हजार वर्ष के युग पद्धतिसे ही हो सकता है। किंतु पंचांगोंमें लिखे जानेवाली युग संख्या न तो ऋषि प्रणीत ग्रंथोंमें कही है। और न उससे कोई भी प्राचीन बातों की एक वाक्यता मिलती है। भारत [शांति प. अ. ३४६-३४८] में एक मन्वन्तर के कालमें ही एक ब्रह्माकी आयुका पूर्ण होना कहा है। इसीके आधारपर लो. तिलकने अपने गीता रहस्य [पृष्ठ ६६५] में अब ब्रह्माका सातवाँ जन्म कहा है। सो भी ७२ युगोंका एक मनु मान लेनेपर [७२×१२०००=८६४०००] इस वर्ष संख्या के तुल्य ही बारह वर्षका ब्रह्माका दिन तो २४ वर्षका अहोरात्र और [२४×३६०=८६४०] वर्ष तो ८६४००० में सौ वर्ष ब्रह्माके हो जाते हैं। यदि बार्हस्पत्य संवत्सर लिये तो ७१ युग और संधि कालसे ठीक ठीक एक वाक्यता हो जाती है। सिर्फ फर्क इतनाही रहता है कि मनु संख्या की गणना में दिव्य बारह वर्षका [१२ हज़ार का] और ब्रह्माके जन्म संख्यामें सिर्फ बारह वर्षका युग मानना पडता है। तो दोनों परिमाणों के युगों की वर्ष संख्या एक ही आती है।

११६. अब जब इस प्रकार सिद्ध हो चुका कि उक्त बारह हज़ार की ही युग पद्धति वैदिक काल से प्रचलित है। ऋतु चक्रके धर्मानुसार युग चक्रके धर्म भी अनुभूत होते हैं; तब कृतयुग के कोष्टक द्वारा निश्चित होता है कि शाके १८४६ में कलियुग समाप्त होकर २९ वें युग के कृतयुग का आरंभ हो गया है।

युगाऽनुकूल मनुष्यों की आयुष्य।
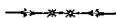
११७. अब यहां एक प्रश्न खड़ा हो सकता है। जबकि अब कृतयुग लग गया। तो कृतयुग के मुआफिक मनुष्यों की आयु चार हज़ार वर्ष की होनी चाहिये। क्योंकि भारत [भीष्म प. अ. १०] में मनुष्यों की आयु कृतमें ४००० त्रेतामें ३००० द्वापरमें २००० व कलिमें १००० का प्रमाण लिखा है तथा मनुस्मृतिमें नीचे लिखे प्रकारके श्लोक कहे है जिसमें—

> अरोगाः सर्व सिद्धार्था श्चतुर्वर्षशतायुषः ॥
> कृत त्रेतादिषु ह्येषा मायुर्ह्रसति पादशः ॥
> (मनु स्मृति १.८३)

युग धर्मानुसार आयु बताई है कि कृतमें ४०० त्रेतामें ३०० द्वापरमें २०० कलिमें १०० वर्ष की आयु होती है। ऐसी मनुष्यों की आयु मर्यादा कही है। तथा श्री रामचंद्र आदि राजाओंकी तो उससे भी बड़ी आयुष्य कहे गई है। जैसा कि—

> दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च ॥
> अयोध्याधिपति र्भूत्वा रामोराज्यमकारयत् ॥५२॥
> [शांति. प. अ. २९]

अयोध्या में ११ हज़ार वर्षतक रामराज्य रहा। भागवत पुराणमें ध्रुव की ३६ हजार वर्ष की, प्रियव्रत की अर्बुद वर्ष की आयु कहे गई है। इससे कृतयुगमें बहोत बड़ी आयु होना चाहिये ?

११८. किंतु इस प्रश्नके उत्तर में कहा जाता है कि वैदिक मंत्रों में जबकी अनेक जगह **शतायुर्वै पुरुषः** [तै. सं. १.५.७.१४] पुरुष की आयु सौ वर्ष की है ऐसा कहा गया है। यज्ञ करके आशिर्वाद मांगते हुए **शतं वर्षाणि जीव्यासम्** [श. ब्रा. २.३.२.२१] हम सो वर्षतक जीते रहें ऐसा बोलते हैं, नित्य प्रति सध्यामें भी **शतं जीवेम शरदः** [वा. सं. ३६.२४] सौ वर्षतक जीवें' ऐसा कहते हैं। दूसरे को आशिर्वाद देते समयभी **शतंजीव शरदो वर्धमानः** [ऋ. सं. ८.८.१९] 'बड़े होते हुए सौ वर्षतक जीवो' कहा गया है। और कोई भी वैदिक ग्रंथ मात्रमें हजार पांच सो वर्ष तो दूर रहे, दो चारसा

वर्षकी भी आयुका नाम तक नहीं है। तब हम निःसंदेह कह सकते है कि सृष्टिके आरंभसे तो आजतक मनुष्य की आयु साधारणतः सौ वर्ष की ही थी और आज भी वही है।

११९. इसीके संबंध में दूसरा यह प्रश्न होता है कि जब कि सहस्र संवत्सर यज्ञ करना लिखा है तब हजार वर्षसे अधिक आयु के बिना यह यज्ञ कैसे हो सकता है? तब यह प्रमाण क्या प्रमाण नहीं है?

१२०. इसकेउत्तरमें इतनाही कथन पर्याप्त है, किवेद संहिता ग्रंथोंमें उक्त सहस्र संवत्सर नामक यज्ञका नाम तक नहीं है; किंतु यह कुछ ब्राह्मण और श्रौत सूत्रोंमें कहा गया है। इसका अर्थ वहां और ही है। किंतु जैसा कि तांड्य ब्राह्मण में कहा है कि—शतायुः पुरुषः। याव देवायुस्तदवरुन्धेते नत्यत्यायुषश्सत्रमस्ति (२५.८.३) सौ वर्ष की पुरुष की आयु है। तब जितनी आयु है वहांतक ही वह यज्ञ करा सकता है; इसी लिये अति आयुष्य-वाला यज्ञ नहीं है। अर्थात् सौ वर्ष के ऊपर पुरुष जी नहीं सकता, ऐसा इसमें स्पष्ट कह दिया है। तथा सहस्र संवत्सरम् मनुष्याणाम् संभवात् ॥ स्याद्देहा नित्यत्वात् ॥ तस्य च कार्यत्वात् ॥ ना संभवात् ॥ शास्त्र संभवादिति भारद्वाजः ॥ नादर्शनात् कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनिः ॥

[कात्यायन श्रौ. अ. १ सू. १३७–१४५]

अर्थात् 'सहस्र संवत्सर यज्ञ मनुष्यों से होना असंभव है। क्योंकि इतने दिन उनका देह टिक नहीं सक्ता और यज्ञ कार्य तो शरीरसे ही किया जा सकता है। तब शरीर के विना यज्ञ पूर्ण होना संभव नहीं। यद्यपि इस विषयमें भर-द्वाजका मत है और जब कि शास्त्र में लिखा है, तब तो यज्ञ पूरा होना ही चाहिये-तथापि ऐसा शास्त्र में कहां दिखता नहीं, कि इतने वर्षोंका यज्ञ पूरा करे; किंतु दूसरे कार्ष्णाजिनि ऋषिका मत है कि कुलके लोग सब मिलकर इसको पूरा करें' इसपर तीसरे लौगाक्षि ऋषिका म[illegible] है ऐसा हो नहीं सक्ता कि पीढीजात ऐसा बराबर करते रहें क्योंकि पंच प[illegible]शत् ५५ संख्यै र्यजमानैः प्रत्येकं कर्तृ-भूतैः संबंध्य मानस्तत्संख्यो सवति यदि एक पीडीकी सरासरी १८ वर्ष की लिये तो ५५ पीढी चाहियें। इस लिये एकदम ५५ मनुष्य मिलकर १८ वर्ष में अथवा २५० मिलकर चार वर्ष में कर दे। किंतु सोधनुपपन्नः 'चतुर्विंशति परमा. सत्त्रमासीरन्' इतिवचनादधिकानां तत्राधिकाराभावात् वह भी शास्त्र सम्मत नहीं है। क्योंकि अधिकसे अधिक २४ मनुष्य मिलकर यज्ञ कर सक्ते है अधिकों को अधिकार नहीं है।

१२१. इसलिये अब स्वयं कात्यायन ऋषि इसका निर्णय करते हैं कि—

अहां वा शक्यत्वात्। श्रुति सामर्थ्यात्। प्रकृत्यनुग्रहाच्च
का. श्रौ. [१. १४६-१४८]

यह तो दिन में ही पूरा हो सकता है और श्रुति में भी अहर्वे संवत्सर इति दिनके अर्थमें संवत्सर शब्द कहा गया है। क्योंकि आदित्यस्त्वे व सर्व ऋतवो यदैवो देत्यथ वसन्तो यदा संगवोथ ग्रीष्मो यदा मध्यंदिनोथ वर्षा यदा परा होथ शरदा दैवास्तमेत्यथ हेमन्त " इत्यस्य अत्रा मिश्रवो दिन परत्वं स्पष्ट मिति भावः आदित्य के उदयास्तमें ६ ऋतु प्रतीत होती है उदय होवे वह वसंत, संगव कालमें ग्रीष्म, मध्यान्हमें वर्षा, अपराह्नमें शरद् और सायंकालमें हेमन्त ऋतु होती है। इस श्रुतिमें दिनकेही अर्थमें संवत्सरका अर्थ स्पष्ट करदिया है। ऐसा प्रकृतिकाभी आधार है इसलिये हजार दिनमें किये जानेवाले यज्ञकोही सवत्सर यज्ञ कहा है। ऐसा इसका तात्पर्यार्थ है।

१२२. यहां यह सोचनेकी बात है कि यदि कोईभी प्रमाणसे बड़ी आयुका पता लगता तो अन्यान्य ऋषियोंके तथा खुद कात्यायनके ऐसे विचार क्यों होते कि जिन्होंने सहस्र संवत्सर यज्ञका उपरोक्त दिनरूप अर्थ करते हुये हजार वर्ष इतनी बड़ी आयुका होना स्वयंने अशक्य बताया है।

१२४. इसी तरह शतपथ (ब्रा. १. ७.४ १९) "अपि हि भूयांसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति तस्मादप्येतद्व्यन्नाद्रियेत" अर्थात् जो कि सौ वर्ष के ऊपर भी‡ बहुत वर्षतक पुरुष जीता है ऐसा कोई कहे उसका कथन विश्वसनीय नहीं अतएव यह मानना उचित नहीं है। यदि मानभी लेवें कि कोई एक डेड सौ या दो सौ वर्ष जीता रहा तोभी वह एक अपवादरूप हो सकता है। अतः सर्वसाधारण मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी है इससे उपरोक्त श्रुतिकल्पित सिद्धान्तमें बाधा नहीं पहुंच सकती।

१२५. अब जब इस तरह सिद्ध होगया कि सर्वसाधारण पुरुष की आयु सौ वर्षकी थी और अब भी है। तब ऊपर कहे हुए युगोंके वर्ष मनुष्यकी आयु के अर्थमें न होकर युगोंके मर्यादारूप के वर्ष हैं, यह तय होता है। जो कि (स्तंभ ४६ में) ऊपर बताये गए हैं। अर्थात् चार हजार वर्षका कृतयुग, तीन का त्रेता, दो का द्वापर और एक हजार वर्षका कलियुग यह युगके परिमाण के अर्थमें कहे गये हैं। और चार, तीन, दो व एक सौ वर्ष जो कृतादिके कहे हैं

‡ अपि वर्षेभ्य. शतात् वर्षं शतमतीत्यापि पुरुषो जीवतेति भाष्यकार सायण.।

वह आरंभ संधिके है। उतने ही समाप्ति संधिके और गिनने पर युगकी मर्यादा पूर्ण हो कर उक्त कथनसे इसकी एक वाक्यता भी हो जाती है। उपरोक्त मनुस्मृतिके श्लोक (१'८३) का अर्थ

१२६. मेधातिथिने ऐसा ही किया है कि– ननु सहषोडशं वर्ष शतं ११६ अजीवदिति परमायुर्वेदे श्रूयते अत एवाहुः वर्ष शतशब्दोऽत्र वयोभेद प्रतिपादकः चत्वारि वयांसि जीवन्तीति। न पुरायुषः प्रमीयते नाप्राप्य चतुर्थ वयो म्रियते। अतएव द्वितीये श्लोकार्थे वयो न्हसनीत्याह। पूर्वत्र वयसो वृद्धानुरक्ता या मुत्तरत्र तस्यैवं न्हासाभिधानोपपत्तिः। पादश इति श्चात्र चतुर्थो भागः पादः किं तर्न्हि भाग मात्रमंशत आयुः क्षयत इत्यर्थः। तथा च केचिद्बालाम्रियन्ते केचित्तरुणाः केचित्प्राप्त जरसः परिपूर्णमायुर्दुर्लभम्॥ अर्थात् "वैदिक मन्त्रों में ज्यादहसे ज्यादा ११६ वर्ष की आयु कही है। इसलिए यहां बाल्यादि चारों अवस्था सो वर्ष में पूरी होती हैं; ऐसा अर्थ लेना चाहिये। यानी कृतयुग में पूरे वृद्ध हो कर तथा त्रेतादिमें यौवन व बालक अवस्था वाले भी क्वचित मर जाते हैं। कलियुग में पूरी ११६ वर्ष की आयु दुर्लभ होजाती है।" ऐसा ही अर्थ राघवानंदने भी किया है।

१२७. यदि कहें कि इन दो भाष्यकारोंने ऐसा अर्थ किया होगा किन्तु कुल्लूकभट्टने तो चार सौ वर्ष ही कहे हैं किन्तु इस कथन के उत्तर में उक्त श्लोक के आगे का मनुस्मृतिका ही प्रमाण पर्याप्त है। क्योंकि वेदोक्तमायुर्मर्त्याना माशिषश्चैव कर्मणाम्॥ फलन्त्यनु युगंलोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥८४॥ इस श्लोक में मनुष्योंकी वेदोक्त आयु और वेदोक्त कर्मोंका आशिर्वाद व प्रभाव कृतयुगमें ही पूर्ण होना कहा है। त्रेतादि युगोंमें कुछ कम फलद्रूप होते हैं। अर्थात् वेद में जो शतमन्नु शरदो अन्तिदेवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् (वा. सं. २५. २२) शत शारदाया युष्मान् (वा. सं. ३४. ५२) सो वर्ष के मनुष्य की वृद्ध अवस्था हो जाती है ऐसा कहा है। इसलिए आशिर्वाद का मांगना भी सो वर्षका ही कहा है। तब युगोंके तारतम्यसे यह मिला करते हैं। यहां कुल्लूकभट्टने भी शतायुः पुरुषइति वेदे पठ्यते ऐसा कह कर पर्यायसे वही अर्थ स्वीकार किया है जो कि ऊपर हम दिखा रहे हैं।

१२८. शोध कर देखनेसे पता चलता है कि उक्त मनुस्मृति के श्लोक का मूलपाठ सर्वे वर्षशतायुषः ऐसा था; क्योंकि यदि चतुर्वर्ष शतायुषः होता, तो कात्यायन श्रोतसूत्रके भाष्यकार कर्काचार्य उपरोक [स्तंभ १२०में] सूत्र के अर्थ को

यताते हुए अथर्वये च पठ्यते एकशतमपमृत्यूनामिति । तेनैकनावं परमायुस्तदुल्लंघनं कर्मणापि न सक्ते कर्तुम् । तथा च मानवे कथं मृत्युः प्रसवती त्युक्त्वा "अनभ्यासेन वेदानामाचारस्यतु वर्जनात् ॥ आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसती त्याह । अतः सहस्रायुष्ट्वस्यासं वादित्युक्तम् [का. श्रौ. १.१४३ भाष्य]

अर्थात् अथर्वण वेद के प्रमाण से सो वर्ष के अंदर होने वाली अपमृत्यु के निवारण के लिए प्रयोग कहे हैं। उन प्रयोगों से भी एक सौ वर्ष की आयु-मर्यादा को वह उल्लंघन नहीं कर सकते। जो कि मानव धर्मशास्त्र में कहे श्लोक [५.४] को आपने कह कर सहस्र संवत्सर यज्ञ करने लायक बडी आयुष्य को असंभवित कहा है। इससे उस समय के मनुस्मृति में चतुर्वर्ष शतायुषः पाठ होता तो एकसौ वर्षकी परम आयुको निर्धारित नहीं करके चारसौ वर्षका अवश्य मेव उल्लेख करते। किंतु ऐसा कहांभी कहा नहीं है न युगोंके भेद बताए हैं। इससे और मालूम होता है कि युगोंके संबंधके श्लोक ६० से ८६ तक के पीछेसे मिलाए गए हैं। क्योंकि श्लोक ५९ के आगे ८७ का संदर्भ बराबर मिलता है। तथापि हम मानभीलें कि वह प्रक्षिप्त नहीं हैं; तो भी उपरोक्त चतुर्वर्ष शतायुषः यह पाठ भेद सर्ववर्ष शतायुषः के जगह किया गया ज्ञात होता है। ऐसा न होता तो स्वयं मनुको आगे " वेदोक्तमायुर्मर्त्यानाम् " यह कहनेकी आवश्यकता न होती।

१२९. इस तरहके अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि मनुष्यकी पूर्ण आयु सो वर्षकी होकर अनाचारसे वह भी घट जाती है। किंतु उक्त बहुत वर्षोंकी आयु प्राचीन ग्रंथोंके आधारपर सिद्ध नहीं हो सकती। तब उक्त आयुके वर्ष युगकी मर्यादाके और संधि कालके दर्शक हैं; मनुष्यके आयुके नहीं।

१३०. अब दूसरे मुद्देको हल करते हैं कि श्रीरामचंद्रका राज्य ११००० वर्षका कहा गया है। किंतु शोधक बुद्धिसे देखा जाय तो वाल्मीक रामायण और भारत इनमें ऐसा कहा नहीं है। क्योंकि इसके संबधके पांच दश श्लोक कहे गये हैं सो युद्ध कांड सर्ग के याने ग्रथके अतमें नीचे लिखे प्रकारके उपसंहारात्मक पौंडरीकाश्वमेधाभ्यां वाजि मेधेन चासकृत् ॥ अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरजयत्पार्थिवात्मजः ॥ ९४ ॥ आजानु लंबि बाहु स महावक्षा प्रतापवान् ॥ लक्ष्मणानुचरो रामः सशास पृथिवीमिमाम् ॥९६॥ स्वकर्मसु प्रवर्तंते तुष्टःस्वैरेव कर्मभिः ॥ आसन्प्रजा धर्मपरा रामे सासति नानृता

॥१०३॥ धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञांच विजयावहम् ॥ आदि काव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकि ना कृतम् ॥१०५॥ इन श्लोकोंमें [९५,९७,१०२,१०४] आठ श्लोक संदर्भ रहित व पुनरुक्त दोषयुक्त अलगही दिखते हैं। ऐसाही भारतमें भी किया गया है। इससे वे प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। और उत्तरकांड तो पीछे बना है। यह उसके भिन्नतासे स्वयं निश्चित हो जाता है। किंतु उसमें भी बहुतसे श्लोक मिलाए गए हैं। ग्रंथके समाप्तिमें सर्ग १०९ में तार, सुषेण, शरभ, गंदमादन लिखे हैं कि अंगद, नल, नील, सुग्रीव, मैंद, द्विविद, जांबवान, आदिके संबंधमें जो जो कहा है वहां— मैंदंच द्विविदं चैव पंच जांबवता सह ॥ ३२ ॥ यावत्कलिश्च संप्राप्त स्तावज्जीवत सर्वदा ॥३३॥ बदेव मुक्त्वा काकुत्थः सर्वास्तानृक्ष वानरान् ॥ उवाच बाढंगच्छध्वं मयासार्धं यथोदितम् ॥३४॥ " सर्वान् " के जगह " शेषान् स्तानृक्षवानरान् " यदि कहा जाता तो पूर्व श्लोकों [३२-३३] से इसका संबंध मिल जाता किंतु ऐसा वहां नहीं है। इससे यहां भी [३२ ३३] यह श्लोक असंगत हो जाते हैं।

१३१. और यदि मान भी लें कि ११००० वर्ष तक श्रीरामचंद्रजीने राज्य किया, तब देखिये एक असंभावित् बातके प्रतिपादन में उन वानरोंकी आयु भी उनसे भी बढकर बडी १२-१३ हजार वर्षकी मानना पडता है। इतनाही नहीं तो मैंद, द्विविद, जांबवान् आदि का अस्तित्व पुराण ग्रंथों में कहा होनेसे तथा उसमें त्रेताके अंतमें रामावतार, और द्वापारके अंतमें कृष्णावतार; माननेसे उनके हिसावसे ८६४००० द्वापर वर्षों के ऊपर यानें करीब ९ लाख वर्षों की उक्त वानरोंकी आयु कहे सरीखी हो जाती है। और इस जांबवान्को तो कृत-युगके वामन अवतारसे लगाकर कृष्ण अवतार में तो इसका कृष्णसे युद्ध होकर इसकी जांबवति कन्या के साथ कृष्णका विवाह का होना; बोले तो जांबवान् की २२ लाख वर्ष के बादभी उसकी योवन अवस्था बतलाना ऐतिहासिक रीतिसे कितना असंगत होजाता है। यहां पाठकोंनेही विचार करके देखना चाहिये कि जो यदि ऐसा होता, तो वैदिक संहिता, ब्राह्मण व सूत्र ग्रंथोंमें इनका कुछ पता पाया जाता; किंतु उनमें इस बातका नामो निशान नहीं है। इतनाही नहीं तो भाष्यकारकर्काचार्य के समय तक इस कल्पनाकाही प्रादुर्भाव न हुआथा जो कि सौ वर्षसे बडी आयु मानी जाय। उन प्रक्षिप्त श्लोकोंमें

आसन्वर्ष सहस्राणि तथा पुत्र सहस्रिणः ॥ निरामया जनाः सर्वे रामे राज्यं प्रशासति ॥१०१॥ वा. रा. यु. कां. १३०

अर्थात् उस राम राज्यमें मनुष्योंकी आयु हजारों वर्षकी थी और एकेक को हजारों पुत्र होते थे ऐसा कहा है किंतु खुद रामचंद्र आदि चारों भाईयोंको

दो दो ही कुश लव आदि पुत्र थे। और उन कुश व लव के वशमें किसीकोभी हजारों पुत्रोंका होना तो दूर रहा सौ पचास पुत्रोंकाभी होना लिखा नहीं है। सिर्फ किसी किसीको दस बारा पुत्रोंतकका होना कहा है।

श्रीरामचंद्रके निज धामके गण

१ कुश	२१ [मरु]	४१ महदेव
२ अतिथि	२२ प्रसुश्रुत	४२ सुनक्षत्र
३ निषध	२३ संधि	४३ पुष्कर
४ नभ	२४ अमर्षण	४४ अंतरिक्ष
५ पुंडरीक	२५ महस्वान	४५ सुतपा
६ क्षेमधन्वा	२६ विश्वासाह्व	४६ आमित्रजित
७ देवानीक	२७ नग्नजित	४७ वृहद्राज
८ अनीह	२८ मक्षक	४८ वहि
९ पारिमात्र	पिम्रतिसमरहन. वृहद्वल	४९ कृतंजय
१० बल	३० वृहद्रण	५० रणंजय
११ स्थल	३१ उरुक्रिम	५१ संजय
१२ वज्रनाभ	३२ वत्सवृद्ध	५२ शाक्य
१३ खगण	३३ प्रतिव्योम	५३ शुद्धोद
१४ विधृति	३४ भानु	५४ लांगल
१५ हिरण्यनाभ	३५ दिवाक	५५ प्रसेनाजित्
१६ पुष्प	३६ सहदेव	५६ क्षुद्र
१७ ध्रुवसंधि	३७ वृहदश्व	५७ रणक
१८ सुदर्शन	३८ भानुमान्	५८ सुरथ
१९ अग्निवर्ण	३९ प्रतिकाश्व	५९ सुमित्र
२० शीघ्र	४० सप्रतीक	

पश्चात उनके, उनका पुत्र कुश गादीपर बैठाथा तो उसकी आयू केवल ३ या चालीस वर्ष जो कि रामचंद्रके अशमेभी नहीं तुल्ती। गृह्यसूत्र मनुस्मृति धर्मशास्त्र, महाभारत व पुराणादि ग्रंथोंमे २४ वर्षतक ब्रह्मचर्याश्रम व और समावर्तन संस्कार होकर विवाहका करना लिखा है। इस हिसाबसे सरासरी २५ वर्ष मे एक पीढी मोजना शास्त्र सम्मत एवं वर्तमान स्थितिसे अनुकूल हो सकता है। तब २५ वर्षकी एक पीढी मानने से खुद रामचंद्र आदिके समक्षही उस वक्तके सब लोगोंको होना चाहिये।

१३३. किंतु ऐसा कहूं भी नहीं है । उलट इसमें एक ऐसा उल्लेख मिलता है कि राम के २९ पीढी में वृहद्बल नामक जो अयोध्याका राजा हुवा; वह महाभारत संग्राम में अभिमन्युद्वारा मारा गया। और वैसेही इसी २७ वी पीढी में जो नग्नजित अयोध्याका अधिपति हुवा उसकी नाग्नजिती [सत्या] कन्याको श्रीकृष्णनें विवाही (भा. ९.१२.८) इससे उलट यह बात तय होती है कि रामावतार के पश्चात ही २७ और २८ पीढी के बीच कृष्णावतार हुवा है। अब यहां आपही सोचिये कि यदि दीर्घ आयुवाले राम उस समय होते, तो उनके होते हुवे; अयोध्याधिपति नाग्नजित और वृहद्बल नहीं हो सकते थे।

१३४ आगे यह भी कहते हैं कि रामचंद्रजी के ५९ पीढी में सुमित्र नामक राजा हुवा तभीतक इनके वंशमें राज्य रहा फिर वह कलिमें समाप्त हो गया तब क्या रामकेही सामने आधिपत्य की परिसमाप्ति ! और कलिका आरंभ होना हो सकता है ? नहीं !! उलट इसी में आगे चलकर वहां ऐसाभी लिखा है कि:—

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोभवत्

(भागवत ९. १०. १५)

रामचंद्रके सामने त्रेतायुग होते हुए भी वह समय कृतयुगके समान था

१३५. इन सब बातों को देखते मालूम होता है कि उपरोक्त सहस्र संवत्सरमें कहे हुए शास्त्राऽनुकूल 'अहर्वै संवत्सरः' के अनुसार यह दिनके अर्थ में वर्ष कहे गए हैं। इस हिसाबसे ३६ वर्ष में तेरह हजार के करीब दिनात्मक वर्ष होते हैं। इससे निश्चित होता है कि रामचद्रका अनुशासन काल ३६ वर्ष का होना चाहिये। और जब लव कुशने इनको दरबार में रामायण सुनाई तब रामायण के कथनाऽनुसार श्रीरामचन्द्रकी अवस्था ६० वर्ष के करीबकी थी। इस सिद्धान्तसे ठीक ठीक अनुमित होता है कि ९० से १०० वर्ष के भीतर ही श्रीरामकी आयुष्य थी।

१३६ अब उपरोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका की मनुष्य की परम आयु सौ वर्षकी है। किंतु कलियुगमें 'नच कश्चित त्रयो विंशति वर्षाणि जीविष्यति [वि. पु. ४।२४।२५] त्रिंश द्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणां [भा. पु. १२.२] प्रायः पचीस तीस वर्षमेंही कई गत होजाते हैं। अर्थात् उक्त वर्ष संख्या आयुकी औसत (सरासरी) है। वर्तमान में खाना सुमारी से मनुष्यकी मृत्युकी औसत २३ वर्ष ही कि निश्चित है।

१३७. हां अब पांच वर्ष से सतयुग संधी लगी है सो इसके ४०० वर्ष के संधिकाल में आगे सतयुगारंभ तक मृत्यु मानकी औसत (सरासरी) धीरे धीरे सौ वर्षकी होकर रहेगी इसमें कोई सन्देह नहीं। क्यों कि ऋतु धर्माऽनुकूल युगधर्म भी निश्चित है।

१३८. अब तीसरा प्रश्न हल करते हैं जो ध्रुव और प्रियव्रत के संबंधक है। यहां थोडेसे में इतनाही कथन बस है कि ध्रुव और प्रियव्रत कोई व्यक्ति नहीं हुए हैं। किंतु इनकी कथा तारों के तथा कालके उपलक्ष्य में कही गई है क्यों कि उत्तानपाद के सुनीति स्त्रीसे ध्रुवकी उत्पत्ति, और शिशुमार की भ्रमी नामक कन्याके साथ में ध्रुवका विवाह; तथा कल्प और वत्सर नामके पुत्रों के काल विभागात्मक नाम करण देखनेहीसे तत्वज्ञ विद्वान सहसा समझ सके हैं कि तारोंके विभागों का हिसाब बैठानेका केवल एक रूपक है।

१३९. इससे तो यह सिद्ध होता है कि नतो कोई ध्रुव नामक मनुष्य था और न कल्प-वत्सर कोई व्यक्ति थी। यह तो केवल उत्तर ध्रुव के संबंधका रूपक है। और इसीसे उसकी आयु ३६ हजार वर्षकी कही है। इसमें सच तो यह है कि जब ३६ हजार वर्ष में कदंब के चौगिर्द ध्रुव की एक प्रदक्षिणा होती थी, अर्थात अयन वर्ष गति ३६ विकला के हिसाब से ३६ हजार वर्ष में जब पूरा एक चक्कर (प्रदक्षिणा) होता था; तबका यह कथानक है। वैसेही प्रियव्रत की जो आयु ११ अर्बुद वर्षकी कही है। उसका भी संबंध ज्योतिर्गोलोंसे है; मनुष्योंसे नहीं।

१४०. पुराण ग्रंथों मे जगह जगह—पुंसो वर्ष शतंह्यायुः (भागवत स्कं. १ अ. ६'७६)अद्यवाब्द शतां तेवा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः (भा. स्कं. १०'१'३८) इस प्रकार सौ वर्ष ही के आयुका प्रमाण स्पष्ट कहा गया है। तब अब कृत युग लग गया है तो पुरुषोंकी आयु चार हजार या ४ सौ वर्ष की कल्पना करना ? या उस आयुके विना अभी कृतयुगका आरंभ हुवाही नही ऐसा कहना, या अनुमान करना; सर्वथा असंगत एव निराधार है।

१४१. अब रही प्रतिदिनके संकल्पकी बात; इधर जब हम हमारा ध्यान पुराकर देखते है तब पता चलता है कि वैदिक एवं स्मृति ग्रंथों में युगोंका कहींभी उल्लेख नहीं है। सिर्फ शके ६४६ के कलियुगारंभ के पश्चात के बने हुए कई ग्रंथोंमें 'कलियुगे कलि प्रथम चरणे' ऐसा पाठ मिलता है। सिवाय सूर्य सिद्धान्तादि का कथन कैसा निःसार है; यह प्रथम हमने सिद्ध कर दिया है। और हमारे 'प्रभाकर सिद्धान्त' नामक ज्योतिषके ग्रंथमें संवत १९८१ शके १८४६ में कलियुगकी परि समाप्ति होकर-अर्थात अट्ठावीस युग पूर्ण हुए युग वर्षोंसे कल्पारंभ में शून्य स्थान पर ग्रह मानकर शुद्ध सूक्ष्म रीतिके ग्रह स्पष्ट करके दिखाया है। गताब्दोंसे ग्रह साधन भी कर सकते हैं।

१४२ अतः यह बात निःसन्देह कह सके हैं कि जिन प्रमाणोंको आधार मानकर अभीतकके विद्वान कलियुगकी स्थिति स्थिर करते थे। किन्तु असली

* ग्रंथकर्ता *

गोपीनाथ शास्त्री चुलैट

यत में उन्ही प्रमाणोंका और ही अर्थ होनेसे अनायास यह बात स्पष्ट तया सिद्ध होती है, कि संवत १९८१ शके १८४६ के पौष कृष्ण ३० को एवं तारीख

सूर्य २५१°
चन्द्र २५१°
पौषमास २५१°
बृहस्पति २५१

२६ डिसेंबर १९२४ इसवी को २५१° साम्य सूर्य-चन्द्र पौष और बृहस्पतिका जब योग होगया है; तब महाभारतादि पुराणके कहे कृत युग द्योतक प्रमाणोंसे स्वयं सिद्ध होता है कि 'सतयुग' की पूर्व संधिका आरंभ होगया। और कलह कारी 'कलियुग' की अंतिम संधि सहित समाप्ती हो चुकी।

अब जब यह सिद्ध होगया कि कलियुग का अन्त होगया, तब 'कलियुग' का नाम लेते हुए संकल्प करना सर्व थैव अयोग्य है। अतः

संकल्प बदलो !!!

क्यों कि कलियुग का अब अस्तित्व है ही नहीं तब व्यर्थही कलिका नामोच्चारण करते हुए संकल्प करना अयोग्य है। अतः संकल्प को बदलो और कहो!

विष्णु र्विष्णु र्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुपस्य विष्णोराज्ञया-प्रवर्त मानस्य अद्य हरिहरो ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे विष्णुपदे श्री श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वंतरे—

एकोन त्रिंशति तमे कृत युगे कृत प्रथम चरणे........!

क्यों कि यही सत्य युगीन सत्य संकल्प है अन्यथा कलह रूप हलाहल से ओतः प्रोत ऐसे कलियुग का नाम लेते हुए, सतयुग संधि लगनेपर संकल्प करना सर्वथा अयोग्य है। इतनाही नहीं तो संकल्पमें कलियुग का नामोच्चारण करना पाप है।

सतयुग विरोधी मण्डल।

१. इतने दिनतक कलियुगी आचार विचारके भ्रममें पडे हुए प्राचीन पद्धतिके विद्वानोंको यह कालियुग इतना प्रिय और आवश्यक दिखता है, कि यही युग सदा सर्वकाल कायम रहे ऐसी उनकी आभ्यंतरिक इच्छा होगई है। इसी लिये निर्णय सिंधुकार कमलाकर भट्ट सदश महा विद्वान् लोग भी असत्य व कल्पित बातोंके प्रमाण बताकर इस युगका चिरस्थायी रखनेमें यानी चार लाख सत्तावीस हजार वर्ष तक अभी कलियुग रहेगा ऐसा उपदेश देनेमें प्रवृत्त हुए है। अतएव आपनें इसकी ओटमें औरभी समाज और धर्मका घात करनेवाली कई बातें अपनें शूद्र कमलाकरादि ग्रंथोंमें कही हैं।

२. यह तो प्राचीन पंडितोंमेंसे एक का उदाहरण दिया है; किंतु अर्वाचीन काल में विद्यमान पंडितोंका भी ऐसा ही उद्देश है। इसलिये वर्तमान में जब कोई इस कलियुगकी इतिश्रीकी बात करता है तब ये लोग अब्रह्मण्यं! अब्रह्मण्यं!! कहकर चिल्लाते हैं और उसकी बातको चाहे जिसप्रकार हटानेका प्रयत्न करते हैं। तब यह विषय गूढ होनेके कारण इतिश्री कहनेवाला विद्वान भी पीछे को हट जाता है।

३ इस कथनको सिद्ध करने वाले उदाहरण बहुतसे है। और उन सबकी समालोचना करना इस पुस्तकमें अशक्य है। तथापि यहां हम सिर्फ एक उदाहरण बताकर उपरोक्त हमारे कथनको सिद्ध कर देना चाहते हैं। कि कैसे २ असत्य प्रमाण बताकर ये लोग आजतक साधारण जनताको ही नहीं बडे बडे उत्कट विद्वानोंको भी दोष लगाकर श्रुतिस्मृति प्रोक्त धर्मको अधर्म बताकर और मानव जाती मात्रकी अवनति करनेवाली कालियुगीय कल्पित बातोंको श्रुति-स्मृति संमत धर्म बताकर भ्रम में डालते है।

कलियुग को हटानेका पहिला प्रयत्न।

४. जैसे वेदशास्त्र संपन्न काशीनाथ वामन लेले चाईकर शास्त्री महाराजनें तारीख १६-११-१९०८ ई. तदनुसार कार्तिक कृष्ण ८ शके १८३० के 'धर्म नामक' मासिक पुस्तक में श्रीमत् द्वारका मठके जगद्गुरु शंकराचार्य व्रात्य क्षत्रिय संस्कार निर्णयके खंडनात्मक लेखमें तथा सिद्धान्त विजय परीक्षणमें जो कुछ धर्मशास्त्र के नामसे प्रमाण बताए हैं वे तो इस लेखसे निरर्थक हो ही जाते हैं किंतु पृष्ट [१०१-१०२] में जो आपने नीचे लिखे प्रकारका लेख लिखा है उसका निरीक्षण यहां करनेसे प्रस्तुत विषयका दिग्दर्शन हो जाता है।

५. आपने रावबहादुर चिन्तामणराव वैद्य, वे. शा. सं. काशीनाथपंत ब्रह्मनाळकर, काशीनिवासी विद्वद्वर कृष्णानन्द, श्रीमज्जगद्गुरु माधवतीर्थ शंकराचार्य, और केसरी, काळ, माला, ज्ञानप्रकाश, इन्दु प्रकाशादि वर्तमान पत्रकार व विविधज्ञानप्रकाशादि मासिक कारोंको दोष देते हुए व पक्षपाती बताते हुए आगे आप कहते हैं कि—

[१] कृत, त्रेता, द्वापर व कलि हीं चार युगें छगजे मानवांची बारा हजार वर्षे असें वैद्य, केसरीकार वगैरे ह्मणत असल्यामुळें सांप्रतचा काल कृतयुग ठरूं लागेल.

[२] हजारों पिढ्या संस्कार हीन झालेले हे [मराठे व रजपूत] लोक जर क्षत्रिय ठरले तर ब्राह्मणांचे त्यांच्याशीं शरीर संबंध होऊं लागतील. कारण ब्राह्मण व क्षत्रिय ह्यांमध्यें शरीर संबंध कली शिवाय इतर युगांत होत असतो.

[३] कृत युगामध्यें मधुपर्क समयीं पशु वध होण्यास हरकत नाहीं.

[४] व श्राद्ध समयीं मांस भक्षण्यास हरकत नाहीं असें असल्यामुळें ब्राह्मण लोक प्रत्यहीं मांस भक्षण करूं लागतील.

[५] नियोगविधि कृत युगांत होतो ह्मणून विधवांशी राजरोस समागम सुशिक्षित लोक करूं लागतील.

[६] व ब्राह्मणादिकांचे घरी शूद्राची पचनक्रिया कलियुगांतच वर्ज्य असल्यामुळें शूद्राच्या हातचे अन्न ब्राह्मण सरसहा सेवन करूं लागतील. आणि–

[७] असें झालें असतां–

अनभ्यासाच्च वेदानामाचारस्य वर्जनात् ॥
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥

ह्या मनु [५-४] वचना प्रमाणें वर्णगुरु ब्राह्मण आपल्या शिष्यांसह मृत्युमुखी पडून राष्ट्राचा अंत होईल.

[८] शिंदे सरकार, गायकवाड सरकार इत्यादिकांच्या उत्तेजनेच्या मदतीनें प्रसिद्ध होत आहेत. आणि वेदांतील ऋचा ह्मणजे·· पोवाडे ठरविणारी आर्टिक होम इन् दि वेदाज सारखीं पुस्तकें लोकमान्य होऊं लागली आहेत.

[९] बडोदे, कोल्हापूर, देवास इत्यादि संस्थानातून हें खूळ माजविण्यात आलेलें आहे. परंतु हे [वेदोक्त प्रकरण] दृढ मूल झाल्यास राष्ट्राचा घात केल्याशिवाय कधींही रहाणार नाहीं.

[१०] केसरी कर्त्यांसारखे निष्पक्षपातीपणाचा डौल मिरविणारे पत्रकार ह्या खंडणा संबंधानें मूग गिळून बसत आहे ॥"

६. इस तरह श्री. लेलेशास्त्रीजीने कहा है। इसमें (स्तंभ १ में) के लेखसे पता चलता है कि उस समय राव बहादुर वैद्य और लोकमान्य तिलक महोदयने अपने लेखमें चतुर्युग परिमाण बारह हजार वर्षका बताया था इससे

"बारह सौ वर्षका कलियुग बीतकर कृत युगादिका आरंभ होगया" ऐसा बताकर आपने अपनी कुशाग्र बुद्धिका परिचय दिया था; किंतु शास्त्रीजीने (स्तंभ २-६ में) कलि कल्पित बातों को धर्मकी पोषक और कृतादि युगों की बातोंको धर्मकी विघातक बताते हुए (स्तंभ ७-९ में कलियुगी बातों को नहीं माननेसे धर्म लोपके साथ साथ राष्ट्रका अंत हो जानेका भूत खडाकर दिया। और अंत (स्तंभ १०) में भय इतना बता दिया, कि जब केसरीकार सरीखे विद्वानकी जबान बंद होगई है तो और किसी लेखक की क्या मजाल है कि इस विषयमें कुछ भी कर सके।

प्रलापका परिणाम।

७. इसका परिणाम आगे यह हुआ कि उक्त लेखक भ्रममें पड़कर मूक होगए इतनाही नहीं वेही रावबहादुर वैद्य महाभारत के उपसंहार नामक ग्रंथमें तथा लोकमान्य तिलक गीता रहस्य नामक ग्रंथमें कलियुग का परिमाण फिरसे वही चार लाख वत्तीस हजार वर्षका बताकर कलियुगी बातों को धर्म समझकर पालना चाहिये ऐसा कहने लग गए।

८. जबकि ऐसे २ भारत वीर विद्वानभी कलियुगकी इतिश्री कहते हुए सदाचिरंजीवी भव! कहने लग गए तब बिचारे अन्यान्य साधारण वर्तमान पत्र कारादिकों की क्या कथा?

९. इस लिए हमारा यह कर्तव्य है कि प्रस्तुत कलियुगी धर्माभास को स्पष्ट करके बता दें ताकि जिस कलिकल्पनासे अधर्मका धर्म और धर्मका अधर्म दिख रहा है इस भ्रमोत्पन्न भूत को दूर करके श्रुतिस्मृति प्रमाण शून्य कलिवर्ज्य प्रकरणोक्त बातों को चाहे कलिकालमें वह राष्ट्रकी पोषक रही हों किंतु अब वे कायम रखनेसे विघातक हैं ऐसा सिद्ध कर देना है।

१०. इस ध्येयको सामने रखकर जब हम देखते हैं तो पता चलता है कि जैसे शाके ८४६ के बादके ग्रंथकारोंने कलियुग की व्याप्ति लाखों वर्षकी बतानें के लिये इसका आरंभ करीब पांच हजारका मिथ्या बता दिया उसी प्रकार मनुस्मृतिके टीका कारके समयसे यह कलिवर्ज्य प्रकरणका आरंभ होकर कमलाकरके समयतक यह राईका पर्वत होगया है। किंतु जिस प्रकार पूर्व प्रकरणमें बताए मुआफिक शाके ८४६ के पहिले के किसी भी ग्रंथमें कलियुगका अस्तित्व-काही नामनिशानही नहीं है। तब उक्त कालके पहिले के ग्रंथोंमें इसमेंकी वर्ज्य बातोंका पता कैसे लग सकता है? चाहे कलियुगी पंडितोंने इस कलिकी बातोंको स्मृति, भारत व पुराणादिकों में मिलादी हों तोभी निबंधका खंडनं

ग्रंथोंके टीका कारोंके कालानुक्रमको देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त कालके पहिले न तो कलि कल्पनाका प्रादुर्भाव हुआ था न उसकी वर्ज्य बातें बनी थी।

११. इस लिये अब हमें निबंध व टीका कारोंके कथित भागसे इसके मूलको शोधना चाहिये। उसमेंभी निर्णय सिंधु नामक निबंध ग्रंथमें कमलाकर भट्टके कहे हुए कलिवर्ज्य प्रकरण को पूर्ण मानकर इसका मूल स्मृति पुराणादितक पहुंचा हुआहै या त्रिशंकुकी तरह अधर झूलरहाहै सो स्पष्टकरके बताते हैं।

वैदिक परंपरामें परिवर्तन ।

१२. निर्णयसिंधु नामका ग्रंथ कमलाकर भट्टनें संवत् १६६८ शके १५३३ में बनाया ऐसा उसके अंतमें लिखा है। इस (प. ३ पू.) में कलिवर्ज्य प्रकरण लिखा है। वहां बृहन्नारदीय पुराण अध्याय २२ के नीचे लिखे प्रकार श्लोक कहे हैं कि "इदानीं श्रोतुमिच्छा मो वर्णा चारविधिं मनु" ॥३॥ ऐसा ऋषियोंके प्रश्न करनेपर सूतजी बोले "ब्राह्मण क्षत्रिया वैश्या द्विजा प्रोक्ता त्रिजस्तथा॥ मातृतश्चो पनयनाद्दीक्षया जन्म वैक्रमात् ॥७॥ एभिर्वर्णैः सर्वे धर्माः कार्या वर्णा नुरूपतः॥ स्वधर्मं कर्म त्यागेन पाखंडः प्रोच्यते बुधैः॥८॥ स्वगृह्य चोदितं कर्म द्विजः कुर्वन्कृती भवेत्॥ अधर्मो लोक विद्विष्टं धर्म मप्याचरेन्नतु ॥९॥ [अ ४] समुद्र यात्रा स्वीकारः कमंडलु विधारणम्॥ द्विजानाम सवर्णासु कन्या परिणयस्तथा ॥१०॥ देवरेण सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः॥ मांसा शनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमंतथा ॥११॥ दत्तायाश्चैवक्षताः कन्या पुनर्दानं परस्यच॥ दीर्घ कालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्व मेधकौ ॥१२॥ महा प्रस्थान गमनं पशुमेध महा मखम्॥इमान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥१३॥ देशाचारः परिग्राह्यस्तद्देशीय जनैर्नरैः॥ अन्यथा पतितोज्ञेयः सर्व धर्म बहिष्कृत ॥१४॥ ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राणां चैव सत्तमाः॥ क्रिया सामान्य तो वक्ष्ये श्रुणुध्वं सुसमाहिताः॥१५॥

अर्थात् ऋषियोंने चातुर्वर्ण्यके धर्माचरण श्रवण करनेका प्रश्न किया तब सूतजी उत्तर देते हैं कि (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय (३) वैश्य ये तीन वर्ण द्विज और त्रिज कहाते हैं क्यों कि मातासे पहिला, उपनयनसे दूसरा और दीक्षासे तीसरा ऐसे तीन जन्म होते हैं॥७॥ इन वर्णोंको अपने वर्ण धर्मके अनुसार कर्म करना चाहिये। अपने धर्म कर्म के त्यागनेसे पाखंड मत कहाता है॥८॥ अपने गृह्य सूत्रमें कहे कर्मके आचरणसे द्विज कृतार्थ हो जाता है। अधर्मसे

लोक विद्विष्ट धर्मकाभी आचरण नहीं करना चाहिये ॥९॥ और जिस देशमें रहे उस देशका देशाचारभी वहां के लोगोंको करना चाहिये ऐसा नहीं करनेसे उसे पतित समझना चाहिये क्यों कि वह सब धर्मोसे बहिष्कृत हो जाता है ॥१४॥ अतएव अब ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनके समान रीतिसे कर्मोको कहताहूं सो सावधानीसे सुनिये ॥१५॥

विषयांतर और प्रक्षिप्त लीला ।

१३. इस प्रकारसे इसका संदर्भ याने पूर्वापर कथन की संगति लगती है। किंतु इसके ९ श्लोक से १३ श्लोक तक का क्या अर्थ है सो यहां लिखतां हूं

(१) नांवमें बैठकर समुद्रमें पर्यटन करने वालेका स्वीकार.
(२) कमंडलुका धारण यानें संन्यासाश्रम.
(३) दूसरे वर्णकी कन्यासे द्विजातिका विवाह
(४) देवरसे संतानको पैदा करना.
(५) मधुपर्कमें पशुका वध.
(६) श्राद्धमें मांसका भक्षण.
(७) वानप्रस्थाश्रम.
(८) विवाहीहुई अक्षतयोनि कन्याका दूसरे वरकेसाथ विवाह.
[९] बहुत कालतक का ब्रह्मचर्याश्रम.
[१०] नरमेध व अश्वमेध यज्ञ.
[११] बहुत दूरीका गमन.
[१२] पशु मेध.
[१३] और सोम याग इत्यादि बडे यज्ञ, यद्यपि ये धर्म है, तो दीर्घ दर्शी लोगोंने वर्ज्य करदिये है इसलिये इन्हे नही करना चाहिये ॥ श्लोक १०-१३ ॥

१४. इन तेरह बातोंकी मनाई की है वस्तुतः इसी पुराणके २७ वें अध्याय में युगोंके धर्म (श्लोक १-२५) कहकर आगे ऋषियोंने प्रश्न किया कि युग धर्माः समाख्यातास्त्वया संक्षेपतो मुने ॥ कालिंविस्तरतो ब्रूहि त्वंहि- सर्व विदांवरः ॥२६॥ आपनें युगोंके धर्मोका संक्षेपमें निरूपण किया अब

कालि धर्मको विस्तार पूर्वक कहना चाहिये ॥२६॥ इसके उत्तरमें सूतजीने श्लोक [२८-१४३] अध्याय समाप्ति पर्यन्त कालि धर्मका निरूपण किया वहां उपरोक्त १३ बातोंकी मनाही करनीथी, वहां तो कि नहीं; किंतु यहां कलि धर्मका प्रश्न न होते हुए वर्ण धर्मके प्रश्नके बीचमें ही ये कलि धर्मकी बातें जोकि बिलकुल असंगत है कैसे कह सक्ते है? क्यों कि इसीके आगे अब वर्णोंके धर्मोंको मैं कहता हूं ऐसा सूतका कथन है। सो निरर्थक हो जाता है।

१५. इससे स्पष्ट होता है कि कमलाकरने बृहन्नारदीय पुराणके नामसे उक्त श्लोक कहे है। वह ग्रंथकार के कहे न होकर पीछेसे किसीने प्रक्षिप्त करदिये हैं। अस्तु क्षणभर के लिये हम मानभी लेवें कि उक्त ग्रंथकारनेही यह कलि वर्ज्य बातें कही हैं तो भी जब कि इसी ग्रंथ (अ. २५ श्लो. ५२-५३) में वानप्रस्थाश्रम और सन्यास आश्रम का लेना कहा है। एवं आगे श्राद्ध विधान में—

" यथा चारं प्रदेयाथ मधुमांसा दिभिस्तथा "

(बृ. नारदिय पु. २६·६०)

अर्थात " आचारके अनुकूल मधु व मांससे * युक्त और भी वस्तु देनी चाहिये " ऐसा कहा है और ऊपरके कलिवर्ज्य के नंबर ७ में वानप्रस्थाश्रम, नं. २ में सन्यासाश्रम और नं. ६ में श्राद्धमें मांसको वर्ज्य लिखा है। तब यह परस्पर विरुद्ध वचन कैसे कहे जा सकते हैं।

दूसरे बात यह कि इसमें लिखा हुआ युगपरिमाणभी कमलाकरादि के कहे युग मानके विरुद्ध है। इस में लिखा है कि—

कृतं त्रेता द्वापरंच कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥
दिव्यैर्द्वादशभिर्ज्ञेयं वत्सरैतच्च सत्तमाः ॥

(बृ. ना. पु. ३८४)

अर्थात कृत, त्रेता, द्वापर व कलि यह चार युग दिव्य बारह वर्षमें पूर्ण होते हैं। यानी हजार गुणाकरनेपर कहे हुये दिव्य परिमाणसे बारह हजार सौर वर्षमें चातुर्युगका परिमाण इसमें कहा है। तब जब ४३ लाख २० हजार वर्ष की युग कल्पनाही शुरू नहीं हुई थी और न चार लाख बत्तीस हजारका कलियुग मानते थे, तब उक्त कलि वर्ज्य बातें कहांसे कह सकते थे।

वस्तुतः एक तो बृहन्नारदीय पुराण ही अष्टादश पुराणोंमें नहीं है। सातवें आठवें शतकमें सांप्रदायिक पंडितोंका बनाया हुआ है। उसमें भी कमलाकरके कहे हुए कलि वर्ज्य श्लोक नहीं है। तब देखना है कि ये श्लोक कब व किसने

---

* मास सेवनका स्मृति ग्रथोंमें निषेद किया गया है सो चारों युगोंमेंही मास सेवन वर्ज्य है आगे बतावेंगे.

प्रक्षिप्त किये है ? क्यों कि निर्णयसिंधुके इधरके जितने ग्रंथ है, उन (पुरुषार्थ चिंतामणि, धर्मसिंधु, धर्मप्रवृत्ती आदि) में जैसे ये श्लोक पाये जाते हैं, वैसेही इनके समकालिक नील कंठके मयूख ग्रंथोंमें व इनके पूर्वके हेमाद्रि पृथ्वी चंद्रोदय व माधवादिक के ग्रंथोंमें कहे नहीं है। इससे सिद्ध हो सकता है कि उक्त श्लोक कमलाकरनेही कल्पित किये हैं।

कलिवर्ज्य प्रकरण स्मृति बाह्य है।

१६. बाकी कलिवर्ज्य प्रकरणमें और जो बातें कही है। वह भी मनुस्मृति के भाष्यकार गोविंदराज, धरणीधर, मेधातिथि, सर्वज्ञनारायण, कुल्लुक, राघवानंद, नंदन व रामचंद्र, तथा याज्ञवल्क्यस्मृतिके मिताक्षरा टीकाकार विज्ञानेश्वर आदिकी यानी दसवें शतकके पहिलेके पंडितोंकी कही नहीं है। सिर्फ शके १०७२ के समयमें माधवाचार्यने पराशर स्मृतिकी जो पराशर माधव नामक की टीका की है उसमें और बातें कही हैं। किंतु उसमेंभी उपरोक्त बृहन्नारदीय पुराणके नामसे कमलाकरके कहे हुये श्लोक नहीं है।

१७. इससे स्तंभ २० में कहा हुआ हमारा कथन और भी पुष्ट होता है। क्यों कि उस समय वे श्लोक बने हुये रहते तो माधवाचार्य जरूर उनकोभी लिख देते या और कहीं मिलते, अतः वही कथन सत्य है, कि वह श्लोक कमलाकरकेही कहे हुये हैं। किंतु दूसरी बात यह भी पाई जाती है कि श्रुति, स्मृति, पुराण और वाल्मीक रामायण व महाभारतादि ग्रंथ तो दूर रहे किंतु नौवें शतक पर्यन्त के टीकाकारोंने भी जो कलिवर्ज्य के प्रमाण नहीं कहे हैं वह माधवाचार्यने कहे हैं वह यह है कि—

(इ)

दीर्घ कालं ब्रह्मचर्यं धारणंच कमंडलोः गोत्रान्मातुः सपिंडात्तु विवाहो गोवधस्तथा ॥ नराऽश्वमेधौ मद्यंच कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः ॥१॥

(उ)

देवराच्च सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते ॥ न यज्ञे गोवधः कार्यः कलौ नच कमंडलुः ॥२॥

(ए)

ऊढाया· पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा ॥ कलौ पंच नकुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुम् ॥३।

१८. उपरोक्त [इ उ ए] प्रमाणोंको माधवाचार्यनें ब्राह्म, क्रतु और वायु पुराणके नामसे कहे हैं। किंतु ब्राह्म और वायु पुराणमें इनका पता नहीं है। और न क्रतुस्मृतिमें है। अतएव इसके संबंधमें विद्यमान पंडित वामन गोविंद इसलामपुरकर पराशर माधव की = टिप्पणीमें लिखते हैं कि;

(इ उ ए)

एतद्वचनमारभ्य ' निवर्तितानि कर्माणि ' (पृ. १३७ पं.) इत्यन्तानि वाक्यानि बहुभिर्निबंधकारैः कलिवर्ज्य प्रकरणत्वेन तत्रतत्र संग्रहितानि दृश्यन्ते। क्वचित् पंचैव कर्माणि वर्ज्यान्युक्तानि क्वापि बहूनीति भेदः।

इससे ज्ञात होता है, कि यदि ये प्राचीन पुराण या स्मृति ग्रंथों में होते, तो टिप्पणीकारने जिस प्रकार उपलब्ध प्रमाणों के ग्रंथोंके नाम अध्याय व श्लोक संख्या लिख दी है, इसी प्रकार इन प्रमाणोंके ग्रंथ आदिके नाम भी लिख देते। किंतु इनका उनको पता न लगनेसे केवल निबंधकारों के ग्रंथोंमें भिन्नता पूर्वक यह (इ उ ए) प्रमाण आए हैं। ऐसा कहकर धर्मप्रमाण ग्रंथोंके आधार रहित बता दिये हैं। और निबंधकारोंने कहीं पांच बातोंको वर्ज्यकहीं है और कहीं अधिक कही है ऐसी इसमें भिन्नता बताई है। तथा आगे माधवाचार्य लिखते हैं कि—

[ओ]

तथा अन्येऽपि धर्मज्ञसमय प्रमाणका संतियथा। " विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् ॥ बालिकाक्षतयोन्योश्च वरेणान्येन संस्कृतिः ॥१॥ कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजातिभिः ॥ आततायि द्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धे न हिंसनम् ॥२॥ द्विजस्याब्धौ तुनौयातु शोधितस्यापि संग्रहः ॥ सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंडलु विधारणम् ॥३॥ महाप्रस्थाय गमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे ॥ सौत्रामण्यामपिसुरा ग्रहणस्य च संग्रहः ॥४॥ अग्निहोत्र हवण्याश्च लेहोलीढापरिग्रहः ॥ वानप्रस्थाश्रमस्यापि प्रवेशोविधिचोदितः ॥५॥ वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष मघसंकोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणांमरणांतिकम् ॥६॥ संसर्गदोषस्तेनाद्येमहा पातकनिष्कृतिः ॥ वरातिथि–पितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया ॥७॥ दत्तौरसेतरेषांतु पुत्रत्वेन-परिग्रहः ॥ सवर्णान्यंगना दुष्टा संसर्गः शोधितैरपि ॥८॥ अयोनौ संग्रहेवृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः ॥ अस्थिसंचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥९॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ षड्भक्त नशनेनान्नहरणं हीनकर्मणः ॥१०॥ शूद्रेषु दास गोपाल कुलमित्रार्द्धसीरिणाम् ॥ भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवाति दूरतः ॥११॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिरीरिता ॥ आपद्वृत्तिद्विजाग्र्याणा मश्वस्तनिकता तथा ॥१२॥ प्रजार्थंतु द्विजा-

---

= यह पराशर माधवकी पुस्तक शाके १८१४ में चौखवा पुस्तकालय काशीमें छपी हुई है। उसके अन्दर उपरोक्त टिप्पणी है।

प्रजाणां प्रजारणि परिग्रहः ॥ ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्नि धमनक्रिया ॥१३॥ बलात्कारादि दुष्टस्त्रीसंग्रहो विधि चोदितः ॥ यतेस्तु सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥ १४ ॥ नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरु चोदिता ॥ ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ॥१५॥ भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादि मरणं तथा ॥ गोतृप्ति मात्रे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया ॥१६॥ पितापुत्र विरोधेतु साक्षिणां दंड कल्पनम् ॥ यत्र सायं गृहत्वं च सूरिभिस्तत्व-तत्परैः ॥ १७ ॥ एतानि लोक गुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः ॥ निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ॥१८॥ समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत् ॥१९॥

१९. बस ये जो कुछ श्लोक लिखे गए हैं, यदि कलिवर्ज्य प्रकरण कहलाता है। इन [३+१९=२२] श्लोकों के सिवा कलियुग के उद्देशसे सनातन धर्माचारको वर्ज्य कहनेवाले और कोई आर्ष एवं धार्मिक ग्रंथमें प्रमाण नहीं है। परंतु ये श्लोकभी कलिकालकी घोर परिस्थितिमें कल्पित किये हुए हैं। और माधवाचार्यने यह श्लोक कहां के यह कहा नहीं है। इतना ही नहीं तो इसके संबंधमें उक्त टिप्पणीकार लिखते हैं कि-

"इमान्युपरितनानि वचनानि कुत्रत्यानीति सम्यङ् नज्ञायते। हेमाद्रौ आदित्य पुराणान्तर्गतानीति। मदनपारिजाते सारसंग्रहस्थानीति। क्वचिद्देवल वचनानीति चोक्तम्। मूलन्तु न कुत्रापि दृश्यते।"

(पराशर माधव आ. कां. १ अ. १ पृ. १३७)

२०. अर्थात् उपरोक्त कलि वर्ज्य के वचन कहां के हैं यह ठीक ठीक मालूम नहीं होता। उसमें भी हेमाद्रि नामक निबंधकार कहते हैं कि आदित्य पुराण ‡ के अन्तरगत के ये प्रमाण हैं। और दूसरे मदन पारिजातक नामक निबंधकार कहते हैं कि यह (कोई पुराणमें के प्रमाण न होकर) सारसंग्रह नामक निबंध ग्रंथमें हैं। और तीसरे कोई निबंधकार कहते हैं यह तो देवल स्मृतिमें लिखे हुए प्रमाण है ऐसा कहते हैं; किंतु जब इसका मूल शोधने लगें तो कोई प्रमाणनीय ग्रंथमें इसका पताही लगता नहीं है।

कलिवर्ज्य प्रकरण की निराधारता।

२१. इस प्रकार टिप्पणीकार के लेखसे निश्चय होगया कि उक्त कलिवर्ज्य बातोंका आधार हमकोही नहीं मिला ऐसी बात नहीं है किंतु अभीतक के

‡ अठारह पुराणोंमें आदित्य पुराण का नाम लिखा नहीं है। और न आदि पुराण का ही इसमें भी आदित्य पुराण कहींभी पाया नहीं जाता एक सूर्य पुराण नामक पुस्तक है। उसमें तो केवल हिन्दी भजन हैं

टीका व टीप्पणी कारोंने जैसे अन्यान्य और वचनोंके प्रमाणके ग्रंथ अध्याय श्लोकादिके अंक लिखे हैं। ऐसे इसके आधारभूत ग्रंथोंमें कहांभी पता लगा नहीं है। इसी निराधारताके कारण भिन्न भिन्न निबंधकारोंने भिन्न भिन्न ग्रंथोंके नाम बताए हैं।

२२. इसी भ्रममें कमलाकर भी पड़ गए है। क्योंकि अपने—

" अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धेमांसं तथा मधु ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥१॥ इति निगमोक्ते। ऐसा कहा है। तथा वरातिथि पितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रियेति कलिवर्ज्येषु हेमाद्रावादि पुराणात्

२३. निर्णयसिंधु (पृष्ठ ४९१) श्राद्धमें हवि प्रकरणमें एक जगह कहा है कि यह पृथ्वी चंद्रोदय नामक निबंध ग्रंथमें का कोई एक प्रमाण है। और दूसरी जगह कहा है कि यह कलिवर्ज्य बातें हेमाद्रि निबंधमें आदि पुराण की कही हैं।

२४. किंतु " कलौनिषिद्धानि " इत्यादिक कुल कलिवर्ज्य प्रकरण की बातें जहां (पृष्ठ ४०२-४०७) कही हैं। वहां आदित्य पुराण के नामसे कही है। सो अब यहां यह भिन्नता है कि क्या ये आदिपुराण के वचन है या आदित्य पुराणके?

२५. वस्तुतः आदित्य पुराण तो हैहि नहीं किंतु आदि पुराण नामक एक उप पुराणके नामसे छपा मिलता है। किंतु उसमेंभी उपरोक्त कलिवर्ज्य के श्लोक मिलते नहीं हैं। और न देवल स्मृतिमें हैं। हां सारसंग्रहमें तथा कई निबंध ग्रंथोंमें माधवाचार्य के ही नामसे कहे हैं; इससे निश्चय होता है कि ऊपर जो माधवाचार्यने कलिवर्ज्यके श्लोक कहे हैं वे माधवाचार्यके ही कल्पित किये हुए हैं। तभी उनके पूर्वके कोईभी ग्रंथमें नहीं होकर उनके बादके ग्रंथोंमें उन (माधवाचार्य) के ही नामसे कहे गए है।

२६. जैसा कि व्यवहार बालंभट्टी टीका (पृष्ठ ५६०) में लिखा है कि

" इदमपि सर्वं युगांतर विषयकम्। कलौ त्वौरस दत्तका वेव औरस समत्वात् पुत्रिकाच " दत्तौ रसे तरेशांतु पुत्रत्वेन परिग्रहः " इति माधवादि सरणात्

(याज्ञ वल्क्यस्मृ. बालंभट्टी टीका)

२७. अर्थात " बारह प्रकारके पुत्रोंका दाय भाग जो मिताक्षरामें लिखा है वह सब युगांतर विषयक है। अब कलियुगमें तो दत्तक व ओरस दोही पुत्र व कन्या दायकी वारस होती है ऐसा माधवाचार्यने स्मृति वचन कहा है।

२८. इससे स्पष्ट होगया कि मुख्य कलि वर्ज्यका आरंभ माधवाचार्य के समयसे यानी शाके १०७२ से हुआ है। क्यों कि उपरोक्त सब श्लोक माधवाचार्य

ने ही कल्पित करके उसको प्रमाणरूप बताने के लिये अन्यान्य पुराणादि के नाम बताए हैं। वस्तुतः ये निराधार हैं।

२९. और आज जो भारत वर्षमें चारों पांचों हायकोर्टोंमें हिन्दू ला के नामसे मिताक्षरा धर्मशास्त्र माना जाता है ऐसा कहते हैं किंतु उसमें जो बारह प्रकारके पुत्र कहे हैं उनको उसीके टीकाकार बालंभट्टने युगांतर विषयक कहकर माधवाचार्यके कल्पित श्लोकों द्वारा कलिमें वर्ज्य कह दिया है।

३०. अब जब मिताक्षराकार विज्ञानेश्वरका काल देखना चाहें तो उनका काल ऐसा निश्चित हो सकता है कि-" शारदामठ (द्वारका) के २८ के श्री मन्नृसिंहाश्रम शंकराचार्य को गुजरातके सर्वजित नामक राजाने जो ताम्रपत्र दिया उसके २० वें विज्ञानेश्वर तीर्थका शक४८३-५५० तक ६७ वर्षके अनुशासन कालमें उक्त * मिताक्षरा (धर्मशास्त्र) टीका बनी है। वहांतक न तो कहीं कलियुगका नाम था और न कलिवर्ज्य प्रकरणका प्रादुर्भाव हुआ था। किंतु जब इस कलियुगका (शाके ६४६ से) आरंभ हुआ तबसे ये कल्पनाएं बढ़ते बढ़ते उनको ग्रंथके रूपमें (शाके १०७२ में) माधवाचार्यने ला दी और बादमें राईका पर्वत कमलाकर भट्टजीने कर दी ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

३१. यदि कहें कि उस ग्रंथमें प्रमाण न होते हुए क्या निबंधकार गलत लिख सकते हैं कि अमुक ग्रंथका यह प्रमाण है?

३२. इसके उत्तरमें हम ही क्या विशेष कह सकते हैं, उक्त पराशर माधव के कलिवर्ज्य बातोंको टिप्पणीकारने ही निर्मूल कह दिया है। इतना ही नहीं तो छह टीका वाली मनुस्मृतिके परिशिष्ट (पृष्ठ १५४७-१५६२) में लिखा है कि—

"हेमाद्रि माधवादिभि र्मनूक्तत्वेन स्वीकृतेषु वचनेषु यानि संप्रत्युप लब्धमुद्रित मनुस्मृति पुस्तकेषु नोपलभ्यन्ते तान्यस्मिन्परिशिष्टे संकलितानि"

३३. अर्थात् "हेमाद्रि, माधव, कमलाकरादि निबंधकारोंने अपने अपने ग्रंथोंमें मनुस्मृति के नामसे जो (२७४) वृद्धमनु के (७४) और बृहन्मनुके (१६) इस तरह ३६४ श्लोकोंको कहे हैं उनकी आज जितनी मुद्रित पुस्तकें हैं, उनमें कहीं पता नहीं लगता" अतएव हम उसे उनके कल्पित कहते हैं।

३४. इसी तरह अन्यान्य स्मृति पुराणादिकों के नामसे जो प्रमाण उन्होंने बनाए हैं, उनमें उन प्रमाणोंका पता नहीं है। उसी प्रकार यह कलिवर्ज्य कहींभी स्मृति पुराणादिकोंमें कहा न होकर भी निबंधकारोंने लिख दिया है।

* संस्कृत चंद्रिका राशिवडे कृत (१८-२-३ पृष्ठ ४-५) में उक्त ताम्रपत्रके आचार्यों के संवत् व नाम लिखे हैं उसके आधारसे शक काल लिखा है।

३५. कलिवर्ज्य प्रकरण को राईका पर्वत इस लिये कहा है कि पहिले तो (कलौ पंचविवर्जयेत्) कलियुग में सिर्फ पांच बात मना कही थी फिर दश होगई बादमें बीस दिखाई दी आगे माधवाचार्यने ४१ बातें कही किंतु कमलाकर ने ५६ कही तो धर्मसिंधुकारने ६० बाते तक कलिमें बिलकुल वंद कर दी।

३६. वाहरे! कलियुग!! तेरी बलिहारी है!!! कहाँ तो श्रुतिके विरुद्ध स्मृति, मनुस्मृतिके विरुद्ध भारतादि पुराणों के वाक्य रद्द समझे जाते थे; किंतु तेरे (कलि) युग में निबंधकारों के कल्पित श्लोकों के विरुद्ध कुल श्रुति, स्मृति, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्र व पुराण ग्रंथ युगांतरीय कह कर रद्द समझे जाते हैं। इतनाही नहीं तो उपरोक्त लेले सरीखे शास्त्रीजी कलिवर्ज्य बातों को नहीं मानेंगे तो राष्ट्रका संहार होकर महाप्रलय की भांति बताकर कलियुग की इतिश्री बताने वालोंको अथवा कलियुगे कहनेको बाध्य कर देते हैं धन्य है?

३७. राईका पर्वत कहनेका दूसरा कारण यह है कि राई गोलमटोल होनेसे निराधारके माफक धक्का लगते ही उसका जैसा [पिष्ट] ढेर बिखर जाता है ऐसा जब ऐतिहासिक रीतिके कालानुक्रमसे देखेंगे तो कलिकल्पना के कल्पित श्लोक उन २ प्रमाणरूप ग्रंथोंमे नहीं पानेसे धर्मशास्त्र के निराधारत्व के धकेसे आपोंआप बिखर गए हे। और जिनको इसमें संदेह हो वे वह प्रमाणरूप ग्रंथमें देख लें ताकि प्रक्षिप्त या कल्पित भाग आपोंआप नजर आजावेगा।

३८. यहांतक अधर्म को धर्म मानने लग गए हैं कि अन्यान्य स्मृतियोंको युगांतरीय कहकर टरका देते हैं किंतु जहां पराशर स्मृतिके आरंभके [श्लोक १–३५] व दूसरे अध्यायके [श्लोक २] अन्दर सिर्फ कलियुगके संबंध में कुछ लिखा है। किंतु उसमें उपरोक्त कलि वर्ज्य बातें कही नहीं हैं। फिर यह कलि वर्ज्य बातें किस धर्म शास्त्रके आधारसे धर्म कही जा सकती हे। और वहां तो–

" कृते तु मानवा धर्मा स्त्रेतायां गौतमा स्मृताः ॥
द्वापरे शंख लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥
[पराशर स्मृति अ. १ श्लो. २४]

३९. अर्थात कृतयुगमें मनुस्मृति, त्रेतामें गौतमस्मृति, द्वापरमें शंख लिखितस्मृति और कलियुगमें पराशर स्मृतिको मानना कहा है किंतु उस ही स्मृति में आगे जहां ऐसा कहा है कि—

" नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबेच पतिते पतौ ॥
पंचस्वापत्सुनारीणां पति रन्यो विधियते ॥
[प. स्मृ. अ. ४ श्लो. ३०]

४०. अर्थात् जिस स्त्री का पति [१] देशांतर में चला जावे, [२] मर जाय, [३] संन्यासी हो जाय, [४] नपुंसक हो जाय, अथवा [५] पतित हो जावे तो इन पांच प्रकारकी आपत्तियों में स्त्रियोंका दूसरा पति हो सकता है । " .

४१. किंतु इस श्लोक की टीका करते हुए माधवाचार्य लिखते हैं कि—

' अयं च पुनरुद्वाहो युगान्तर विषयः । तथा चादित्य पुराणम् । " ऊढायाः पुनरुद्वाहः " इति '

४२. अर्थात् " यह पुनर्विवाह का धर्मोपदेश कलियुग छोडकर अन्य युगोंके समय का है, क्यों कि पुनर्विवाह आदि ५ बातें आदित्य पुराण में मना की गई हैं । " ऐसी ' रेख में मेख ' ठोक दी है ।

४३ किंतु आपने इस श्लोकको पहिले (अ. १ श्लो. ३४ की टीका पृष्ठ १३४ में) वायु पुराण के नामसे कहाथा। उसी को यहां आदित्य पुराणका कह दिया है। अब दोनों बातों में से सत्य कौनसी बात माने । इसमें सच तो यह है कि ये बातें वस्तुतः दोनों जगह भी नहीं है ।

४४. खैर वर्तमान के कई पंडित उनसे भी बढ़कर ऐसा कहते हैं कि व्याकरण की रीतिसे " पत्यौ " शब्द ही पतिके अर्थ में होता है । और यहां है " पतौ " इस लिये यहां (नञ पर्युदास समास से) " अप तौ " मानकर उसका पति भिन्न पति सदृश अर्थ से वाग्दान का अर्थ करते हैं । किंतु गृह्यसूत्र व स्मृति ग्रंथोंमें वाग्दान तो दूर रहा लेकिन " पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् " " अच्छे मुहूर्त के दिन कुमारीका हाथ को ग्रहण कर लेवे " ऐसा कहा है वहां कन्याके पिताने कन्याका दान कर देना ऐसा कहा नहीं है ! तब वाग्दान का अर्थ उस समय कैसा कह सकते है ।

४५. उस समय " पतौ " शब्द भी पतिके ही अर्थ में कहा जाता था— जैसा कि अथर्वण वेद (संहिता २·१८·३) में कहा है कि—

" नो अस्मिन् रमसे पतौ " इस मंत्र के सायण भाष्यमें माधवाचार्य ही कहते है कि—" मदीये पतौ पत्यौ नो रमसे · पताविति " षष्ठी युक्त छंदसिवा " [पाणिनि सूत्र १·४·९] इति षष्ठी योगाभावेऽपि छांदसिघि संज्ञा " ऐसा पतौ शब्दसे पतिकादी अर्थ लिया है । अन्यथा आधुनिक अर्थके मुआफिक वाग्दान वालेसे रमण कैसे कर सकती है । इससे सिद्ध होता है कि पुनर्विवाह विधि पराशर स्मृति संमत है ।

४६. यदि कहें कि एक स्मृति में लिखा है तो क्या हुआ किंतु ऐसा नहीं है इसके संबंध में स्वयं माधवाचार्यने ही [प. स्मृ. आ. का. अ. २ पृ. ९१ में] वही श्लोक कहा है कि—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते तथा ॥'''॥१॥
(नारद स्मृ. १२.९७)

किंतु यहां "पतौ" के स्थानमें "तथा" कहा है। और आगे स्पष्ट कह दिया है कि—

"ऊढायाः पुनरुद्वाहो यम, शातातपाभ्यां दर्शितः ।
कात्यायनो मनुरपि ॥"

विवाही हुई का पुनर्विवाह यमस्मृति, शातातपस्मृति और मनुस्मृति में कहाहुआ है" इससे सिद्ध होता है कि यह अनेक स्मृति ग्रंथोंसे सम्मत है।

४७. यदि कहें कि 'कुमार्याः पाणिगृह्णीयात्' उक्त पारस्कर गृह्य सूत्रोंमें तो कुमारीका पाणिग्रहण कहा है। और कोश ग्रंथोंमें (कन्या नार्यां कुमार्यां चेति हेममेदिनीभ्यां प्रथम वयस्क कन्यायाः नामन्युक्तत्वात्) प्रथम वयस्क नारीको ही कन्या व कुमारी कहा है तब यौवन अवस्थामें पतिके नष्ट होनेपर उसे कुमारी कैसे कह सकते हैं? फिर उसका कुमारीत्व गए बाद गृह्यसूत्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण कैसे हो सकेगा।

४८. इस शंकाके समाधानमें उक्त सूत्रके भाष्यकारोंने जो अर्थ किया है वही पर्याप्त समझ कर हम लिखते हैं। इसके पांच भाष्यकारोंमेंसे पहिले कर्काचार्य और दूसरे जयरामाचार्य ने लिखा है कि—

"कुमारी ग्रहणं विंशति प्रसूता व्युदासार्थम् ॥
स्मर्यतेहि "विंशति प्रसूतायाः पुनर्विवाह" ॥

ऐसा ही तीसरे भाष्यकार हरिहराचार्यने लिखा है कि—

"कुमार्याः अनन्य पूर्विकायाः कन्यायाः ।'''। अनेन विंशति प्रसूतायाः स्मृत्यन्तर विहितस्य पुनर्विवाहस्यानियमः । इच्छा चेत्करोति। पाणिं हस्तं स्वगृह्योक्त विधिना गृह्णीयात् ।"

४९. इन चारों भाष्यकारोंने स्मृति (धर्मशास्त्र) ग्रंथोंके आधारसे कहा है कि बीस संतान हुए तक स्त्रीका पुनर्विवाह हो सकता है। क्यों कि पतिके नष्टादि हो जानेपर बीस संतान हुए तक इसकी "कुमारी" संज्ञा रहती है

किन्तु इसकी इच्छा हो तो यह २०-संतान हुए बाद भी वृद्ध अवस्थामें वृद्ध पतिके साथ पुनर्विवाह कर सकती है। यहां " अनन्यपूर्वा " का अर्थ " नष्ट मृत आदि उपरोक्त पांच कारणोंसे पहिले पतिका हक्क उसके ऊपर रहा न हो ऐसा कहा है यानी यह अनन्यपूर्वा कहाती है "§

५०. किंतु उपरोक्त सूत्रके पांचवें भाष्यकार गदाधराचार्य हुए। आपको कोई भी धर्म शास्त्र ग्रंथोंके स्वेच्छानुकुल प्रमाण नहीं मिलनेसे भोज राजाका बनाया हुआ शाके ९६४ समयका राज मार्तंड ÷ ग्रंथ व ज्योतिनिबंधादि ज्योतिषके और स्मृत्यन्तर व सर्व संग्रहादि आधुनिक ग्रंथोंके ही वचनोंको धर्म प्रमाण मानकर आपने कन्या के विवाहका काल ६ वर्षसे १० वर्षके अन्दर ही कर देना कहा है। [पृष्ठ १०० में देखो]

८।९।१० वर्षकी गौरी, रोहिणी व कन्या संज्ञावाली होकर ग्यारहवें वर्षसे इसकी रजस्वला संज्ञा कह दी है। ऐसी कन्या को देखते ही उसके माता, पिता व भ्राता तीनों नरकमें चले जाते हैं इसलिये आठ वर्षकी कन्याका ही विवाह कर दे।

५१. पारस्कर गृ. सूत्रके (१'८'२१) विवाह प्रयोग के अंत्यमें ' नमिथु नमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः' अर्थात् विवाह हुएबाद १२ दिन या ६ दिन या कमसेकम ३ दिनतक मैथुन नहीं करे " ऐसा लिखा है तब यदि ८ से १० वर्षतक की कन्याका विवाह कहा होता, तो फिर मैथुनको वर्ज्य करनेकी क्या आवश्यकता थी। यदि लिखते भी तो रजप्राप्ति हुए तक ही वर्ज्य करते, किंतु जब विवाह ही रजोवती हुए बाद होता था तभी १२ से ३ दिनही वर्ज्य लिखेहैं।

अब विचार करने का स्थल है कि जहां गृह्यसूत्र के अनुसार ऊपरके कलम में कुच पुष्प संभव के बाद कन्याका विवाह कहा है उसी के विरुद्ध नीचे के श्लोकमें क्या आठ वर्षकी कन्याका विवाह काल वेही ग्रंथकार कह सकते हैं? कदापि नहीं। फिर दो बातें कैसे हो सकती हैं। परंतु गदाधरके समय यह श्लोक संवर्त स्मृतिमें नहीं मिलाए गए थे; क्योंकि गदाधरने इन्हीं श्लोकों को कारिकाके नामसे लिखा है। और कुछ मनुस्मृति के नामसे किंतु उन दोनोंमें

§ हमारी बनाई 'पुनर्विवाह मीमांसा' नामक पुस्तक देखो उसमें बहुत से प्रमाण वेदोंके भी दिये हैं।

÷ भोज राजाने शाके ९६२ में राजमृगाक नामक ज्योतिषका ग्रंथ बनाया ऐसा (भारतीय ज्योतिषास पृ. २६८ में) लिखा है। इस लिये उसी कालमें राजमार्तंड हुआ ऐसा उसका काल लिखा है।

उक्त श्लोक नहीं है। इतनाही नहीं तो अनग्निकां कन्यां उद्वहेत् ऐसा वहां लिखा है। उसका अर्थ अग्नि अवस्था भुक्त हुए बाद (कुचौ दृष्ट्वातु पावकः) यानें कुच दर्शनके हुएपर (पति स्तुरी यस्ते मनुष्यजाः) मनुष्य पति हो सकता है। पहिले पति नहीं हो सकता।

५२. इससे स्पष्ट होता है कि अष्ट वर्षा भवेद्गौरीवाले श्लोक प्रक्षिप्त है। और येही श्लोक पराशरस्मृति व वृद्ध पराशरमें भी पाए जाते है किंतु वहां यह श्लोक होते तो फिर उक्त गदाधर भाष्यमें कारिका का नाम नहीं लिखकर उक्त स्मृति ग्रंथोंका नाम अवश्य लिखते।

५३. किंतु इसके ऊपर प्रश्न हो सकता है कि ऐसे कुछ श्लोक मनुस्मृतिमें भी पाए जाते हैं। और भी अनेक जगह ' त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ' लिखा पाया जाता है तब ये सबही प्रमाण कलिकाल कल्पित एवं प्रक्षिप्त कैसे हो सकते है ?

५४. इस प्रश्नके उत्तर में हमें प्राचीन इतिहास को देखना चाहिये कि ऐसा क्या कोई भारत पुराणादिमें प्रमाण है कि रजस्वला हुए बाद कन्याका विवाह करनेवाला पिता नरक में गया हो ? यदि ऐसा प्रमाण नहीं मिला तो फिर यह मिलना चाहिये कि रजस्वला हुए बाद कन्याका विवाह कर देनेवाला पिता स्वर्गमें गया हो।

५५. इन दोनों बातोंको सामने रख कर जब हम भारतको देखते है तो पता चलता है कि रजस्वलाही क्या किंतु चार पुरुषोंके साथ चार बार विवाह की हुई कन्याका पांचवें विवाह के समय स्वयंवर किया गया और उस कन्यामें उत्पन्न हुए दोहित्रोंके पुण्यसे स्वर्गसे भ्रष्ट हुए ययाति राजाको फिरसे स्वर्ग प्राप्त हो गया ऐसा एकही नहीं अनेक उदाहरण मिलते है। परंतु यह प्रकरण बहुत गहरा होजानेके कारण अब हम सारांशरूप श्लोकोंद्वारा उक्त इतिहास को स्पष्ट करके बताते हैं कि आठ वर्षकी कन्याका विवाह करनेवाला स्वर्गमें गया कि संतान हुए बाद भी चार बार विवाह कर देनेवाला स्वर्गमें गया यह सब पाठकों को मालूम हो जायगा।

विवाह की पुरानी आदर्शता।

५६. महाभारत उद्योग पर्व (अध्याय १०६-१२१) में करीब १५ अध्याय में एक चरित्र लिखा है कि उसका सारांश ऐसा है कि—ययाति नामक सोम वंशीय राजाके यदु, तुर्वसु, द्रुह्य, अनु व पूरु नामक पुत्र थे और माधवी नामकी एक कन्या थी। इस माधवीका पहिला विवाह अयोध्याके हर्यस्व नामके राजाके साथ हुआ वहां इसको वडा दानशूर वसुमना नामक पुत्र हुआ, दुसरेसे फिर इसका विवाह काशीके दिवोदास नामक राजाके साथ हुआ वहांभी इसे वडा शूरवीर प्रतर्दन नामक पुत्र हुआ, फिर तीसरेसे इसका उशीनर देशके भोजराजा के साथ विवाह हुआ वहां भी इसे वडा सत्य वचनी शिबि नामक पुत्र हुआ, फिर चौथेसे कौशिक गोत्रीय ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके साथ विवाह हुआ वहां भी इसे अष्टक नामक पुत्र हुआ यह भी वडे वडे यज्ञोंका करनेवाला वडा यज्वा था।

५७. इस प्रकार चार वार विवाह हुए और इसको चार पुत्र हो गए वादमें-

" सतुराजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयं वरम् ॥१॥
गृहीत माल्य दामांतां रथमारोप्य माधवीम् ॥
पूरुर्यदुश्च भगिनी माश्रमे पर्यधावताम् ॥ २ ॥

[भारत उद्योग प. अ. १२०]

अर्थात " ययाति राजाने फिर इसका पांचवे से (स्वयंवर) विवाह करना चाहा ॥१॥ तब वर मालाको लिये इस माधवी को रथमें बैठाकर पूरु व यदु नामक इसके भाई बहुतसे ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमे किंतु तब इसे योग्य वयस्क वर नहीं मिलनेसे आगे यह वनमें तपश्चर्या करने चली गई।

५८. जब ययाति का देहावसान हुआ तब चार वार किये हुए कन्या दानके प्रभावसे वह स्वर्ग में चले गए किंतु कई वर्षोंके वाद जब ययाति के हाथ से कुछ यश निंदारूप अपराध हो गया उस पापके प्रभावसे इस (ययाति) का स्वर्गसे पतन हो गया। यह बात माधवीके चारों पुत्रोंको जब मालूम हुई तब चारोंने यज्ञ करके उसका पुण्य अपने मातामह (नाना) को दिया तब-

" चतुर्षु राजवंशेषु संभूताः कुलवर्द्धनाः ॥
मातामहं महा प्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते॥१७॥

(उद्योग प. अ. १२२)

अर्थात " चारों राजवंशोंमें उत्पन्न हुए वंशोको वढानेवाले चार दौहित्रोंने अपने मातामह [ययाति] को फिरसे स्वर्ग में पहुंचा दिया "

५९. इसी तरह दूसरी विनताके पुत्र दीर्घतमाकी कथा है। तीसरी कथा नल दमयन्ती की है जब नलका पता नहीं लगा तब दमयन्ती के पिताने अपनी दमयन्ती कुमारीका दूसरेसे स्वयंवर किया तब देव योगसे पुनः नलही वरागया।

६०. इत्यादि जब अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ऊपर (कलम ५० में) लिखे मुताबिक २० संतान पर्यंत पतिके नष्टादि हो जानेपर उसकी 'कुमारी' 'कन्या' संज्ञा होकर योग्य वयस्क वरके साथ विवाह कर देनेमें पिताको पुण्य होता था। और दौहित्रों के पुण्यसे मातामह को स्वर्ग की प्राप्ती हुई।

६१. अब विचार करनेकी बात है कि त्रयस्ते नरकं यांतिदृष्ट्वाकन्यां-रजस्वलाम् इस पूर्वोक्त कथन का ठिकाना क्या रहा। और उस समय वंश-वृद्धोंके ऊपर कितना खयाल था। इससे यह सिध्द होता है कि रजस्वला होकर कुच के प्रादुर्भाव के पहिले कन्याका विवाह करनेवाले सोम, गंधर्व, अग्निकी अवस्था आने के पूर्वही मनुष्यपति कर देनेमें श्रुति स्मृति संमत विधान के विपरीत काम करनेसे धर्मशास्त्रोल्लंघन दोष के भागी होकर वंश च्छेदनके कारणीभूत होनेसे नरकगामी होते हैं। क्योंकि "अष्ट वर्षाभवेद्गोरी" की अज्ञान अवस्थामें लाजा होमके मंत्रोंको वह कैसे पढ़ सकती है। और उस के पढ़े बिना विवाह प्रयोग पूर्ण कैसे हो सकता है।

मुख्य कन्या-दान है ? या पाणिग्रहण !!

६२. यदि कहें कि एकबार दान दी हुई वस्तु जैसे दूसरी बार दान नहीं दी जाती वैसे ही पति के नष्ट या मृतादि होनेपर उसको पुनः दूसरे को दान कैसे दे सकते हैं। क्यों कि यह दूसरेकी स्त्री है। और इससे उसके साथ विवाह करनेवाले को परदाराभिमर्षनरूप दोष क्यों न लगता।

६३. इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले इस बात को देखना चाहिये कि कन्याका दान कुछ गौदान या अश्वादि पशु दानके समान या निर्जीव वस्तु के दान देनेके समान नहीं है। किंतु यह मनुष्य है उसेभी आत्मा है। इतनाही नहीं मनुष्य के बराबर सब काम कर सकती है। इसी लिये गृह्य सूत्रोंमें कहीं भी कन्याका दान लिखा नहीं है। ¶ वास्ते कन्या स्वयं अपने योग्य वरको पसंद कर

¶ अधिक खुलासा हमारे किए 'आदर्श विवाह' नामक पुस्तकमें देखें।

लेती है और वर वधू को पसंद कर लेता है तब जब पाणि ग्रहणका विधान लिखा है वहां कहा है कि

" पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् "

(पारस्कर गृ. सू. १'४'५)

६४. अर्थात " विवाहोक्त नक्षत्रयुक्त शुभ मुहुर्त में कुमारी का पाणि ग्रहण कर लेवे " यानी यहां कुछ ऐसा नहीं लिखा है कि ' पिता अपनी कन्या को दे दे वे १.इससे सिर्फ पिताका यह कर्तव्य है कि उसके पसंद किये योग्य वर के आनेपर उसकी मधुपर्क विधानसे पूजा सत्कार करके आसनपर बैठा देवे। उस समय वधूको वर वस्त्र परिधान कराता है। तब उनको परस्पर समीक्षण रूप विवाह व पाणि ग्रहण हुए बाद यानी हाथ पकडे बाद-

" पित्रा प्रत्तामादाय गृहित्वा निष्क्रामति "

(पा. गृ. सू. १'४'१५)

६५. अर्थात पिताकी आज्ञा ली हुई (वधू) का हाथ पकडे हुए होम करनेके स्थलमें वर आता है। इस मंत्रका अर्थ कर्काचार्य भी इस प्रकार ही कहते है कि;-

" पित्रा प्रत्तामादाय " यदपि मनसा इत्यनेन मंत्रेण। आदाय गृहीत्वेति चोभयं न वक्तव्यम्। उच्यतेच किमर्थं तत्। अप्रति ग्रहस्यापि प्रतिग्रह विधिनादानं यथा स्यादिति

अर्थात् इस मंत्र में पिताकी आज्ञा लेकर व ग्रहण कर ऐसा यहां प्रतिग्रह [लेने] के संबंध में एकार्थकी दर्शक दोनों बातें क्या नहीं बोलना इसका क्या मतलब है सो कहते है कि यहां दानका प्रतिग्रह (स्वीकार) विधान नहीं होते हुए भी जब पिताकी कन्या आज्ञा लेलेती है। तब उसकी संमति हो जानेसे घरने दान लिया ऐसा भावार्थ उपरोक्त (आदाय व गृहीत्वा)इन दोनों शब्दोंसे निकला आता है। इस लिये दोनों को बोलना चाहिये " ऐसा कहा है।

६६. इस प्रकार कर्काचार्यनें अपने भाष्यमें विवाहमें पिताके अनुमोदन-कोही कन्यादान कहा है। किंतु दूसरे भाष्यकार जयराम इस विषयमें कहते है कि अप्रति ग्रहश्च क्षत्रियादिः क्षत्रियादिकों को दान लेनेका अधिकार नहीं इस-लिये स्वयं पाणिग्रहण करके ले आवे " ऐसा इसका अर्थ है। ऐसा दोनों भाष्यकारों के मतसे प्रत्तां का अर्थ आज्ञप्ताम् होता है। परंतु तीसरे भाष्यकार हरिहर कहते हैं कि प्रत्तां संकल्पा दत्तामादाय प्रति ग्रहविधिना प्रतिगृह्य गृहीत्वा हस्ते धृत्वा निष्क्रामति अर्थात् पिताके द्वारा संकल्प करके दी हुई को लेकर हाथ पकडे जाता है " इसी तरह विश्वनाथ व गदाधरभी कहते हैं।

६७. इससे चतुरपाठकों को मालूम हो गया होगा कि मुख्य सूत्र ग्रंथमें तो कन्यादान विधि लिखी नहीं है किंतु पीछे के तीन भाष्यकारोंने खींचकर 'प्रत्तां' शब्दसे कन्या दानका अर्थ निकाला है। तथापि अब हमें यह देखना चाहिये कि भारतादिकों में जितने विवाह लिखे हैं। वह सब स्वयंवर रूप होकर पिताके अनुपस्थिति व सम्मति विना ही ८ प्रकारके विवाह लिखे हैं। तब ब्राह्मविवाहमें कन्यादान देना यहभी एक प्रकारांतर मात्र है मुख्य नहीं। तब एक वार दान दी हुई वस्तुको फिर दूसरेको दान कैसा देवें यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता।

६८. तथा जब पति नष्ट होगया तब क्या कन्या की आयुष्य सब नष्ट कर दें? नहीं। यहभी उसके इच्छापर निर्भर है। इत्यादि वातोंका स्पष्टी करण होने के लिये दो चार प्राचीन इतिहासों को बताते हैं।

[१] जैसे सुलभा नामक विदुषी स्त्री को महात्मा जनक राजाने कहा कि-

यदि जीवति तेभर्ता प्रोषितोऽप्यथवाक्कचित् ॥
अगम्या परभार्येति चतुर्थो धर्म संकरः ॥६२॥
(भारत शांतिपर्व अ. ३२० पृ. २२३)

अर्थात्-"धर्मशास्त्र के विरुद्ध चौथा यह कारण है कि कहीं विदेशमें गयाहुआ तेरा पति जीवीत होवे तो उसके जीते जी तू उसकी भार्या होनेसे विवाह करनेमें तू परभार्या अगम्य होती है" यानी उसके मरने पर विवाही जा सकती थी किंतु यहां वैसा नहीं है।" ऐसा इसका भावार्थ है।

दूसरे स्मृति ग्रंथमें भी ऐसा ही कहा है कि—

"गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वांयवीयसीम्"
(गौतम स्मृति ४.१ पृ १०६)

"अस्पष्ट मैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत"
(वसिष्ठ स्मृ. ८.१ पृ. १२९)

अर्थात् गौतम स्मृतिमें कहा है कि जो पहिले कोईके अधिकारमें न हो *ऐसी अपने योग्य भार्याको प्राप्त कर लेना चाहिये। तथा वसिष्ठ स्मृतिमें कहा* है कि जो किसीके जोडेमें युक्त न हो और अपने अनुरूप व अवस्थामें छोटी हो ऐसी भार्याको प्राप्त कर लें। जब कि इस कथनमें अनुद्वाहितांवा अविवाहितां तथा पित्रा न कस्मैचिद्दत्तां या अदत्ताम् आदि कुछ नहीं कह कर अनन्यपूर्वाम्। अस्पष्टमैथुनाम्। कहनेसे उपरोक्त हमारा कहा अर्थ वरावर है।

६९. क्योंकि इसी स्मृतिमें आगे ऐसाभी कहा है कि— " ऋतौ प्रजां विन्दामह इति कामं मा विजानीयोलभवाम इति यथेच्छाया आप्रसवका-लात्पुरुषेण सह मैथुन भावेन संभवात् इति ता अब्रुवन् "

(वसिष्ठ स्मृ. अ. ५)

अर्थात " ऋतु में संतानको प्राप्त करें ऐसी काम वासनासे हमारी इच्छा पूर्ण न हो इस लिये जहांतक हमें संतान होती रहे वहांतक हम पुरुषके जोडेसे रहें " इस प्रकार स्त्रियोंने इंद्रसे वर मांगा है पुराण ग्रंथोंमें भी " ग्रश्वत्काम वरेणां हस्तुरीयं जगृहास्त्रियः " (भा. पु. ६-९-९) हर हमेशा काम वासना बनी रहे इस वरसे इंद्रकी ब्रह्महत्या के चतुर्थांश को स्त्रियोंने लिया " इस कथन से वही बात पुष्ट होती है कि जहांतक उसे संतान हुआ करती है वहांतक भी यदि पति नष्ट हो जाय तो पुनः यह विवाह कर सकती है। और चाहे वह वृद्ध हो जाय तो भी विवाहकी अभिलाषा करनेवाली कुमारी याने कन्या कहाती है।

भारत में भी ऐसा ही लिखा है। जैसा की-अष्टावक्र और स्त्री के संभाषण में-अष्टावक्र बोले की " परदारा नहं भद्रे नगच्छेयं कथंचन " ॥८९॥ स्त्र्युवाच-" स्वतंत्रऽस्मीत्युवाचर्पि न धर्म छल मस्ति मे ॥११३॥ यदि वा दोष जातं त्वं परदारेषु पश्यसि ॥ आत्मानं स्पर्ष य।म्यद्य पाणिं गृहीष्व मेद्विज ॥११८॥ न दोषो भविता चैव सत्ये नैतद्ब्रवीम्यहम्-॥ स्वतंत्रमां विजानीहि यो धर्मः सोऽस्तु वैमयि ॥११९॥ कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यै वास्मिन संशयः ॥ पत्नीं कुरुष्व मां विप्र श्रद्धां विजहि मा मम ॥१२०॥ अष्टावक्र बोले कि " किं त्वस्याः परमं रूपं जीर्णं मासी त्कथं पुनः ॥ कन्या रूपमिहा द्यैवं किमिवा त्रोत्तरं भवेत ॥१२५॥ स्थविराणा मापि स्त्रीणां वाधते मैथुन ज्वरः ॥५॥

[अनुशासन पर्व अ. २१-२२]

अर्थात् " पराएकी स्त्रीसे मे समागम नहीं करना चाहता " इस अष्टावक्र के प्रश्नके उत्तर में वह स्त्री बोली कि मैं स्वतंत्र हूं, यानी पतिके अधिकार आदिमें नहीं हूं; इसलिये इसमें धर्मका छल नही है ॥११३॥ इसमें भी आप मुझे पराए की स्त्री समझें तो मै [मम व्रते ते हृदयं दधामि] वैवाहिक विधिसे आपको स्पर्श करती हूं अतः आप मेरा पाणि ग्रहण कर लेवें। मैं सत्य कहती हूं कि इसमें [आपकी मै स्त्री हो जानेसे] दोष नहीं होगा। क्यों कि मैं पतिके

परने में स्वतंत्र हूं वास्ते आप मेरे साथ धर्माचरण करें ॥११९॥ जब कि ब्रह्मचर्य से रही हुई कुमारी हूं। तब मेरी कन्या संज्ञा है इसलिये मुझे यज्ञ संयोगमें युक्त होनेवाली पत्नी कर लें; किंतु मेरी आशाको मारना नहीं चाहिये ॥१२२॥ तब अष्टावक्र बोले कि जब कि यह अत्यंत रूपवती थी और अब वृद्ध होगई है तोभी कहती है मैं कन्या ही हूं यानी विवाह की इच्छा करनेवाली हूं तो इसको अब मुझे क्या उत्तर देना चाहिये ॥१२५॥ किंतु यह आश्चर्य है कि वृद्धस्त्रियोंको भी मैथुन ज्वर [काम वासना] बाधा करता है।

७०. इस चरित्र में वृद्ध अवस्थामें भी विवाह की इच्छा करनेवाली स्त्रीको कुमारी यानी कन्या संज्ञा कही है। यद्यपि अष्टावक्रकी इच्छा न होनेसे उसके साथ विवाह नहीं किया किंतु धर्मशास्त्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण रूप विवाह में दोष है ऐसा कहीं कहा नहीं है। इससे यह भी प्रमेय निकलते हैं कि "पतिके अभावमें योग्य वरको वरनेमें स्त्रीको स्वातंत्र्य" और "पाणिग्रहण यानी विवाह करनेपर परदारा गमन का दोष नहीं रहता" अतएव वृद्धा स्त्री भी वृद्ध पति को वर सकती है" इत्यादि उस समय की बातें स्पष्ट होती है।

क्षणभर भी अनाश्रमी मत रहो।

७१. स्मृति ग्रंथोंमें इस बातपर बहुत जोर दिया है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष किसीकोभी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिये। यानी बालपनमें विद्याभ्यास करनेके लिए ब्रह्मचर्याश्रम, दूसरा गृहस्थाश्र, तीसरा वानप्रस्थाश्रम और चौथा सन्यासाश्रम है। इन चार आश्रमोंसे कोई एक आश्रममें रहे। जैसा स्मृति ग्रंथोंमें कहा है कि—

"यो गृहाश्रम मास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥ न यतिर्न वनस्थश्च ससर्वाश्रम वर्जितः॥९॥ अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेक मपि द्विजः॥ आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हिसः ॥१०॥ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा ॥ नासौ फल मवाप्नोति कुर्वाणोप्याश्रमाच्युतः॥११॥ त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रतिलोम्यं न विद्यते ॥ प्रतिलोम्येन यो याति न तस्मा त्पाप कृत्तमः ॥१२॥" (दक्ष स्मृति अध्याय १ पृष्ठ ९८)

अर्थात् जो गृहस्थी होकर फिरसे ब्रह्मचर्यको धारण करे और न सन्यास लेवे व वनमें निवास करे तो वह संपूर्ण आश्रमोंसे रहित अनाश्रमी हो जाता है। अतः द्विजको "एक क्षणभर भी आश्रम रहित नहीं रहना चाहिये। यदि जो

कोई आश्रम के विना रहता है वह दोषका भागी होता है। क्यों कि आश्रम से भ्रष्ट हुए पुरुष को जप, होम, दान, वेदपाठ सदा करते रहनेपर भी उसका फल नहीं मिलता। इसलिये आश्रमसे च्युत नहीं होना चाहिये। इस में भी ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम व उसके बाद वानप्रस्थाश्रम इस प्रकार तीनों आश्रमों को अनुक्रम (अनुलोम) से स्वीकार करे। यदि कोई प्रतिलोम यानी वानप्रस्थाश्रम के बाद गृहस्थ व ब्रह्मचर्याश्रम स्वीकारे तो उसके सदृश कोई महा पापी नहीं है।" क्यों कि यह प्रतिलोम हो जाता है।

७२. इसलिये विद्या पढेबाद विवाहक्रिया कि वह गृहस्थाश्रमी होजाता है। क्योंकि स्त्रीके संग्रह के बाद अग्नि होत्र कर सकता है। अग्नि का आधान (आरंभ)

"आवसथ्याधानं दारकाले" (पा गृ. सू १२१)

विवाह की अग्निसे कहा है। आगे सब धार्मिक कार्य स्त्री को साथ लेकर किये जाते हैं। और तो क्या जो गौतमने ४८ प्रकारके गृह्यसंस्कार कहे हैं, वे सब सपत्नीक यजमान कर सकता है। श्रुतियोंमें तो यहांतक कहा है कि--

"यावज्जीवं अग्निहोत्रं जुहुयात्"

अर्थात् "जीते जी अग्निहोत्र को करता रहे" इससे मरण पर्यन्त ही गृहस्थ धर्मको करना ऐसा अर्थ निकलता है।

स्मृति ग्रंथों में भी गृहस्थाश्रमको मुख्य माना है। और इसके आरंभ के संबंधमें लिखा है कि—

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ॥
पंचयज्ञविधानं च पंक्ति चान्वाहिकीं गृही ॥६७॥

(मनुस्मृति अ. ३)

अर्थात् "विवाह के समयकी अग्निका संग्रह करके उसीमें गृह्यसूत्रोक्त संपूर्ण कार्य ओर नित्यप्रतिका वैश्वदेव पंच यज्ञादि गृहस्थीको करना चाहिये। किंतु स्त्री के विना ये बन नहीं सकते यानी अकेला यजमान कर नहीं सकता क्यों कि—

"अर्द्धं वा शरीरस्य यज्यायेति" (तैत्तिरीय श्रुति)
"शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्या पुण्य फले समा"

(स्मृतिः)

* मनुस्मृति अ. २ श्लो. ७७-७८ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थ प्रभवा श्चत्वार पृथगाश्रमा ॥८७॥ सर्वेषामपि चैतेषा वेदस्मृतिविधानत. ॥ गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठ स त्रीनेतान्बिभर्तिहि ॥८९॥ (मनुस्मृति अ. ६)

शरीर का अर्ध विभाग स्त्री है। इसलिये स्त्री के विना अर्ध शरीरसे यज्ञादि धार्मिक विधि हो ही नहीं सकती। यानी श्राद्ध, देवपूजा, तीर्थयात्रा, जप, तप एवं दान ये सब सपत्नीक कर सकता है। यहांतक कि यदि स्त्री रजस्वला हो जाय, तो उतने दिनोंमें उसका पति यज्ञादि कर नहीं सकता; क्योंकि उसका आधा शरीर अशुद्ध है।

७३. ऐसी अवस्था में यदि दैव योगसे स्त्रीकी मृत्यु हो जाय तो धर्म शास्त्र ग्रंथोंमें लिखा है कि—

" भार्यायै पूर्व मारिण्यै दत्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ॥
पुनर्दार क्रियां कुर्यात् पुनराधान मेवच ॥६८॥ "

(मनुस्मृती अ. ६)

अर्थात् " यदि स्त्री मरजाय तो उसकी अग्निका दाही क्रिया करके फिरसे दूसरा विवाह कर लेवे और पुनः अग्निका आधान करे। किंतु इस में देरी न लगावे क्यों कि—" आहरेद्विधिवद्दारा नग्नींश्चैवाविलंबयन् ॥ " ऐसा याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है, कि ऐसे समय स्त्रीको विधिपूर्वक हरण करके ले आवे और अग्निका आधान कर ले। इस में बिलकुल देरी न करे। क्योंकि देरी करनेसे पुरुषका अग्नि होत्र वैश्व देवादि संपूर्ण श्रौतस्मार्त करनेका अधिकार बंद होजाता है; और स्त्रीके विना अनाश्रमी हो जाता है; सो ऊपर लिख दिया है कि एक क्षण भी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिये।

७४. इसी प्रकार स्त्री का भी पति मृत हो जावे तो ऊपर [स्तंभ ७१ में] कहे हुए धर्म शास्त्रके प्रमाणसे स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है। अर्थात् स्त्री हो चाहे पुरुष हो; अनाश्रमी हो जाने में वैश्वदेव पंचमहायज्ञादि धार्मिक कृत्य कुछ भी नहीं कर सकते। तब ऐसी अवस्था में विधुर या विधवा क्यों रहना चाहिये। यही धर्मशास्त्रका आशय है। ऐसा देवल व नारदस्मृति और अग्निपुराण आदि ग्रंथोंमें भी स्पष्ट कह दिया है। देखो अथर्वण वेद में तो बिलकुल स्पष्ट कह दिया है कि—

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियतेपतिः ॥
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो ३ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥

(अथर्वण वेद १२ कांड २।२।३९)

या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विन्दते परम् ॥
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषित ॥

(अथर्वण. सं. कां. ९.३.५.२७)

उक्त अथर्वण वेद की आज्ञा से यह बात स्पष्ट तथा प्रगट होती है कि जैसा पुरुषों को पंच महायज्ञ चालू रखना आवश्यक है। ठीक उसी प्रकार स्त्री को भी पंचौदन प्रक्रिया, चालू रखना चाहिये। इसके खंडित होने में स्त्री ने अन्यपति और पुरुषने अन्य स्त्री करके सतत चालू रखना चाहिये। यही श्रुतिकी और स्मृतिकी आज्ञा है।

७५. धर्म शास्त्र में आठ प्रकार के विवाह कहे हैं। और अनुलोम विधिसे विवाह होनेके कारण प्राचीन काल में कोई विधवा स्त्री या विधुर पुरुष नहीं रह सकता था। भारतादि ग्रंथोंमें इस के संबंध में बहुतसे ,चरित्र (इतिहास) कहे हैं। और उस समय वही राष्ट्र सुधरा हुआ समझा जाता था जैसा कि कैकय देशके राजाने कहा है कि—

" न मे राष्ट्रे विधवा ब्रह्मबंधुर्नब्राह्मणः कितवो नोत चोरः ॥ अयज्ञयाजी नच पाप कर्मा न मे भयं विद्यते राक्षसेभ्यः ॥२६॥ तस्माद्राजा विशेषेण विकर्मस्था द्विजातयः ॥ नियम्याः संविभज्याश्च तदनुग्रह कारणात् ॥३३॥ (भारत शांतिपर्व अ. ७७)

७६. अर्थात् " मेरे राष्ट्र में न तो कोई एक भी विधवा स्त्री है,कि जिसका पुनर्विवाह करा न दिया हो, न कोई ऐसा नीच काम करनेवाला ब्राह्मण है, कि जिसे शिक्षण देकर सदाचारी न बनाया हो; न कोई प्रजाजन कपटी व चोर है कि जिसको व्यापारादि उद्योगसे लगा न दिया हो। न कोई अनाश्रमी (विधुर) रहा है कि जिसको यज्ञ करनेका अधिकार न होते यज्ञ करता हो। और न कोई धर्मशास्त्र को त्यागकर पापका आचरण करनेवाला है, कि जिसका नियमन न किया हो। ऐसा सुधारा हुआ जब मेरा राज्य है, और धर्म की सुव्यवस्था है तब मुझे राक्षसों का कहांसे भय हो सकता है ॥२६॥ अपने राज्य के सुधार के लिये विशेष करके राजाका यह कर्तव्य है कि यज्ञ यागादि के कर्मको त्याग देनेवाले विकर्म में स्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्योंको सख्तीके साथ अपने अपने वर्णाश्रम कर्मको विभाग तत्वके अनुसार करने में प्रवृत्त करें। यह नियमन उनके भलाई के लिये है ॥३३॥

७७. ऐसाही रामराज्यका वर्णन है—

" विधवा यस्य विषये नानाथाः काश्चनाभवन् "

(भारत शांति पर्व २९.५२)

" न पर्य देवन् विधवा " (वाल्मीकि रामायण उ. स. १३०श्लो ९८)

अर्थात् " रामराज्यमें विना पतिके कोईभी विधवा स्त्री दुःख नहीं पाती थी। और न कोई अनाश्रमी थे इत्यादि वर्णन है। पतित जानकर त्यागी हुई

अहिल्या को पुनः स्वीकार करने के लिये गौतम को रामने समझाया तब गौतम ऋषिने उसका फिर स्वीकार कर लिया। यह प्रत्यक्ष ऐतिहासिक उदाहरण वाल्मीक रामायण में मौजूद है।

७८. इस प्रकारके सुधेर हुए राज्यों के इतिहास को पढ़नेसे तथा व्यास माता सत्यवती के साथ भीष्म पिता शंतनुराजा का विवाह का होना, व दीर्घतमा और भरद्वाजादि के इतिहास को देखने से पता चलता है, कि प्राचीन कालमें वूढ़ोंको भी वूढ़ी स्त्री मिल जाती थी। अर्थात् कोई भी अनाश्रमी नहीं रहते थे। उसमें भी सवर्णा स्त्री के सिवाय नीचे के वर्णकी स्त्री के साथ (अनुलोम) विवाह होनेसे स्त्री को पतिका और पुरुष को पत्नीका सुख मिलना सुलभ था। उसमें भी आठ प्रकार के विवाह होने से चाहे जिस प्रकार से दार संग्रह किया जाता था। यानी स्त्रीको प्राप्त कर लेते थे इससे वंशकी वृद्धि बड़े जोरसे होती थी और "ब्राह्मण लोग भी यावज्जीवन तक सपत्नीक रहते हुए अग्नि होत्रादि कर्मों को कर सकते थे। इससे संतति, संपत्ति और विद्या-वैभव आदि का सौख्य सभी को मिलता था।

विधवा को सिवा गृहस्थाश्रमके दूसरा आश्रम नहीं।

७९. किंतु यह सब बातें कलिवर्ज्य प्रकरण में " ऊढायाः पुन रुद्वाहः " इत्यादि माधवाचार्यादि की कल्पित बातों के कारण वर्ज्य की गई। किंतु इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादिकों के हजारों बालक आज कंवारे ही मर जाते हैं। विधुर और विधवाओं की संख्या तो लाखों तक पहुंच गई है। तब इनका कौनसा आश्रम समझा जाय? यह सब यज्ञ, जप, तप, दान व तीर्थयात्रा के अधिकार से हीन होकर भी, जो कुछ धर्म समझकर करते हैं। वह सब धर्म विरुद्ध होनेसे और भी पाप के भागी हो रहे हैं। इधर श्रीमान् पुरुष दो तीन स्त्रियों को व्याह लेते हैं। व वृद्ध पुरुष बहुत कम उमर की स्त्री को व्याह लेते हैं। इधर गरीब बालक तडफते रहते हुए इन्हें धिक्कार दे रहे हैं। विधवाओं को अशुभ समझकर तिरस्कृत करते हैं। हाय! यहां तक अनर्थ हो रहा है, कि आज हजारों गर्भ पात हो रहे हैं। विधवा और विधुरों के दुःखाश्रु से भारत माता नित्य प्रति भीगी जा रही है। ऐसी दुःखद स्थितिमें भी यदि कोई विधवा स्त्री ने विवाह कर लिया, या उसका कुछ व्यभिचार देख लिया; तो उसकी कोई तरहकी चौकसी व धर्म विचार नहीं करते हुए, उसे

जातिच्युत कर देते हैं। इससे गत कलियुगमें कितनी हानि हुई सो कह नहीं सकते। इसीसे म्लेच्छ व शूद्रादिकों की संख्या कोट्यावधि बढ़कर द्विजाति की संख्या नितांत घट रही है।

८०. धर्मशास्त्र ग्रंथों के प्रमाणोंसे ऐसा करना बहुत नेष्ट है। न्याय करके दंड दिया जाता है। लेकिन कालि वर्ज्यकी जो धुन सवार हो गई, सो उसके सामने धर्म न्याय को कौन देखता है? इनके मतसे मानो स्त्री को आत्माही नहीं है। यदि पुरुष व्यभिचार करले तो हरकत नहीं, वृद्ध अवस्था में विवाह करले उस में जातिकी सम्मति। किंतु विचारी अक्षत योनी विधवाने किसीके साथ विवाह कर लिया तो दोष है!! यह कहां का न्याय?

८१. स्मृति ग्रंथों में स्त्री के संबंध में क्या क्या कहा है सो अब हम बताते है.

" न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेद कर्मणा ॥१८९। पूर्वं स्त्रियः सुरैभुक्ताः सोम गंधर्व वह्निभिः ॥१९०॥ भुंजंते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यंति कर्हिचित् ॥ असवर्णास्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते॥१९१॥ अशुद्धासा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुंचति ॥ विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥१९२॥ तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं कांचनं यथा ॥ स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥१९३॥ बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौर भुक्ता तथापि वा ॥ न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥१९४॥ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्धयति ॥१९५॥ सकृद्भुक्तातु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः। प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतु प्रस्रवणेन तु ॥१९८॥ प्रारब्ध दीर्घ तपसी नारीणां यद्रजो भवेत् ॥ नतेन तद् व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ॥१९९॥

(अत्रिस्मृति अ. १)

अर्थात् "अपनी शाखाके मन्त्रोंको छोड़कर दूसरी शाखाका वेद पढनेसे जैसा ब्राह्मण वेद व्यभिचारसे पतित नहीं होता। उसी प्रकार व्यभिचारसे स्त्री पतित नहीं होती ॥१८९॥ क्योंकि जैसे सोम, गंधर्व और अग्निदेवताओंके (अवस्था विशेषसे) उपभोग लेने बाद मनुष्य पतित होकर उसका उपभोग लेता है; किंतु वह दूषित नहीं समझी जाती; इससे वह पतित तो होही नहीं सकती ॥ हां इतना होता है कि जो असवर्ण पुरुषका गर्भ स्त्री को रहजाय तो प्रसवकालतक वह अशुद्ध समझी जाती है। किंतु संतान हुए बाद जब वह रजस्वला हो जावे तब वह फिरसे शुद्ध हो जाती है ॥१९२॥ जो स्त्री को अत्यंत तकलीफ

हो गई हो, या उसको ताड़न करके कष्ट दिया हो, या किसीने बलात्कार किया हो, या चोरीसे उसके पतिका रूप धारण करके समागम किया हो; ऐसी अवस्थामें उस दूषित स्त्री का परित्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि स्वाभाविक कामना से वह प्रवर्त नहीं हुई थी ॥१९४॥ ऐसी की अशुद्धि उसके ऋतु काल आनेतक रहती है। रजस्वला होनेपर वह शुध्द हो जाती है ॥१९५॥ यदि कोई म्लेच्छ या पातकी पुरुष से एकवार स्त्री भोगी जाय तो एक वार के प्राजापत्य नामक व्रतरूप का प्रायश्चित से वह शुद्ध हो जाती है। और ऋतुकाल से भी शुद्ध होती है ॥१९७॥ दीर्घ तपश्चर्या सरीखे महत्काम को आरंभ करनेवाली स्त्री को जो रज प्राप्ति हो जाय तो उससे उसका आरंभ किया हुआ व्रत भी खंडित नहीं होता ॥१९९॥ ऐसा अत्रि स्मृतिमें कहा है।

८२. इसी प्रकार और भी गौतमादि स्मृतियोंमें व्यभिचार करनेपर स्त्रीको प्रायश्चित देकर शुद्ध कर लेनेका विधान कहा है। किंतु उतने परसे वह पतित याने जाति बहिष्कृत नहीं हो सकती। लेकिन स्त्रीसे भी ज्यादा व्यभिचार का प्रायश्चित्त पुरुष को कहा है। क्योंकि विशेष करके पुरुष ही इसे व्यभिचार में प्रवृत्त करने का कारणी भूत होता है। विवाह के समय अग्नि की साक्षिसे (सखे सप्त पदाभव) इसको सप्त पदीमें सखा शब्दसे बरोबरी का मित्र कहा है। फिर उसको त्यागकर अन्य जगह जानेमें बड़ा दोष है।

८३ बराह मिहिरने तो स्त्रियों की उपयुक्तता, और अधिकार पुरुष के समान बताकर पवित्रता व सुशीलादि गुण तो पुरुषसे भी अधिक बताए हैं। (बृहत्संहिता अ. ७३) इससे पाठक खयाल कर सकते हैं, कि इस कलिकालके आरंभ होने के पहिले स्त्रियों के सबधमें विद्वान् पुरुषों का कैसा शुद्ध भाव था। किंतु जब से कलियुग आरंभ हुआ तब से स्त्रियों के स्वातंत्र्य का सर्व प्रकार से अपहार कर लिया गया। और कई बाल विधवाओं को यावज्जीवन तक पतिका सुख नहीं मिलने से विरह दावानलमें जलाने का कलिकार्य प्रकरण खड़ा कर दिया।

८४ लेकिन उसका परिणाम यह हुआ कि कई कुल निर्वंश हो गए। गृहस्थाश्रम दुःखप्रद हो गया। चारों के आश्रम नाम मात्र रह गए दत्तकपुत्रोंका बाजार गर्म किया गया। विधवाओं के बराबर कुवारे व विधुरों को भी गृहस्थधर्म शून्य रहना पड़ रहा है। और जिस कार्य को करने की लिये पुरुष का जन्म होता है, उस कार्यको यानी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को स्त्री के बिना वह कर नहीं सकते। यह क्या थोड़ा अनर्थ है ?

८५. इसके ऊपर कई ऐसा कहते हैं कि हम क्या करें, हमारी जातिमें कुवारी कन्या मिल नहीं सकती। न पुनर्विवाह की चाल है। यदि कहीं जिनमें

यह पुनर्विवाह की प्रणाली प्रचलित है, वह अन्य जाति के है। तव उनसे हम विवाह कैसे कर सकते हैं? हीन जाति की स्त्रीसे विवाह लेनेपर हमारी भी हीन जाति में गणना हो जायगी। इस लिये हम तो यज्ञ यागादि के झगडे में पडते ही नहीं। कलियुग में केवल भगवान का नाम लेनाही सार है। सो हरि हरि कृष्ण कृष्ण करते हुए संन्यासी के अनुसार हमारे जन्म को सुधारते हैं। इसीसे हमें मोक्ष मिल जायगा और सब प्रपंच झूँठा है। ऐसी बातें बोलकर श्रौतस्मार्त धर्म को छोडकर सांप्रदायिक आधुनिक धर्म की प्रशंसा करने लगते हैं।

ग्रहस्थाश्रम धर्मही मुख्य है।

८६. उपरोक्त प्रश्नोंके क्रमवार उत्तर देनेके पहिले अत्रिस्मृति के एक इस श्लोककी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं, वह यह है कि–

वेदैः विहीनाश्च पठंति शास्त्रं, शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ॥
पुराणहीनाः कृषिणो भवंति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ।.३८३॥
(अत्रि स्मृति)

अर्थात् जिनको वेद पढना नहीं आता वे शास्त्री हो जाते हैं। जिन्हें शास्त्र पढना नहीं आता वे पुराण पढने लग जाते हैं, और जिन्हें पुराण भी पढना नहीं आता, वे खेती करने लग जाते है। किन्तु जो वेद, शास्त्र व कृषिकार्य इत्यादि कर्मोसे भ्रष्ट हुए; जिन्हें खेतीभी करते नहीं आती ऐसे कर्मभ्रष्ट पुरुष भागवत हो जाते हैं, वह भगवद्भक्त याने हम भागवत है ऐसा कहने लग जाते है। लेकिन ऐसे कर्तव्य कर्मोसे भ्रष्टाचारसेही वेद विद्याका लोप हो गया। और वेदार्थ दुर्गम हो गया। वे समझते हैं कि अब हम भक्त व संत हो गए। अब हमें वर्णाश्रम कर्म करनेकी क्या जरूरत ? किंतु सचमें तो कर्म ही श्रेष्ठ है। इसमें कर्म लोप होता है। अतएव इसका धर्मशास्त्रमें बडा निषेध किया है। प्रव्रज्याशूद्रसमाः और पुराण ग्रंथोंमें भी नीचे लिखे प्रकार कहा है—

" अपहाय निजंकर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः ॥
ते हरेर्द्वेषिणः पापाः कर्मार्थं जन्मयद्धरेः॥१॥ "
(विष्णु पुराण)

" विरतो विष्णु विद्यासु सप्रेतो जायते नरः ॥२॥ "
(पद्म पुराण)

यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाऽविधिपूर्वकम् ॥१७॥ यःशास्त्रविधि मुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥ न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥ (भगवद्गीता अ १६)

अर्थात् "अपने वर्णाश्रम धर्मोक्त कर्तव्य कर्मोंको त्यागकर जो कृष्ण कृष्ण ऐसा हरिका नाम लेते हैं वह पुरुष हरिके वैरी हैं। और पापी हैं। क्योंकि हरिका अवतार चरित्रही कर्म करनेको बतलाता है ॥१॥ पठन पाठनादि छः कर्ममेंसे ब्राह्मणका मुख्य कर्म वेद पठन है। उस वेद विद्याको त्यागकर जो विष्णु विद्यामें रत है उसको उत्तम गति नहीं मिलती। यानी वह प्रेत योनिमें रहते हैं ॥२॥ गीता में भी कहा है कि कर्मभ्रष्ट लोग कपट करके शास्त्र विधिको त्यागकर नाम यज्ञोंसे पूजा करते हैं ॥१७॥ किंतु जो शास्त्र विधिको छोडकर मनमाना काम करते हैं, उनको सिद्धि नहीं मिलती। यानी इस लोक में सुख नहीं मिलता और न पर लोक में सद्गति मिलती।

८७ इत्यादि बहुतसा लिखा है। इससे हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि हम भगवद्भक्तोंकी या कोई सम्प्रदायकी निन्दा करते हों। किंतु श्रुतिस्मृति सम्मत वर्णाश्रम धर्मको त्यागनेका इस में निन्दा है। अतएव ईश्वरकी भक्ति करना अच्छा है किंतु अपने सनातन धर्मको करते हुए भगवद्भक्ति करना चाहिये? न कि त्याग के। अतएव हरएक पुरुषको अपने २ कर्तव्य कर्म को करनाही चाहिये उसीसे उसको इस लोक में सुख और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त होती है।

८८. इस लिये ब्रह्मचर्याश्रम के बाद विवाह करके गृहस्थाश्रमी हो जाना चाहिये। जब कभी शरीर स्थितिके कारण अपने वर्णकी स्त्रीका प्राप्ति न होवे तो नीच वर्णकी स्त्री के साथ विवाह कर लेना चाहिये। गृह्य सूत्रो में अनुलोम विवाह धर्म सम्मत कहा है। मनुस्मृति में तो यहांतक कहा है कि—

"श्रद्दधानः शुभांविद्या'मददीता वरादपि ॥ अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥२३८॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्॥ अमित्रादपि सद्वृत्त ममेध्यादपि काञ्चनम् ॥२९॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ २४० ॥ (म स्मृ अ २)

अर्थात् "अच्छा लाभकारी विद्या नीच जातीके पाससे भी श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लेनी चाहिये। अच्छे आचरण रूप धर्मको अत्यजसे भी लेलना चाहिये। तथा नीच कुलसे भी स्त्री रत्नको ग्रहण कर लेना चाहिये। एसे ही विषसेभी अमृत को, बालकसे भी सुभाषित (वाक्य) को, शत्रुसेभी सदाचार को, अपवित्र

से भी सुवर्णको लेलेना धर्म है। क्योंकि स्त्री, रत्न, विद्या, धर्माचार, शुद्धता, सुभाषित, और अनेक प्रकारके कला कौशल्य यह हम सबके पाससे योग्य रीतिसे ले सकते हैं। "

८९. योग्य रीतिसे कहनेका कारण यह है गृह्यसूत्रोक्त विधिसे " पुण्याहे पाणिगृण्हीयात् " विवाहोक्त मुहूर्त में पाणि ग्रहण संस्कार करे उसमें भी—

शरः क्षत्रियया ग्राह्य प्रतोदो वैश्य कन्यया ॥
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥४४॥

(म. स्मृ. अ. ३ श्लो. ४४)

अर्थात् ' क्षत्रिया स्त्री वरके हातके शर (तीर) या कटार को, वैश्य कन्याने छडीको और शूद्र कन्याने वरके वस्त्रकी छडको या जामेके बंधनको ग्रहण करे ऐसा कहा है।

९०. ऐसा अनुलोम विवाह करने से वह नीच वर्ण की कन्या भी उच्च वर्ण के साथ विवाही जाने से उच्च वर्ण की हो जाती है। क्यों कि इसके संबंध में मानवधर्म शास्त्रमें लिखा है कि—

" यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ॥
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥२२॥
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥
एताश्चान्याश्च लोकेस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ॥
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥
एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥२५॥
प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ॥
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥२६॥
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ॥
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥२८॥

(मनुस्मृति अ. ९)

अर्थात् जिस गुणवान् पति के साथ स्त्री विवाही जाती है, उसी गुण कर के युक्त स्त्री हो जाती है॥ २२॥ शूद्र कन्या अक्षमाला को वसिष्ठ ऋषिने

विवाह की। तब यह अक्षमाला भी ब्राह्मणी होकर अरुंधति के नामसे विख्यात हुई। ऐसाही मंदपाल नामक ब्राह्मण के साथ शारंगी नामक वैश्य कन्या का विवाह हुआ। तो यह भी ब्राह्मणी होकर उत्कृष्ट जाति में युक्त होगई ॥२३॥ ऐसे और भी बहुतसी नीच कुलमें उत्पन्न हुई कन्याएं ऊंचे वर्णके ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य आदि वर्ण की स्त्री हो जाने से उनके ऊंचे गुणके कारण उस ऊंचे वर्णमें गिने जाने लगी याने जातिके उत्कर्ष को प्राप्त होगईं ॥२४॥

९१. संसार में जिस सुखकेवास्ते मनुष्यने जन्म लिया है वह लोकयात्रा इस प्रकार स्त्री पुरुषके युक्त रहनेसे ही आनंद कारक होती है। + यानी संसार में सुख स्त्री से पुरुषको और पुरुषसे स्त्री को प्राप्त होता है इतनाही नहीं दोनोंका परलोक भी सुधर जाता है सो सुनिये ॥२५॥ इन ही सौभाग्यवतियोंसे वंशकी वृद्धि होती है, इसलिये घरकी शोभा स्त्री से है। यानि स्त्री के साथ वृक्षके नीचे भी निवास किया तो वह स्थान गृहसे भी अधिक सुखदाई होता है। और स्त्रीके बिना घरमें अंधःकार रहता है। इसीलिये स्त्री और लक्ष्मी इनमें कोई विशेष भेद नहीं है। यानी लक्ष्मीसे जैसा आनंद होता है ऐसाही स्त्री से होता है ॥२६॥ इसीसे संतान = पैदा होती है। वैश्वदेव, जप तप, श्राद्धादि धर्मकार्य स्त्रीके साथही किये जाते हैं। सेवा, शुश्रुषा, और उत्तम प्रकारका कामोपभोग आनंद यह संपूर्ण बातें स्त्रीकेही आधीन है। इसीसे इसको स्वर्गकी प्राप्ति तो होतीहि हैं, किंतु पितृश्वरोंके जलांजली देनेवाले पुत्र पौत्रादि होनेसे उन पितरोंको भी स्वर्ग सुख मिलता है ॥२८॥

९२. इससे बने जहांतक सवर्णा स्त्री के साथ याने अपने जातिकी स्त्री के साथ विवाह करे किंतु जब सवर्णा स्त्री मिलतीही नहीं है; और बड़ी आयुष्य होगई है तब कुंआरा रहनेकी अपेक्षा नीचे वर्णकी स्त्री के साथ विवाह कर लेवे। अभितक कलियुग था और इस कलियुगके कारण लोगोंकी प्रवृत्ति धर्म शास्त्र के अवलोकन की ओर न होनेसे वेदशास्त्र व स्मृति पुराणादि में नहीं लिखी हुई कलिवर्ज्य बातों को भी महत्व देकर असवर्णा विवाह व पुनर्विवाह इत्यादि बातोंको धर्म विरुद्ध मानकर इन कार्योंको वे व्यभिचार समझते थे। इसी भ्रमसे उन की संतानोंको वर्ण संकर मानतेथे। और ऐसे काम करने वालेको जाती बाहिर कर देते थे, किंतु जब कि संवत १९८१ के साल से सतयुग लग गया है तब अब

+ स्त्रियांतु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते (मनुस्मृति ३·६२)

= प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थंच मानवाः ॥ तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्यासहोदितः ॥ [मनुस्मृ. ९·९६] सोमे वसाना यज्ञेना दर्भवालामित्यादि श्रुतः

कलिवर्ज्य बातोंको छोड़कर समाज हितकारी सनातन धर्मको सब लोग मानने लग जायँगे। तब जाति बाहर सरीखी घातिक प्रणाली अपनेआप बंद हो जायगी।

पुनर्विवाह की प्राचीन प्रणाली।

९३. यदि दैवयोग से पुरुष की स्त्री मृत हो जाय या स्त्री का पति मृत हो जाय तो उस आपात्ति को मिटाने के लिये जैसा महाभारत और धर्मशास्त्र ग्रंथों में कहा है वैसा फिरसे विवाह कर ले। क्योंकि—

पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम्॥
एष ते प्रथमः कल्प आपद्यन्यो भवेदतः॥१२॥

[भारत शांति पर्व अ. ७२]

अर्थात् "पतिके अभाव में जैसे स्त्री पति के भाईको या अन्य बांधवों को शास्त्रोक्त विवाह पद्धति से पाणि-ग्रहण करके पति कर लेती है यह आपद्धर्म कहाता है। क्योंकि मुख्य विवाह तो पहिला ही कहाता है। दूसरा आपद्धर्म के कारण करना पड़ता है।"

किंतु इससे भी जो संतान आदि पैदा हो वह सब उसी जाति की समझी जाति है कि जिस जाति का पिता है।

९४. कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री हो चाहे पुरुष गृहस्थ धर्म को स्वीकार करके सतान उत्पन्न कर पितरों के ऋणसे, यज्ञकर देव ऋणसे, और विद्याभ्यास व विद्यादान कर ऋषियोंके ऋणसे उऋण हो जाता है। बादमें वृद्ध अवस्था में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमको धारण करसक्ता है अन्यथा नहीं जैसा कि धर्म शास्त्रमें कहा है।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥३५॥ अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः॥ इष्ट्वाच शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥३६॥ अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्॥ अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः॥३७॥

[मनुस्मृति अ. ६]

अर्थात् तीनों ऋण उनरे बाद तत्त्वज्ञान और मोक्ष प्राप्तिके लिये ईश्वर चिंतन और उपासनाके लिये मन को धारण करे। ऋणोंको दूर करे विना उपासना करने वालेका अधःपात होता है ॥३५॥ इसलिये वेदको पढ़नेसे ऋषियोंका ऋण, धर्म शास्त्रोक्त रीतिसे पुत्रोंको उत्पन्न करनेसे पितरोंका ऋण, और यज्ञ करनेसे देवताओंका ऋण दूर कर के मोक्ष संपादन में मन लगावे ॥३६॥ यदि वेदाध्ययन किये विना, संतानको पैदा किये विना और पंच महायज्ञ तथा सोम यागादि बड़े यज्ञोंको किये विना जो कोई मोक्षकी इच्छा करता है उसका यह लोक तो विगड़ा हुआ प्रत्यक्ष में दिखता ही है × किंतु परलोक भी विगड़ जाता है ॥३७॥

[मनुस्मृति ३'७१]

९५. इसलिये जबकि इस लोक और परलोक इन दोनों लोकोंको सुधारना है तो वेदशास्त्रोक्त वर्णाश्रम धर्मका प्रतिपालन करना चाहिये। अब तो कलियुग बीत गया है। कृतयुग लग गया है। इस में तो श्रौतस्मार्त विहित कर्म करना और वेदोंको पढ़ना चाहिये। वेदके अर्थका परिशीलन करना चाहिये ताकि सपत्नीक यजमान को विधि पूर्वक यज्ञनारायणकी उपासना करना एवं कर्तव्य कर्मको करते जाना चाहिये। केवल भगवानका नाम और ध्यान कलि-युग में किया जाता था। यह भी पूरे अकर्मण्य की जगह " अकरणान्मंद करणं श्रेयः " के मुआफिक कुछ तो भी अच्छा समझा जाता था। किंतु अब सत्ययुग में सत्य (शास्त्र विहित) कर्म करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रपंच चाहे झूठा हो या सत्य किंतु वह कर्म योगसे सत्य-स्वरूप परमात्मा में मिल जानेसे सत्य पद को प्राप्त हो सकेंगे।

कलि कृपासे वैवाहिक प्रथामें हेर-फेर।

९६. इस प्रकार उपरोक्त स्तंभ में किए हुए प्रश्नोंका उत्तर कहा गया अब प्रस्तुत विषयके ऊपर पाठकों की दृष्टि आकर्षित करते हैं। गत कलियुग में कई बातें ऐसी की जाती थीं और वह अब भी की जाती हैं कि जो कलियुग के पहिले के कोई भी ग्रंथ में लिखी नहीं हैं। जैसे विवाह में तीन पीढ़ी तक का गोत्रोच्चार पूर्वक कन्यादान किया जाता है; सो विधि मानव, जैमिनि, लौगाक्षि, काठक

× देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ॥ न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥७२॥

आश्वलायन, गोभिल, आपस्तंब, और बौधायन आदि गृह्यसूत्रोंमें कहीं भी लिखा नहीं है न पारस्कर गृह्य सूत्रमें लिखा है। फक्त वधूका पाणि-ग्रहण करके वधूको साथ लेकर जय होम करनेके स्थल में वर बाहिर जाता है तब " पित्राप्रत्तामादाय " पिताकी आज्ञा ली हुई वधूको लेकर वहां जाता है। इस के संबंधका वर्णन ऊपर हम कह चुके हैं। बस उसीके आधारपर यह प्रणाली प्रचलित हुई है।

९७. ऐसे ही वाग्दान के संबंध की प्रणाली मुहूर्त ग्रंथों के कथन के आधार से प्रचलित हुई है। यह विवाह निश्चय भी पहिले वरवधू के आपस में होता था। किंतु कलियुग लगे बाद अज्ञान अवस्थामें ही उसके जगह वाग्दान होने लगा। गृह्यसूत्र के कर्काचार्य, जयराम, हरिहर और विश्वनाथ इन भाष्यकारोंने वाग्दान विधि नहीं कही है। किंतु गदाधर नामक पांचवें टीका कारने आधुनिक निबंध ग्रंथों को प्रमाण मान कर कुछ ऐसे वचन लिखे हैं कि उस (पा. गृ. सू. १.४.१ भाष्य) में—

(मेधातिथिः-" वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेप्यथ कन्यकायाः ॥ मृत्युर्यदिस्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मंगलं बुधैः" ॥१॥ गर्गः-" कृते तु निश्चये पश्चात् ") संबंध निश्चय होनेपर वरवधू के कुल में मृत्यु हो जाय तो अशुभ कहा है। इस में वाक्दानका उल्लेख नहीं है किंतु सब के बाद के " स्मृति चंद्रिका " नामक पुस्तक में " कृते वाङ्नियमे" तथा भृगुः " वाग्दानानन्तरं यत्र ' इस में वाक्दानका उल्लेख है। किंतु इस में जैसे ऊपर लिखे प्रकार वधू वरके आपस में संबंध निश्चय होता था ऐसा आगे न रहकर वाक्दान तो पिता ही करने लग गया और इसकी सत्यता विवाह कर देनेपर पूर्ण हुई समझी जाने लगी।

९८. इस तरह ऐतिहासिक पद्धतिको देखते स्पष्टतया ज्ञात होता है, कि कलियुगारंभ के पहिले वाक्दान विधि थी ही नहीं; किंतु पुनर्विवाह और नियोग के स्मृति वचनोंकी संगति लगानेके लिये यह एक कोटिक्रम खड़ा किया गया है। उस में कुछ पाठ भेद कर के स्मृति ग्रंथोंमें श्लोक मिलाए गए हैं जैसे—

यस्या म्रियेत कन्यायाः पाणिग्राहे कृते पतिः ॥
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवर. ॥

[म. स्मृ. ९.६९]

९९. अर्थात् " जिस कन्याका विवाह हुए बाद पति मर जाय तो उपरोक्त [श्लो. ५९-६२] विधानसे देवर उसको स्वीकार कर ले " ऐसा ही अर्थ

भाष्यकार गोविंदराजने किया है। किंतु कुल्लूक भट्टने इस में " वाचा सत्ये कृते पतिः " पाठ भेद करके यद्यपि पिताकी वाचा विवाह करनेपर ही सत्य की जासकती है तथापि वहां ऐसा अर्थ नहीं करके " वाग्दाने कृते सति " वाचा सत्यका अर्थ वाक्दान कह दिया है। और गोविंदराजके संबंधमें [वहां ही ऊपर के श्लोक की टीकामें]

" यद्गोविंदराजेन युगविशेषव्यवस्थामज्ञात्वा " तन्मुनिव्याख्याविरोधान्नाद्रियामहे "

अर्थात् " जो गोविंदराजनें युग विशेषकी व्यवस्थाको नहीं समझकर कहा वह मुनीश्वरी टीका के विरुद्ध होनेसे हम उसे नहीं मान सकते " ऐसा कहा है। इससे स्पष्ट हो गया कि गोविंदराज के समय न तो कलियुग मानते थे, न कलिवर्ज्यादि युग व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ था। किंतु यह सब कलिमें ही गड़बड़ी हुई है। और मुनीश्वर टीका को ही सत्य मानकर उसीका आधार बता दिया है। इसी तरह बहुतसे श्लोक प्रक्षिप्त करके युग व्यवस्था को महत्व दे दिया है। क्योंकि प्रक्षिप्त के सिवाय वे श्लोक स्वयं मनुवचनों के विरुद्ध कैसे हो सकते हैं। इसीलिये हमने ऐसे श्लोकों को प्रमाणकोटीमें ग्राह्य नहीं किये हैं।

१००. अब जब इस प्रकार कलियुग में वाक्दान और कन्यादान की रूढ़ी चलाई जाने लगी तब गृह्यसूत्रों के " पुण्यहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् " इस प्रमाण से जो स्वयंवर विधिसे वरको वरने का अधिकार वधू को था; वह जाता रहा। और गौदान के मुआफिक कन्याका दान देनेका अधिकार पिता को प्राप्त हुआ। इसी तरह जब कि विवाह के बाद " बारह, छः या तीन दिनतक तो भी मैथुन नहीं करे " इस गृह्यसूत्र के प्रमाण से रजस्वला हुए बाद यानी कन्या के सज्ञान हुए के बाद ही विवाह का काल निश्चित होते हुए भी उसका विवाह उसके अज्ञान अवस्थामें यानी ८ से १० वर्ष के अन्दर ही कर देनेसे वर को पसंद करना तो दूर रहा; किंतु उस विषय में कन्या की सम्मति लेने के अधिकार का भी कतई लोप हो गया फिर क्या था।

शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा ॥
जीवत्यर्धशरीरे तु कथमन्यस्वमाप्नुयात् ॥१॥

तथा

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥
तत्र यद्रिक्थ जातंस्याचत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥२॥

[मनुस्मृति ९.१९०]

अर्थात् पुरुष का आधा शरीर स्त्री है, जो कि पुण्य व पाप की साथीदार कहाती है, तब पतिके मरनेपर उस अर्ध शरीर के रहते अन्य बान्धव उसके दाय भाग के मालिक कैसे हो सकते है ?

अर्थात् पतिके धन की मालकिन स्त्री ही हो सकती है ॥१॥ और वह भी वंश बढ़ाने के लिये सगोत्र से पुत्र उत्पन्न करके उसे वह धन दे सकती है, जो कि पति के मरनेपर इसे मिला था। किंतु कलिमें नियोगको वर्ज्य करने एवं क्षेत्रजादि पुत्रों का निषेध करने से स्त्रीका इस बातका भी अधिकार नष्ट कर दिया कि न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति स्त्री को किसी भी बातमें स्वातंत्र्य देना योग्य नहीं ऐसा कहने लगे। क्षेपक श्लोकों द्वारा उसका फल यह हुआ कि विधवा को पतिकी संपत्ति का उपभोग मात्र रखा गया। अर्थात् वह मालिक इस नाते से स्थावरादि को बेचना क्रय दानादि दे देना इत्यादि बातें कर नहीं सकती। यदि करे तो भी उसके मरनेपर वह रद्द समझने से, उसके जीते जी दत्तक पुत्र संपूर्ण धनका मालिक होनेसे इस कलियुग में स्त्री का स्वातंत्र्य बिलकुल नष्टप्रायः हो गया। इतना ही नहीं उसके स्वातंत्र्य को नष्ट करनेवाले कई मन घड़त श्लोक स्मृत्यादि ग्रंथोंमें मिलाए गए।

स्त्री की स्वतंत्रताका संहार।

२०१. आह! इन बेचारी अबलाओंका कितना तिरस्कार किया गया कि सती स्त्री की व्याख्या धर्म-पूर्वक पतिकी सेवा करना और मरे बाद आज्ञाका पालन करना होते हुए भी, पतिके मर जानेपर जीते जी धधकती हुई चिताकी आग में जलाई जाना बताई जाने लगी। उसीको विज्ञानेश्वरने अपनी मिताक्षरा-टीका में उस दुःखद अवस्थावाला अन्वारोहण याने सती होनेका श्येनयागवत् एक तामसी कार्य कहा। किन्तु कमलाकर व नीलकंठ आदिने बड़ी धार्मिक विधि रच दी। वस्तुतः कलियुगके पहिलेके कुल धार्मिक ग्रंथ व प्राचीन चरित्रोंको देखो तो कहीं भी अन्वारोहण कहा नहीं है। न इसका गृह्य-सूत्रादि में भी विधान है। किंतु कलियुगमें विधवाका मुंडन करके विद्रूप कर देना व मुंडन नहीं करानेवाली को अशुभ समझना आदि पशुतुल्य निरादरोंसे जन्म को दुःखमय बनाते एवं अपमान से जलते रहनेकी अपेक्षा; एकबार ही जल जाना अच्छा समझकर अन्वारोहणकी विधि बना डाली। ऐसे भी कई उदाहरण पाए जाते हैं कि विधवा स्वयं जलकर भस्म हो गई।

१०२. किंतु ब्रिटिश सरकारने इस कुप्रथाको कानूनसे बंद कर दी। तो भी दक्षिणमें अभी तक विधवा-वपन आदि की कुप्रथा प्रचलित है ही। और अब लोग देखने भी लगे हैं कि–

विधवा कबरी-बन्धो भर्तृबन्धाय जायते ॥
शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ॥१॥

[शूद्र कमलाकर प्र. ४]

इत्यादि श्लोक जो स्कंद पुराणके नामसे कहे गए हैं, वे प्राचीन नहीं हैं। यानी इस तरहका भाग कलि-कल्पित है। तथा श्रुति व स्मृति ग्रंथ जो धर्म प्रमाण कहलाते हैं; ये बातें उनके कथन के विरुद्ध हैं। अतः ऐसी तामसी याने अज्ञान मूलक अधर्मी बातोंपरसे शनैः शनैः श्रद्धा उठती चली है। यह बड़े संतोषकी बात है। क्योंकि " यतो निःश्रेयससिद्धि स धर्मः " जिससे निरंतर कल्याणकी प्राप्ति हो वही धर्म कहलाता है। किस बातमें हमारा कल्याण है यह अब समाजकी समझमें आने लगा है।

१०३. और हमारा भी यही कथन है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरणने सनातन धर्म के विरुद्ध कई संकल्प-विकल्प खड़े करके जो धर्म की बातें वर्ज्य कर दी हैं उससे चाहे उस समय फायदे हुए हों किंतु अब ये हानिकारक ही हैं। उन सब बातोंको हम यथा क्रमसे बतलाते हैं

[१] असवर्णा विवाह=नीचेके वर्णकी स्त्रियोंसे विवाह.
[२] पुनर्विवाह=स्त्री का एक विवाहके ऊपर दूसरा विवाह.
[३] नियोग=देवर आदिसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधि.
[४] प्रायश्चित्त करनेपर भी व्यभिचारसे स्त्री की शुद्धि.
[५] विद्वान् स्त्री का उपनयन कराकर वेद पढ़ाना.
[६] *वेद शास्त्र पढ़ेबाद भी उसको पुरुषके बराबर शुद्ध व ब्रह्मवादिनी मानना*
[७] गुरुपत्नी की मातृवत् सेवा करना.
[८] दुष्ट स्त्री संग्रह=क्रोधी स्त्री का अपरित्याग.
[९] मातुल कन्या व भुवाकी कन्या से विवाह.
[१०] दत्तक व औरस पुत्रके अतिरिक्त अन्य १० प्रकारके पुत्रोंका दायाधिकार
[११] ज्येष्ठांश=बड़े पुत्रको अधिक व छोटे पुत्रोंको थोड़ा इस प्रकार पिता के धनका विभाग करना.

१०४. इस प्रकार ग्यारह बातें बंद करनेसे गृहस्थाश्रम धर्म तो नाम मात्र के लिए रह गया; याने विधुर (मृतस्त्रीक) व कंवारे (बिना ब्याहे) पुरुष और विधवा (मृत पति) ओंका विवाह करना बंद हो जानेसे उपरोक्त

प्रकार ये गृहस्थ धर्मोचित कोई भी धर्म-कृत्य करने में बेकार हो गए। धर्म तथा इनके कर्म रुक जानेसे वंशकी वृद्धि रुक गई। अनेक वंश तो नामशेष हो गए।

१०५. इन विधुर-विधवाओं को संसार में आ कर पुत्र सुख स्वप्नमें भी नहीं मिला; फिर बेचारे क्या कर सकते हैं? जिधर देखो उधर दत्तक का बाजार गरम होने लगा। किंतु वह दत्तक लिया हुआ पुत्र रजवीर्य-अंश-विहीन होने से उसे मातृ-पितृ-भक्ति क्या चीज है, कैसे मालूम हो सकती है? प्रायः देखा जाता है कि इन भक्तिहीन उद्धत दत्तक पुत्रों से न बनने के कारण आपसमें झगड़े होते हैं। दत्तक लेनेवाली माता को सिर्फ अन्नवस्त्र का अधिकार; बाकी सब संपत्ति का मालिक दत्तक लिया हुआ पुत्र,इस तरह के न्यायालयों में न्याय होने लगे। यदि और किसी अन्य तरह के पुत्रोंमें से एकाध अंशधर पुत्र हुआ तो कलियुगी कानून से नाजायज ठहरने से जिधर देखो उधर सुख की जगह दुःख और धर्म की जगह पाखंड दिखाई देने लगा। दत्तक भी श्रीमान् को ही मिल सकता है। गरीब तो निर्वंशी ही रह कर हाय हाय करता मर मिटता है; किंतु उसकी पुकार सुने कौन?

१०६ हमारे प्रिय पाठक महोदयो, देखिये, वसिष्ठ स्मृति (अ. १६) में नीचे लिखे प्रकार बारह प्रकार के पुत्र कहे गए हैं।

[१] औरस=विवाही हुई स्त्री से पतिके द्वारा उत्पन्न हुआ पुत्र।

[२] क्षेत्रज=विधवा स्त्री से आप्त लोगों की संमति द्वारा सगोत्रीय के नियोग से उत्पन्न हुआ पुत्र।

[३] कृत्रिम=दौहित्रादि को पुत्र करके रखा हुआ पुत्र।

[४] पौनर्भव=स्त्री करके रखी हुई दूसरे की स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र।

[५] कानीन=अविवाहित कन्या में उत्पन्न हुआ पुत्र। यह उस कन्या को, विवाहनेवाले का पुत्र कहाता है।

[६] गूढज=यह बालक किस से उत्पन्न हुआ ऐसा मालूम न होते हुए वह किसी को मिल जाय उसका पुत्र।

१०७. इन छः प्रकार के पुत्रों को अप्रति बंधक दायाद बतलाया है। यानी ये पिता के धन के वारिस होते हैं।

[७] सहोढज=गर्भिणी अवस्था में विवाही हुई स्त्री का पुत्र।

[८] दत्तक=माता पिता के दान व प्रतिग्रह पूर्वक लिया हुआ पुत्र।

[९] क्रीत=किसी माता पिता आदि से मोल लिया हुआ पुत्र।

[१०] स्वयंदत्त=जो बालक स्वयं जिसको आपको पुत्र मान लेवे वह पुत्र।

[११] अपविद्ध=माता पिता के अभाव में मिला हुआ अनाथ बालक।

[१२] दासी पुत्र=सेवा करनेवाली दासी से उत्पन्न हुआ पुत्र।

१०८. उन छः पुत्रों को सप्रतिबंध दायाद बतलाया है। अर्थात् औरसादि पुत्र न होनेपर छः पुत्र पिताके धन के भागी होते हैं। यद्यपि उक्त १२प्रकार के पुत्रों का हक क्रमवार कम होता जाता है, तथापि पिताके द्रव्यसे ही सब ही पुत्रों का पालन पोषण और शिक्षण एवं विवाहादि संस्कार कराने का समान अधिकार ही रहता है; और यथा शास्त्रानुसार थोड़ा बहुत सभी को विभाग मिलता है।

१०९. इस तरह याज्ञवल्क्य स्मृति अ. १ श्लो. १२८--१३१ में गौतम स्मृति [अ. २९] में मनुस्मृति (अ. ९ श्लो. १५८-१८१) में और पराशरादि सभी स्मृति (धर्मशास्त्र) ग्रंथोंमें भी कुछ हेर फेरसे ये ही बारह प्रकार के पुत्र बतलाये हैं। इन बारह प्रकार के पुत्रों में १ से ७ और १२ वेंमें माता पिताका रज और वीर्य का अंश रहता है। बाकी ८ से ११ तक में, यानी दत्तक, क्रीत, स्वयंदत्त और अपविद्ध में माता पिता के रजवीर्य का अंश नहीं रहता। तो भी सभी के संस्कार उन माता पिता के द्वारा होनेसे, और बालकपनसे इनका पालन पोषण व विद्याध्यन कराने से माता-पिता और बेटोंका आपस में प्रेमभाव बना रहता है। किंतु सनातन कालसे चली आई हुई यह प्रणाली इस कलियुग में बंद कर दी गई। यानी आजकल औरस और दत्तक ये ही दो प्रकारके पुत्र कलियुग में हो सकते हैं। बाकी के पुत्रों को कृतादि युगों के समय के कह दिये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि इस बातके माननेवालों को पुत्र सुख का प्रायः स्वप्नसा हो गया। क्योंकि औरस पुत्र न होनेसे दत्तक लिया जाता है। किंतु वह भी निज के माता पिता का औरस पुत्र ही दत्तक लिया जाता है। इस कारण सब ही ११ प्रकार के पुत्रों का अधिकार नष्ट किया गया।

११०. हजार--आठसौ वर्षके इतिहास और "बखर" आदिसे पता चलता है, कि बड़े २ लक्षाधीशों का धन औरस पुत्र नजीक के बान्धव न होनेसे उक्त ११ प्रकारमेंसे कई पुत्र होते हुए भी उसे लावारिस ठहराकर वह धन राजगामी हो गया। माधवाचार्यादि राजाओंके प्रधानोंने यानी मिनिस्टरोंने इस तरह के मालिक के फायदे के लिये ही उक्त प्रतिबंधक श्लोक पराशर स्मृति आदिकी टीका में मन घडंत कह दिये हैं, जो कि कोई प्राचीन ग्रंथोंमें लिखे नहीं हैं।

१११. पुराण ग्रंथोंमें भी हजारों वर्षोंका इतिहास कहा गया है। किंतु अपवाद रूप में एक दो उदाहरणों के अतिरिक्त कहीं भी दत्तक पुत्रका नाम तक नहीं है। और जब कहीं किसीका वंश नष्ट हुआ है वहां नियोगसे क्षेत्रज पुत्र की उत्पन्न करनेकी तजवीज की गई, यों कही गई है न कि दत्तक की। तो क्या वह उस समय दत्तक पुत्र नहीं ले सकतेथे? किंतु उन्हें मालूम था कि उपरोक्त

१२ प्रकारके पुत्रोंमें दत्तक का नंबर ८ वां है। और क्षेत्रज्ञका नंबर २ रा है। दत्तक सप्रतिबंधक दायाद होता है और क्षेत्रज अप्रतिबन्ध वारिस होता है। मनु याज्ञवल्क्य, व पराशरादि ऋषियोंने अपने धर्म शास्त्र ग्रंथोंमें ऐसा ही कहा है, तत्कालीन पंडित लोक भी सर्व साधारण जनता को ऐसा ही निष्पक्षपातसे धर्मका उपदेश देते थे।

स्त्रियों के अधिकारों में विक्षेप।

११२. स्वार्थ बहुत बुरा है। माधवाचार्यादि के समय ऐसे क्षेत्रज पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली बेचारी (अनाथ) अवलाओं को व्यभिचारिणी कहने लगे एवं उसके क्षेत्रज पुत्र को वर्णसंकर कह कर इसतरह के धर्म छल से कई श्रीमान् लोगों के स्त्री पुत्रादि को दाय के अनाधिकारी बताकर उस संपत्ति को वे वारसी में लगाकर तत्कालीन राजा लोग ले लिया करते थे। सैंकड़ों श्रीमान् लोगों की सम्पत्ति राजाओं की हो जाती थी। क्योंकि ऐसी स्त्री को पतित मान अब उसे आगे दत्तक लेनेका भी अधिकार नहीं, ऐसा कह दिया जाता था। इतना ही नहीं अन्य वर्णकी स्त्रियों से उसका औरस पुत्र होते हुए भी असवर्णा विवाह बंद कर देने से उसके पुत्रका भी अधिकार बंद है; ऐसा ओरसे ही प्राप्त हो जाता था। इत्यादि चाहे जिस तरह क्यों न हो, वह प्रयत्न सब धन राजगामी करने का था।

११३. लेकिन आगे इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाही के समयमें कई राजाओं के राज्य भी ये वारसी में बादशाह को मिल गए। तब तो दत्तक का कानून भी गड़बड़ा गया, किंतु प्रातः स्मरणीय झांसी की रानी साहिबा लक्ष्मीबाई के दत्तक के झगड़े के बाद, जब साम्राज्ञी महारानी साहिबा विक्टोरियाने इस कानून को फिरसे उन्नत किया; तबसे सरकार औरस के बराबर दत्तक के भी अधिकारों की स्वीकृति मानती आई है। क्योंकि इस पुराने काल को देखते हैं तब गृह्य सूत्रोंमें ४८ प्रकार के प्रयोग यानी संस्कारों के विधान कहे हैं; किंतु उन में दत्त-विधानका प्रयोग कहा नहीं है न भाष्यकारोंने कहा है ऐसा ही प्रयोगों के निबंध ग्रंथोंमें भी दत्तक विधान नहीं कहा है। और नारद संहिता आदि मुहूर्त ग्रंथों में भी दत्तक लेने का मुहूर्त तक नहीं लिखा है। पुराणादिको में हजारों वंशोंका इतिहास का वर्णन है किंतु अपवाद रूपमें एक दो उदाहरणों के अतिरिक्त कहीं भी दत्तक पुत्र का नामतक नहीं है। जब जहां-कहीं वंश नष्ट

हुआ है तब वहां नियोगसे क्षेत्रज पुत्रको उत्पन्न करनेकी तजवीज की जाती थी। वस्तुतः देखा जाय तो उपरोक्त द्वादश-विध पुत्रों में दत्तक पुत्रका नंबर ८ वॉं है। ओर इसे ऊपर से प्रतिबंधक दायाद कहा है यानी औरस के अभावमें भी क्षेत्रज पुत्रादि उत्पन्न होनेसे इसका अधिकार पहुँच नहीं सकता। कलिवर्ज्य की बात धीरे-धीरे मिलाई जाने से भारत के इतिहास द्वारा पता चलता है, कि अब सिर्फ दो-तीनसो वर्षसे दत्तक का प्रचार अधिक हो गया। गृहसूत्रों में ४८ प्रकार के प्रयोग (संस्कार विधान) कहे हैं। किंतु दत्तक प्रयोग संस्कार भास्करादि अर्वाचीन ग्रंथों में यानी शाके १५०० के इधर के बने हुए ग्रंथोंमें है। इतना ही नहीं माधवाचार्य [शाके १०७२] के कथनमें ही "दत्तक ओरस के विना दूसरे पुत्र कलियुगमें नहीं" यह श्लोक कहा गया है। माधवाचार्य के पूर्व के बृहत्पाराशरीय पुराण आदिमें कहीं भी यह मत नहीं है।

११४. इससे सिद्ध हो गया कि यवनोंके राज्य में हिन्दू धर्म के नाश के साथ समाजका भी नाश हुआ। आपस में जाति पातिसे झगडे शुरू हुए तत्कालीन ब्राह्मणादि लोग घबराकर यवनों की नीतिके चालमें फँस गए। उसी समय कलिवर्ज्य की रचना की गई। और सच तो यह है कि इस को इतिहाससे अनभिज्ञ लोक प्राचीन ऋषिप्रोक्त ग्रथोंके वाक्य समझकर निबंध ग्रथोंमें लिखने लग गए।

११५. प्राकृतिक धर्म के अनुसार जो कोई स्त्री मोहवश यवनोंके या नीच जातिके वशमें आई या उसे संतान हो गई कि उसकी बदनामी कर देने पर हिन्दू लोग नष्ट हो गई, डूब गई, धर्म से बिगड गई, आदि कह कर उसे निकाल देते थे। साथ में धर्मशास्त्रीजी का कलिवर्ज्य का धरमधक्का लगनेसे वह निराश्रित अनाथ अबला फिर क्या कर सकती थी? आफत की मारी अपनी संतानको ले विधर्मियों के आश्रयमें रहती था।

स्त्रियोंमें नैसर्गिक शुद्धताका एक लक्षण।

११६. देखो प्राचीन ऋषियोंकी आज्ञा दिखाता हू, जिसकी इन कलि युगीन विद्वानों द्वारा दुर्दशा की गई है। जिसे देख कर पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि सत्य क्या है?

रजसा शुद्ध्यते नारी न चेत गच्छेत् विवर्णताः॥
यथा ग्राम मल ग्राही नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥५४॥
(अंगिरस स्मृति ५४)

स्त्री में जाति बहिष्कृत अवस्था आ ही नहीं सकती, क्योंकि यह महीनेके महीने रजोवती होनेसे शुद्ध हो जाती है। जिस तरह गांव के मल (मैले कुचैले जल) से नदी अशुद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि उसका वेग ही उसे शुद्ध कर देता है। ठीक यही प्रकार स्त्री का है। यह अंगिरा की आज्ञा है।

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेद कर्मणा।
नापोमूत्र पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहन कर्मणा॥
(अत्रि संहिता १९३)

जैसे अन्यान्य वेदोंके पढ़ने-पढ़ाने से ब्राह्मण, मोरियोंके जानेसे नदी, और दहनादि कृत्योंसे अग्नि, दूषित नहीं होती; ठीक उसी प्रकार जार कर्म से भी स्त्री दूषित नहीं होती।

न त्याज्या दूषिता नारी नासा स्त्यागो विधीयते।
पुष्पकालमुपासित्वा ऋतुकालेन शुद्ध्यति॥३॥

दूषित हुई स्त्री का त्याग मत करो इसका त्याग करने का विधान कहीं पर भी नहीं है। क्योंकि इसका पुष्प काल के समय जब ऋतु काल आकर प्राप्त होता है तब वह उस स्त्री को निःसर्गही शुद्ध कर देता है—

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासिमासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति॥४॥
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति।
रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति॥१०॥
[अत्रि स्मृति अ ५.१०]

अत्रि ऋषि की आज्ञा है कि-स्त्री में पवित्रता भी ओतः प्रोतहै। यह कभी भी किसी प्रकार से दूषित नहीं होती। क्योंकि दुष्कृतों को निकालने का साक्षात् नमूना महीने के महीने जो रज बहता है, सो है। जैसे भस्म से कांस्य पात्र और खटाई से तांबे का पात्र दिव्य और शुद्ध होता है, ठीक उसी तरह रजोवती होने पर स्त्री और वेगसे नदी शुद्ध होती है।

न दुष्येत संतता धारा वातोद्धताश्च रेणवः॥
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन॥
(आपस्तंभ स्मृति अ. २'३)

जिस प्रकार बहनेवाली संतत धार में कोई दोष नहीं है, ठीक उसी प्रकार स्त्री-वृद्ध-बालक यह किसी भाव दूषित नहीं होते।

कहाँतक कहें विषयांतर के भय से ज्यादा बढ़ाना ठीक नहीं, क्योंकि वेही ये श्लोक सब स्मृतिमें बार बार आये हैं। अत' इसी का बड़ा लंबा' चौड़ा पोथा तयार न हो जाय, इस लिए यहाँ इतना ही कहना बस है कि-अत्रि-यम-वसिष्ठ देवल-नारद, शातातप मनु, याज्ञवल्क्य आदि कुल स्मृतिओं की आज्ञा स्त्री के त्याग को सर्वथैव मना करती है।

११७. ऊपर जो हमने ऋषियों की आज्ञा दिखाई है उसके दिखानेका हमारा मतलब यह नहीं है कि, स्त्रियाँ दोष ही दोष करने लगे, या हम कोई उन्हें उत्तेजना कर रहे हों यह भी नहीं है। सच तो यह है कि हमें यह दिखा देना है और इस गरज से पाठकोंको यह बात दिखा भी रहे हैं कि पहिले ऋषि लोगोंकी आज्ञा कांटे के एक पलड़ेमें रखें; और दूसरी ओर आजकाल की अबलाओं पर बीतनेवाली गला-घोटी रखें सो उसमें कौनसा वजनदार और गंभीर रहस्य दिखना है।

११८. स्त्री को कैसे चलना, उसकी चालढाल फिर कैसी चाहिए यह प्रश्न धर्म-शास्त्र का है। सो हमने वैदिक धर्मशास्त्र नामक पुस्तक में इसकी गहरी छान-बीन की है। और वहां हमारा मत प्रतिपादन किया है कि हम को कैसा धर्म आवश्यक है। यहां तो हमें केवल खोटा और झूंटा निराधार कलिवर्ज्य प्रकरण, जो हमारे धार्मिक पवित्र भावनामें व्यर्थका तांडव मचा कर दृढ मूलक हो रहा है। यहां सिवा ऐसे कड़ी मात्राके उसका उच्चाटन नहीं हो सकता। इस लिए उसको निर्मूल बतानेके उद्देशसे यह उपरोक्त ऋषिआज्ञा दिखाई है न की उत्तेजना के लिए। अब यह हमें देखना है कि वैदिक जमानेमें हमारा सनातन धर्मका क्षेत्र कितना लंबा चौडा और गंभीर था किन्तु इसकी गला घोटी कैसी बुरी तरह होती गई, सो भी दिखाते हैं।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
ही धर्म भ्रष्ट हुए हमारे ही बांधव हैं। कहाँ तो वे वेद व राम कृष्णादि को मानने वाले गोरक्षक थे; और कहाँ वे वेद निंदक महम्मद व इसामासि को माननेवाले गोभक्षक बन गए।

चातुवर्ण्य में कलियुग के किये हुए उत्पात।

१२०. इसी वक्त से वर्णाश्रम धर्मका नाश शुरू हो गया। एक एक वर्णके सैंकडों खंड होकर जातिभेद शुरू हुए। कई विधवाएँ गर्भ छुपानेको दूसरे गांवोंमें जाकर भ्रूण हत्या कर देती या किसीको बालक दे देती थी। उन बालकों को वर्णसंकर की मोहर-छाप लगा देनेसे बढ़ते-बढ़ते हजारों जातियाँ होगईं। पहिले चतुवर्ण्य एक थे। बादमें सवर्णी विवाहवाले चारों वर्ण अलग २ हो गए। इसके भी बादमें अनुलोम प्रतिलोम की अलग अलग जातियाँ होकर उसमें भी उच्च, नीच, देश भेद, आचार भेद, संप्रदाय भेद, कर्मभेद, धर्मभेद, ग्रामभेद, रीति भेद, अंतमें भेदही भेदमें " आठ कनौजिये नौ चूल्हे " की कहावत से वर्णोंका तो नाम मात्र रहगया। हजारों जातीयाँ,लाखों उच्च नीच भेद;जिधर देखो उधर दृष्टि-गोचर होने लगे। कोई गांवमें मान लो एक हजार मुसलमान हैं, तो सबकी रोटी-बेटी एक तथा हजार हिन्दू हैं तो उसमें पांचसौ उच्च नीच भेद और रोटी-बेटी सबकी अलग २।

१२१. फिर आचार विचार का तो क्या पूछना है? न्यारी-न्यारी डफली और न्यारा न्यारा आलाप, न किसिका किसीसे मेल। पुस्तकोंकी उस समय छपाई न होनेसे निबंधकार व टीकाकार चाहे सो उस समय के अधिकारियोंके थोड़े आमिष से या भयसे हां साहब हमारी पुस्तक में ऐसा ही लिखा है कि यह कलि है; और इसमें यह बात मना है।

ऐसी भ्रामक कल्पनाओं से ही नीचे लिखी बातें कलि में वर्ज्य की गईं।

(१२) अघ संकोचन [प्रायश्चित्त के वक्त पातक का संकोच यानी दया]

(१३) अशौच में अस्थिसंचयन के बाद स्पर्श।

(१४) हीन जातिका अन्न (ग्रहण) लेना।

(१५) सत्शूद्रों के हाथ का बनाहुआ अन्न का भोजन।

(१६) यति का भिक्षा नहीं मांगना न भिक्षा देना।

(१७) नवोदकदशाह=नये पानी को दश दिन के अंदर लेना, यानी नये पानी का पीना।

(१८) शूद्र पचन क्रिया=रसोई बनाने के कामपर शूद्र को रखना।

(१९) थोडे जल के स्रोतमें के पानी से कुल्ला करना ये बातें भी बंद कर दी गई।

१२२. वैदिक कालमें तो अश्वमेधादि यज्ञोंमें मनुष्य सब जाति के एक जगह ही भोजन करते थे। स्मृति कालमें भी " शूद्रेषु दासगोपाल कुलमित्रार्द्धसीरीणः ॥ भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् " [याज्ञवल्क्य स्मृति ३]

अर्थात् शूद्रों में भी दास, (नोकर) गोपाल, [गाय चरानेवाला] कुल-मित्र, (पीढ़ीयों से मित्रता रखनेवाला या सब कुटुंब के लोगों का मित्र याने कुरमी) अर्धशीरी (पांतीदार) तथा जो सेवा के लिये अपना शरीर अर्पण कर दे ऐसा भक्त इनका अन्न भोजन करना योग्य है" किंतु कमलाकर भट्ट कहते हैं कि ' इदमामान्न परम् " यानी यह सूखे अन्न को लेने के बाबत है। वाहरे! कमलाकर, अन्न शब्द का अर्थ सूखा अनाज बतलाया। सूखे अनाज को धान्य कहते हैं। अन्न तो पकाए हुए अनाज का ही नाम है!

१२३. तथा ' नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वान् श्राद्धिनः क्वचित् ' ॥१॥ इस मनु वचन में " विद्वान् ब्राह्मण श्रद्धा विरहित शूद्र के हाथ का पकाया हुआ सिद्ध अन्न सेवन न करे। अर्थात् श्रद्धा रखनेवाले शूद्र के हाथ की रसोई खाय " ऐसा कहा है। और वराह पुराणमें भी लिखा है कि—

त्रिषु वर्णेषु कर्तव्य पक्वभोजनमेव च ॥
शुश्रूषामभिपन्नानां शूद्राणां च वरानने ॥२॥

अर्थात् " ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके और नोकरी करनेवाले शूद्रके हाथ से पकाए हुए अन्नका सब भोजन करें " किंतु कमलाकरजी कहते हैं कि—" सर्वं कलितर परमिति " यह चातुर्वर्ण्यकी एक रसोई का कथन कलि-युगके अतिरिक्त अन्य युगोंके लिए कहा गया है, कलियुगके लिये नहीं।

सुमतु स्मृतिमें कहा है कि—

" अपूपान् भक्षयेच्छूद्रायचान्यत्पयसा कृतम् ॥३॥ " अर्थात् शूद्रोंके बनाए हुए मालपुवे, पूरी, गुलगुले, और खीर वगेरे खाना चाहिये " किंतु कमलाकरजी कहते हैं कि " पायसे दोष एव शूद्र जले दोषोक्तथ्य। जल इत पोलिकादो दोष एव। हरितस्मृतिमें कहा है कि—

कन्दुपक्व स्नेहपक्व पायस दधि सक्तवः ॥ एतानि शूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत् द्विजैरेतानिभोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ॥४॥ अर्थात् शूद्रके पकाए हुए कन्द, तेल घीमें पकाए हुए पदार्थ खीर, दही, मट्ठा और सत्तु, आदि को तथा शूद्र के घरमें बने हुए अन्नको ब्राह्मणादि वर्णोंको भोजन करना चाहिये। किंतु कमलाकर कहते हैं कि ' आम शूद्रस्य पक्वान्नं पक्व मुच्छिष्ट मुच्यते " शूद्र के दिए हुए कच्चे (बिना सिझाये) अन्न को पकाया हुआ अन्न यानी सिद्ध अन्न को सीधा दाल (दाल, आटा वगैरेह) अन्न समझो। और पके हुए अन्नको जूंठा अन्न समझो " इसका तात्पर्य यह है कि शूद्रका दिया हुआ आटा दाल लिया तो उसे कलियुग्में शूद्र पक्वान्न का प्रायश्चित्त। और पका हुआ कोई अन्न खा लिये तो शूद्रोच्छिष्ट भोजनका प्रायश्चित्त। फिर क्या है:—

जले शूद्रः स्थले शूद्रः शूद्रः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले शूद्रः सर्वं शूद्रमयं जगत् ॥

१२४. सम्पूर्ण जगत् शूद्र मय दिखने लगा। क्योंकि इतिहास से पता चलता है, कि जबजब उस कालमें दुष्काल पड़ता था; उस आपत्ति से जैसेतैसे अपने प्राणों को बचाने के लिए किसीने कुछ अन्य जाति का खाया पीया, कि वह जातिच्युत। " अभ्यासे द्विगुणं। ज्ञाते चतुर्गुणं कलौ अघ संकोचाभावोक्तेः " दो बार खाने से दुगुना, जानकर खाने से चोगुना प्रायश्चित्त! वहां दया का क्या काम। क्योंकि कलिमें पातक को कम कैसे मानें! कर दो इसे जाति बाहर!! हर! हर! क्या यह न्याय!! प्रत्यक्ष में कच्चे अन्न को पक्का अन्न; और पवित्रता से किए को झूँठा मानना!! वाहरे कलिधर्म इसने हमारा सत्यानाश कर दिया। ओंह!! हमारे करोड़ों लोग विधर्मी बन गए। उक्त कलि-युगीन महा भूतोंने धर्म-धक्का देकर कई वंशों को जाति बाहर कर नष्टप्रायः कर दिया। अरे रे! श्रुति, स्मृति, पुराणों की पवित्र एवं समुज्ज्वल स्मृति आज्ञाओं का युगांतर के बहाने खून कर, विस्मृत एवं गंभीर ऐसे सनातन धर्म की गला घोंटी करके यवनों से नाना प्रकार की जागीरें, माल गुजारी, इनामदारी, ले ले कर यह शातातप स्मृति कहती है, तो यह वृद्ध का है, तो यह गद्य का है यह पद्य का है; ऐसे गद्दे पद्दे लगाकर समाज का नाश कर दिया। हर हर......।

१२५. धर्मशास्त्र में स्त्री को आधा शरीर और पुत्र को तो आत्मा यानी अपना स्वरूप ही कहा है। इस के अभावमें निपुत्रिकों को कितनी आपत्ति और कष्ट सहना पड़ता है वह कल्पनातीत है। किंतु जो उदार हृदय के पुरुष पराई पीड़ा का अनुभव करते है, उनसे कुछ छिपा नहीं है। जैसे स्त्री के विना ग्रहस्थाश्रम नहीं, ऐसे पुत्र के विना इहलोक व परलोकमें सुख नहीं। ऐसी आपत्तिमें नियोग विधि सभी धर्म शास्त्र ग्रंथों में लिखी है। वह भी न हो तो बारह प्रकार के पुत्रोंमें से कोई न होवे या न रहे ऐसा संभव नही। गत कलियुग में ऐसी २ आपत्तियों का सामना करना पड़ा है कि कुछ कहा नहीं जाता। उन आपत्तियोंके प्रतीकार के हेतु जो बातें धर्म शास्त्र में कहीं हुई त्रिकालाबाधित होते हुए भी उन को वर्ज्य कर, धर्मार्थ काम व मोक्ष को बाधा पहुंचानेवाली स्पृश्यास्पृश्य अभक्ष्याभक्ष्य व अगम्यागमनादि विचार शून्य बातें प्रचलित कर दी।

१२६. वस्तुतः जिस के करने से हमारी आरोग्यता, सुदृढ़ता कायम रह शारीरिक व मानसिक पवित्रता में धक्का पहुंचे वह अस्पृश्य और पोषक होवे, सो स्पृश्य। इसी तरह आहार के भक्ष्याभक्ष्य भेद कहे गए हैं। ऐसे ही गम्यागम्य विचार भी धर्म शास्त्र एवं काम शास्त्रमें कहा है। उसे त्यागकर सभी परगमन को वर्ज्य मानकर प्राकृतिक स्वभाव-वश प्रवृत्त हुए पुरुषों को जाति बाहर कर

त्याग देना यह कितनी धर्म की अज्ञानता का नमूना है। इसी का यह परिणाम है, कि आजकल हजारों लाखों जातिभेद खड़े होगए। साथ ही छुआछूत शुरू हुआ रसवती=रसोई के नामकी जगह वर्तमान में किसी के हाथ की नहीं खाते हुए स्वयं टिक्कड़ बनाकर खाने को "स्वयपाक" नाम तक कहने लग गए।

१२७. हम द्विज कहाते हैं। अनन्त तत्वों, कला कौशल्य व वैज्ञानिक बातों का शोध लगाकर मानव समाज के परिश्रम बचने के लिये व सामाजिक, धार्मिक, भौतिक व पार लौकिक उन्नति के लिये हजारों लाखों वर्षोंसे जो ज्ञान का संग्रह मानव समाजने किया है; उसमें का बहुतसा भाग ब्राह्मणोंने ही जगत् में प्रचारित किया है। किंतु इस कलियुग में जबसे शूद्र भोजनादि बंद करके ब्राह्मणोंने स्वयंपाक के लिये हाथमें चकला बेलन लिया, तबसे शास्त्रीय आचार्यों की जगह स्वयंपाकी आचारी दिखाई देने लगे। इसी के कारण वैदिक ज्ञान का लोप हो गया, श्रौतस्मार्त के प्रवर्तक ऋषियों की जगह संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य, स्मृति भारत पुराणादि की जगह वृद्ध, वृहत् नामधारी स्मृति व उप पुराणादि के प्रमाण माने जाने लगे। यह सब मिथ्याचार का फल है। क्यों कि छुआछूत के भयसे आडंबर रूप कार्यों में सब समय के अपव्यय होनसे सनातन वैदिक धर्म को देखनेके लिये इनको समय ही कहा मिल सकता है। अब भी तत्वज्ञान, विज्ञान व कलाकौशल्य के शोधक वे दिखाई देते हैं, कि जिन को प्राचीन व वर्तमान स्थितिकी तुलना करनेको समय मिलता है।

१२८. इस समय भी पाश्चात्य देशों से उक्त विद्याकी पढ़ाई व वैज्ञानिक ज्ञान का लाभ हो सकता है, किंतु उक्त छुआछूतके भयसे कलि वर्ज्य प्रकरण में

समुद्रयात्रा स्वीकार=	नाव में बैठकर समुद्र में गमन करनेवाले का स्वीकार
दीर्घ काल ब्रह्मचर्य=	अधिक वर्षोतक ब्रह्मचर्यका धारण
वानप्रस्थाश्रम=	गृहस्थाश्रम के बाद सेवन करनेका तीसरा आश्रम
सन्यास (कमंडलू) धारण=	चौथा आश्रम
महा प्रस्थान-गमन=	देहकी परवाह न कर बड़े शोधके लिये गमन
दूर तीर्थ यात्रा=	दूर देश की तीर्थ यात्रा

आदि बातें भी बद करदी हैं। किंतु शिष्टाचारसे इन में से कोईभी बात अभी तक बंद नहीं हुई है। इतना ही नहीं दशवें शतक में बने हुए स्मृति मुक्ताफल नामक निबंध ग्रंथ में दक्षिणोत्तर देश भेद से जो २ बातें प्रचलित हैं वे ये हैं।

"पंचधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतः । यानि दक्षिणतस्तान्यनुव्याख्यास्यामः । ये वै तदनुपनीतेन सहभोजनं, स्त्रिया सहभोजनं, मातुलसुता गमनं, पितृस्वसृदुहितृगमनमिति । अथोत्तरतः ऊर्णाविक्रयः । शीधुपानमुभयतोदद्भिर्व्यवहारः, आयुधीयकं समुद्रयानमिति तदितर इतरस्मिन् कुर्वन्दुष्यतीति " बौधायनः " इत्येते दाक्षिणात्यानामविगीतानि धर्मतः ॥ उदीच्या नामपि तथा ख्यापि गीतानि धर्मतः ॥१॥ इति व्यासः "

१२९. अर्थात् विंध्याचल के दक्षिणमें " अनुपनीत के साथ भोजन, स्त्री के साथ भोजन, मामा की एवं पिता की बहिन की कन्या के साथ विवाह " यह बातें शिष्टाचार से मानी जाती है। ऐसा ही उत्तर में " ऊनका वेचना, मादक पदार्थ का सेवन, ऊंट आदि [उभयतोदतः] के ऊपर बैठने का व्यवहार ओर तलवार आदि आयुधों का धारण करना, समुद्र यात्रा " ये बातें शिष्टाचार प्रचलित है। दूसरे देशमें वर्ज्य है।

१३०. इसमें उत्तर के लोग समुद्र यात्रा किया करते हैं। इसलिये यह वर्ज्य नहीं यही तात्पर्य न होकर आयुध लिये हुए रहते हैं तब यह लोग समुद्रयात्रा से दूर भी गए तो भी अपने धर्म को नहीं छोडेंगे इस उद्देश से उनका शिष्टाचार मान्य किया है। क्योंकि राजतरंगिणि से मालूम होता है कि विक्रमादित्यने योरप देशमें गमन किया था। किंतु कमलाकर भट्टने तो " द्विजस्याब्धौ तु नौ यातुः शोधितस्यापि संग्रहः " नाव में बैठकर समुद्रमें यात्रा करनेवाले द्विजको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कियेबाद भी उसका कलि में वर्ज्य कह दिया है। इससे मालूम होता है कि कमलाकर के (सवत् १६६८) समय नौका यानसे समुद्र गमन में बहुत काल लग जाने के कारण गए हुए लोगों का यहां फिरसे आगमन होनेपर यह उनका भ्रष्टाचार समझकर कमलाकरने उक्त प्राचीन आधार को बताते हुए कहा है।

१३१. क्योंकि वह समय ऐसा था कि ब्रह्मावर्त को ही यह आर्यावर्त मानकर उसके बाहर के भारतीय देशोंमें भी जाना निषिद्ध माना है। जैसा कि स्मृति चंद्रिका नामक आधुनिक निबन्ध ग्रंथमें देवल बौधायन के नामसे " सिंधु सौवीर सौराष्ट्रमावर्त्यं दक्षिणा पथम् ॥ तिर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति " " अंगवंगकलिंगाध्रान्गत्वा संस्कारमर्हति " अर्थात् हैद्राबाद आदि सिंधदेश, सूरत, काठियावाड=गुजरात, मालवा=नेमाडदेश और दक्षिण भारत इनमें तीर्थयात्रा के विना कोई जावे तो फिरसे उसका यज्ञोपवीत संस्कार करे ऐसे ही अंग वंग कलिंग व आंध्रदेशों के संबंधमें कहा है।

१३२. किंतु अब वह समय चला गया अबतो सब ही भारत वर्ष आर्यावर्त माना जाता है। सुदूर देशोंमें भी रेल व मोटर द्वारा शीघ्रतासे मनुष्य

जा सकता है। अतएव गुजरात बंगाल आंध्र देशोंमें जानेवाले ही नहीं, वर्षोंतक रहनेवाले लोग संस्कार हीन नहीं हो सकते। इतना ही नहीं विद्याभ्यास एवं व्यापार आदि के उद्देशसे यूरप, आफ्रिका व अमेरिका आदि सुदूरवर्ति देशोंमें जाना आना बोट के द्वारा सुलभ होने से ब्राह्मणादि चारों वर्ण वहां की यात्रा करने लगे हैं।

१३३. यदि कहें कि कई दिनोंतक बोटमें बैठने से स्नान संध्या वैश्वदेवादि का कई वर्षोंतक लोप होने एवं अभक्ष्याभक्ष्य और स्पृश्यास्पृश्य होने से द्विजाति से भ्रष्ट हो जाता है। फिर ऐसे भ्रष्ट को प्रायश्चित्त देकर भी कैसे शुद्ध कर सकते है।" इस प्रश्नके उत्तर में यहां इतनाहीं कथन पर्याप्त है, कि जो हमारे धर्म के १४ प्रमाण भूत ग्रंथ माने जाते हैं; उन सब में जो कुछ धर्माचार कहा है। उस मानव धर्मसे ये लोग भ्रष्ट नहीं होते है। क्योंकि स्नान, स्वच्छता, पवित्रता, उन देशों में तथा बोटमें बैठे हुए भी करते हुए दिखाई देते है। परमात्माका ध्यान रूप संध्या विद्याभ्यास रूप स्वाध्याय ही नहीं वेद, ब्राह्मण एवं सूत्र ग्रंथोंका परिशीलन भी कई लोग वहाँ भी कर सकते हैं। फर्क इतना ही है कि-अन्यान्य ग्रंथोंमें लिखे हुए "तदर्धमातुरे प्रोकमातुरस्यार्धमध्वनि" अर्थात् उक्त शौचाचार आतुर अवस्था में आधा और रास्ते मे उससे भी आधा करे" इस कथनानुसार आपत्तिग्रस्त भारतीय लोग यहां भारत में भी स्नान, संध्या, ब्रह्मयज्ञ यथा समयपर कहां कर सकते हैं। अन्नसत्र (बोर्डिंग) में भोजन करनेवाले छात्रोंको और बडे शहरों में रहनेवाले व्यापारियोंद्वारा दावा-वासा में परपाक भोजन करनेसे वैश्वदेव कैसा बन सकता है। किंतु जब कि इसका हेतु देखा जाय तो इन में से कई बातें असमर्थताके कारण नहीं बन सकती है। जब से परचक्रके दास्यत्व में भारत पड़ गया है, तबसे अपना जीवन ही कायम रहनेके लिये इसे बडा दीर्घ प्रयत्न करना पड़ रहा है। इसकी लक्ष्मी परद्वीपोंमें जानेके कारण यह हीन-दीन हो रहा है। दरिद्रता इतनी बढ़ गई है, कि खानेको पेटभर इसे अन्न नहीं मिलता है। अतएव इस बुभुक्षित एवं दारिद्र देशके लोग विद्या, कला-कौशल्यता आदि ज्ञान संपादन के लिये या धन संपादन के लिये समुद्र यात्रा कर विदेशमें गये, तो भी अर्थ शास्त्रके पोषक कार्य के लिये अर्वाचीन दृष्टि के धर्म शास्त्र के कुछ बाधक बनते हैं; किंतु उतने परसे ये लोग भ्रष्ट एवं पतित नहीं हो सकते और इनमेंसे कई लोग तो स्वार्थ सिद्धिके लिये ही नहीं देशकी उन्नतिके लिये आँग्लविद्या विशारद हुए है। और देश व धर्मके लिये प्राणोंको न्योछावर करनेको तयार हैं। सो यह क्या प्रायश्चित्त कम है।

१३४. यद्यपि भारत वर्ष में कोर्ट, म्युनिसिपालिटी, मॅजिस्ट्रेट, पोलिस कचेरी व गवर्नर ऑफिस आदि में म्लेच्छोंका संसर्ग एवं स्पर्शास्पर्श जो होता

है, उससे कई गुणा अधिक संपर्क द्वीपान्तर गमन में है। तथापि आगे जब कुछ हमें स्वातंत्र्यका सुख प्राप्त कर; हमारे बिगड़े हुए धर्म की उन्नति करना है, तब धर्म के आवान्तर भेदों की ओर उपेक्षा करनी ही चाहिये। मैं तो यहाँ तक हमारे श्रुति व स्मृति ग्रंथोंके आधार से सिद्ध करके बतानेको तयार हूं कि जिन जिन आचरणोंसे हमारा भारत वर्ष स्वतंत्र हो जाय उन कुल आचरणोंको करना हम भारतवासियोंका परम-धर्म है। और यदि अभीतक हमारे दीर्घ दर्शी भारतीय लोग विद्याविशारद वैदिक धर्मके तत्वानुसार न चल केवल कलियुगीय निबंध कारोंके कल्पना को मुख्य मानकर चलते और द्वीपांतर में जाकर भौतिक भारत की उन्नति नहीं होने देंगे ऐसा कहते तो जिस तरहकी कई जंगली जातियां संसारमेसे नामशेष हो गई हैं; ऐसी ही हमारी दशा कालान्तर में हुए विना नहीं रहती।

१२५. प्राचीन कालमें भारत वह था की मान्धाता आदि राजाओं का राज्य सात द्वीपवती पृथ्वीमें था तब क्या लोग द्वीपान्तर गमन नहीं करते थे। मनु-स्मृति [अ. २] में कहा है कि—

अस्मिन्देशे प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वे मानवाः ॥

अर्थात् " इस देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के पास से संसार के मानवोंने अपना अपना मानव धर्म सीखा है। " तो क्या आवागमन के विना भारत संसार का गुरु हो सकता था? कदापि नहीं।

१२६. इस बात की साक्षी इतिहास दे रहा है कि ऋग्वेद के मंत्र और पार्शी लोगों के झेंदा वेस्ता के मंत्र एक ही अर्थ के संबंधमें कहे गये हैं, इस से वह छंदावस्था ही का अपभ्रंश झेंदावेस्ता है। खाल्डियन देशमें जमीन को खोदकर निकाले हुए इष्टकाओं के कीलाकृति लेख हमारे यहां की चितियों की इष्टकोपधान की तुलना में सादृश्य बता रहे हैं। वास्ते बहुत प्राचीन काल से नौका गमन की कला प्रचलित थी। इसी के द्वारा द्वीपांतरों में भारतियों का आवागमन होता रहा है ऐसा अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है।

प्रासंगिक रीतिसे यहां अब हम एक बात यह भी कह देते है कि इस से आगे ऐसा होनेवाला है कि एक दिन संसारमें वैदिक धर्म की ही स्थापना होगी; क्योंकि सच्चा मानव धर्म एक वैदिक धर्म ही है। अतएव वैदिक मंत्रोंकी सत्य अर्थ जब कि इस सत्य युगमें जगत् के सामने आजावेगा तब इस के महत्व को देखकर द्वीपांतर के लोग भी इसे स्वीकार कर सकेंगे। किंतु यह कार्य भी भारत के वीर पुरुषों के द्वारा ही होगा जो कि द्वीपांतरों में इसका प्रचार करेंगे। तब ही धर्म और व्यवहार इनका एकीकरण हो जावेगा अस्तु।

क्या वैदिक कालमें पशुहिंसा थी ?

१३७. वैदिक मंत्रों का अर्थ व यज्ञ प्रयोगों के हेतु को भूलने से ही कलिवर्ज्य में ये अनुपयुक्त बातें कही गई है कि:—

१ मधुपर्क में पशु वध नहीं–गौका दर्शन और उत्सर्ग स्तवन।
२ सोमक्रय–यानी चंद्र की स्थिति को जानकर प्रगट करने का प्रयोग।
३ नर-मेध– यानी विराट् पुरुष का स्तवन पुरुष सूक्त पाठ।
४ सौत्रामणि में–काल ज्ञान प्रयोग। [सुरा का प्राशन नहीं]
५ पशु मेध यानी छंदशास्त्र से गणना करने की पद्धति एवं यज्ञ प्रयोग।
६ अश्वमेध यानी उच्चैश्रवा और अश्व नामक तारकापुंजों के स्तवन के अनुरूप अश्व के अंगप्रत्यंग का स्पर्श करते हुए घृत आदि आहुति का देना।
७ महामख–यानी सोम याग वगैरह के श्रौत यज्ञ।
८ शामित्र कर्म क्षत्रियादि के लिये कराए जानेवाला कर्म।
९ मुखाग्नि धमन क्रिया–यानी फूँक देकर अग्नी को प्रदीप्त करना।
१० अरणि परिग्रह–यानी घर्षण द्वारा अग्नि को प्रगट करने के साधन को रखना।
११ गो मेध–यानी गो को स्पर्श करके घृत आदि की आहुती का देना।
१२ लेह–यानी आहुती देकर बचे हुए घृत का प्राशन।
१३ श्राद्धमें–मांस भोजन नहीं; श्रद्धा पूर्वक पितृ उद्देश से अन्न का पिंड दान।
१४ सत्र दीक्षा–यानी बहुत दिनों के यज्ञ की दीक्षा।

ऊपर जो हमने अर्थ बताया है, सो यद्यपि नव्य ग्रंथ टीकाकारों के कथन से यह हमारा कथन विरुद्ध है। परंतु ऐसे प्रयोगों में जो जो मंत्र कहे जाते हैं उस प्रयोग के अन्यान्य कुल मंत्रों को देखने से सिद्ध होता है, कि वही अर्थ ठीक है जो कि ऊपर हमने बताया है। इस के लिये हमने स्वतंत्र रीति के अलग २ ग्रंथ बनाए हैं। किंतु यहां भी एक दो उदाहरण देकर उसका दिग्दर्शन मात्र करा देते हैं।

१३८. हलायुधाचार्यकृत ब्राह्मण-सर्वस्व की विवाह पद्धतिमें भी ऐसा ही लिखा है कि—

" ततो गो दर्शने पारस्करः प्रत्याह माता रुद्राणामिति तत्रमंत्रो यथा " माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिक्तिुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ठ मम चामुष्य च पाप्मा हत ॐ उत्सृजत तृणान्यत्तु ॥ "

मूल मंत्रका= अर्थ यह है कि—

चिक्तिुषे जनाय=जिज्ञासु पुरुषोंके लिये
प्रनुवोचं=हम कहते हैं कि
रुद्राणां माता=पशु बैल आदिकी प्रसव करनेवाली
वसूनां दुहिता=धन संपत्तीको देनेवाली
आदित्यानां स्वसा=सुस्वरूप व तेजको करनेवाली
अमृतस्य नाभिः=अमृतरूप पंचामृतके पदार्थोंका उत्पत्ति स्थान
अनागां, अदितिं, गां=और अखंडित सौख्यको देनेवाली पवित्र गौ को
मा वधिष्ठ=कष्ट मत देओ यानी ताड़न मत करो
मम च अमुष्य च=और यह मेरा और इस यजमान का
पाप्मा (पाप) हत (नाशय)=पातकको दूर करे
अत्तु तृणानि=यह घास को चरे
ॐ उत्सृजत=ऐसी इसे छोड देवो

१३९. जबकी गौ के आलभन यानी प्राप्तिके लिये उपरोक्त अर्थका मंत्र कहा जाता है। वस्तुतः वैदिक समयमें अज्ञानको पाप्मा कहते थे। इसलिये पाप्मानं हिनोमि पाठका अर्थ भी, अज्ञानको दूर करता हूं; ऐसा ही होता है। इसीके पूर्व २५ वें सूत्रके अर्थ में गा अर्थात् इंद्रियां इसी के पूर्व सूत्रसे अर्थ ध्वनित होता है, कि गौ याने इंद्रियां उनका आलभन यानी स्पर्श गवालभन कहाता है। क्योंकि सूत्रके भाष्य में लिखा है कि ' वाङ्मे आस्येऽस्त्विति करामेण मुखं स्पृशति, नसोर्मे प्राणोस्तु, अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु, बाह्वोर्मे बलमस्तु, ऊर्वोर्मे ओजोस्तु अरिष्टानि मेंगानितनू तन्वा मे सहसन्त्विति शिरः प्रभृतीनि पादान्तानि सर्वाण्यङ्गान्युभाभ्यां हस्ताभ्या आलभेत ॥२५॥ न तु एवं अमुना प्रकारेण अमांस्तोऽर्घःस्यात् ॥२९॥ अधियज्ञं आधिविवाहं कुरुत इत्येन ब्रूयात् ॥३०॥ "

१४०. अर्थात् मेरे मुख में (उत्तम) वाणी होवे ऐसा कहकर दाहिने हाथसे मुखका आलभन=स्पर्श करे। ऐसे ही नासिका में प्राण की स्थिति, नेत्रोंमें चक्षुः इद्रियकी, कानों में श्रोत इंद्रिय की, बाहु में बल की, ऊरु में ओजकी स्थिति हो कर मेरे अंग अनुपहत याने शरीर की तन्दुरुस्ती रहे ऐसा शिरसे आरंभ कर, पाँवतक के आठों अंगोंको दोनों हाथों से स्पर्श करे ॥२५॥ अपने शरीरके आठों

अगोका इस प्रकार आलभन स्पर्श करनेसे यही अथवा अर्थ अमारा नहीं हो सकता इसी प्रकार हरएक यज्ञ में व विवाहमें करना चाहिये।

१४१ इस तरह अपने शरीरका आलभन और गो का दर्शन या उत्सर्जन करनेसे इस में न तो हिंसा होती है और न अर्घ होता है। वस्तुतः प्रयोग में देखा जाय तो 'अर्घार्घ्योऽर्घः' बोलकर पानीका अर्घ वर के हाथ में देते हैं तब 'समुद्रवः प्रहिणोमि स्वा योनिमभिगच्छत ॥ अरिष्टास्माकं वीरा मा परा सेचिम पयः" इस मन्त्रसे वर पृथ्वीपर जल डाल देता है यह तो अर्घ है। और "मधुपर्कं दधिमधु घृतमपिहितं कांस्येन ॥४॥ इस से मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः बोलकर यजमान के हस्तास्थित मधुपर्क को वर खोलकर "मित्रस्यत्वा चक्षुषा प्रतीक्षे" इस मन्त्रसे देखकर "देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि" इस मन्त्र से अपने हाथ में लेकर 'यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यं तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि" इस मन्त्र से वर मधुपर्क का प्राशन करता है। इस मन्त्र का अर्थ है कि 'जो मधु (शहद) से बना हुआ मीठा और सुंदर अन्न आदि का मैं सेवन करता हूं तो वैसे ही अब मीठा सुंदर ही भोजन करनेवाला हूं।

१४२ इससे वर अपनेको स्वयं अन्न सेवी कहता है। इस से स्पष्ट होगया कि इस मन्त्र के रचना कालमें चावल आदि अन्न पैदा होने लग गया था ‡ परन्तु गुड या शक्कर का बनाना उस समय शुरू नहीं हुआ था न कहीं इक्षु (खाँड) का नाम है। इतना ही नहीं आज जो पंचामृतमें यानी शर्करा के स्थान में "अपां रस मुद्वयस सूर्य सत समाहितम्" मन्त्र कहा जाता है, इस में इक्षु या शर्करा का नाम या भावार्थ तक भी नहीं है। इस से ज्ञात होता है, कि उस वैदिक कालमें मधु याने शहद से ही मीठा पक्वान्न बनाया जाता था। जो कि ऊपर दधि मधु घृत लिखा है।

१४३ इस तरह "अन्नादो असानि" में अन्नका भोजन करनेवाला हूं ऐसे मन्त्र द्वारा प्रतिज्ञा रूप कथन करनेवाले वर को, क्या कोई भी वैदिक मन्त्र के आधार से मांस भोजी बता सकते हैं? कदापि नहीं!! उसमें भी फिर आगे गो के दर्शन में गौ की कितनी महिमा गाई गई है, कि उस को साक्षात् देवताओं की मा बेटी व भगिनी (बहिन) का रूप बताकर; यानि भक्तिपूर्वक उसका पालन करें ऐसा बता दिया है। और कोई भूल करके भी ऐसा काम न कर ले इस लिये उसको कष्ट न देवें इस प्रकार हिंसा का निषेध भी कर दिया है।

‡ [illegible] अन्न [illegible] अन्न के [illegible] को बनानेवाले कई वैदिक मन्त्र हैं।

१४४. अब जब सिद्ध हो गया कि मंत्र के अर्थ और प्रयोग के देखने से ही मधुपर्क में गो-हिंसा का निषेध है, तब कलियुगमें ही बंद किया गया ऐसा कहना अयोग्य है। क्योंकि यह तो बहुत प्राचीन काल से अर्थात् जब से अन्न पैदा होने लग गया और वह दुकान व हाटमें मिलने लग गया तभी से यह बंद हो चुका है; जो कि बंद करने के अर्थ में ऊपर मंत्र कहा गया है।

वेदार्थ के संबंध में नया आविष्कार।

१४५. इसी तरह नरमेध, अश्वमेध, अजमेध व पशुयाग के संबंधमें समझना चाहिये। वाजस संहिता [अध्याय ३६] में जो पुरुषसूक्त कहा जाता है वे ही नरमेध के मंत्र हैं। उनका अर्थ देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि परमात्मा को पुरुष मानकर सृष्टि कि उत्पत्ति बताई है। "सहस्र-शीर्षा पुरुषः" इत्यादि मंत्रों में अनंत शिरवाला व अनंत नेत्र, पांव आदिवाला पुरुष उसका मेध [वेध] ध्यान कहा है। अश्वमेधमें तो धनिष्ठा से उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र के बीचमें जो उच्चैःश्रवा नामक तारकापुंज है; उसका विशद रूपसे वर्णन करते हुए उन मंत्रों से हवन करना कहा है। तथा आगे अश्वमुखाकृति अश्विनी नक्षत्र को आरंभ कर के सारे ज्योतिर्गोल का निरूपण किया है।

१४६. जिस तरह आजकल वेद मंत्रों का अर्थ किया जाता है वह सत्य अर्थ नहीं है। क्योंकि उस कालमें जिस अर्थ में जो शब्द कहे जाते थे,उन शब्दों का अब दूसरा ही अर्थ किया जाता है। तब अब के अर्थ-द्योतक शब्दों का उस समय अर्थ नहीं हो सकता। किंतु उस कालमें जिस अर्थ में वे शब्द कहे गए हैं, उन्ही के अनुसार हमने वेद मंत्रों का अर्थ किया है। जैसे २७ नक्षत्र देवता ही वैदिक देवता है। वेद के मंत्रों में बहुधा इन ही तारका पुंज देवताओं का वर्णन है। ऐसे ही काल-मापन के लिये कई यज्ञ किये जाते थे। उसमें मेष राशिसे आरंभ होनेवाला यज्ञ अजमेध कहाता था, वृषभ राशिसे आरंभ होनेवाला गोमेध। मिथुन राशिसे नरमेध यज्ञ हुआ करते थे। अन्न को वाज कहा है; तब अन्न और जल के दान विधि को वाजपेय कहते थे।

"अग्निः पशुः वायुः पशुः सूर्यः पशुः [वा. सं. २३.१७] अर्थात् अग्नि, वायु, सूर्य आदि ज्योतियों को पशु कहा है। इन ज्योतियों की पहिचान करना उस समय मुख्य कर्तव्य होने से उपनयन प्रयोग में "अथैनंसूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति [पा. गृ. सू. २.२.१५] और यही विवाह प्रयोग में [पा. गृ. सू. १.८.३] तथा "अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति" सायं सूर्यास्त होनेपर ध्रुव को बता-

देना कहा है। अर्थात् सूर्य व ध्रुव की पहिचान होनेपर अन्यान्य ज्योतिर्गोल रूपी देवताओं की पहिचान करा देते थे बस इन्हें ही पशु कहा है। इन के संबंध के याग को पशुयाग कहते थे।

१४७. ऐसा ही सोमयाग के संबंध में है। सोम यानी चंद्रमा उसके स्वरूप की वेदीपर होम करके अमावस्या को चन्द्रका अभाव बतलाकर; अष्टमी के समय अर्धचंद्र कुंडसे और पौर्णिमा के समय वृत्तकुंडसे स्थिति बतलाकर और १६ ऋत्विज् के धिष्ण्यों से नक्षत्रोंपर सोमकी स्थिति और सोम वल्ली के शकट द्वारा रोहिणी शकट का अंतर बताया जाता है। सोम वल्लीके पत्ते तिथियों के अनुसार कम ज्यादा होनेसे उस वल्ली का होम व उसके रसका पान कहा है। सोम रसका यहाँतक प्रभाव है कि चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रंथोंमें सोमपानसे काया-कल्प होना लिखा है। और इसके पूज्यत्व के कारण चरू (भात) आदि का होम करनेपर बचे हुए भाग को प्राशन करनेवाला यजमान सोमप और इसके खीर के मुआफिक चाटने को " लेह " कहते हैं। और नक्षत्रोंमें किस नक्षत्रपर सोमकी स्थिति है इसी को सोमक्रय कहते हैं इस प्रकार के बड़े यज्ञोंको महामख, उसके आरंभ को सत्र दीक्षा कहा है।

आयुर्वेद में कहे अनुसार जैसे आसव व अरिष्ट बनाए जाते हैं उसी प्रकार के अर्क निकालने के प्रयोग को " सौत्रामणि " कहा है।

१४८. इस प्रकार वैदिक मंत्रोंके अर्थ से उपरोक्त अर्थ निकलता है। वह सब हमने अनेक प्रमाणों द्वारा पूर्व प्रकरण में बतादिया है। इस प्रकारके तत्व को भूल जानेके कारण ही आज वेद विद्या का न्हास हो रहा है।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मइद्ध्मः शरद्धविः (वा. सं. १६'१४) अर्थात् वसन्त ऋतुरूप घृत, ग्रीष्म ऋतुरूप समिधा, शरद् ऋतुरूप हवनीय द्रव्य को " देवा यद्यज्ञंतन्वानाऽअबध्नन्पुरुषं पशुम् " और यज्ञोंके करते करते दिव्य ज्ञान वाले पुरुष रूप परमेश्वर को जान गए। इस अर्थ को भूलकर अबध्नन् की जगह अवध्नन् कहते हुए बांध दिये कहने लग गए। बस इसी प्रकार अन्यान्य स्थलों में अर्थका विपर्यास करते हुए यज्ञ में पशु वध करना समझने लगे परंतु आगे उपनिषद् काल में भी " मन्युः पशुः काम आज्यं " आदि प्रमाणों से क्रोध रूप पशुको काम रूप घृत के साथ हवन कर दे याने काम क्रोध को नष्ट कर दंव ऐसा त्रिसुपर्ण आदि में कहकर यज्ञ में हिंसाका निषेध बता दिया है।

१४९. ये सब श्रौत कालकी बातें हैं। आगे स्मृति काल में यज्ञों के स्थान में वैश्वदेवादि विधि शुरू हुई। जो कि पारस्करगृह्यसूत्र के साथ आचार्योंने परिशिष्ट के रूप में चढ़ी हैं। उसी में " श्राद्धसूत्र " नामक प्रयोग में अन्न [भात] शाक कंदमूल फलों से श्राद्ध करना कहा है।

१५०. स्मृति ग्रंथों में भी स्पष्ट कह दिया है कि—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥ समुत्पत्तिं च मांसस्य वध-बन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९॥ (मनुस्मृति अ. ५)

अर्थात् प्राणियोंको हिंसा किये विना मांस मिल नहीं सकता और प्राणि-वध करनेसे पुण्य नहीं होता इसलिये मांस को वर्जित कर देवे ॥४८॥ जब कि इसकी उत्पत्ति ही देहधारी के वध और बन्धन से होती है। इन सब बातों को देखकर संपूर्ण प्रकारके मांस के भक्षण को त्याग देना चाहिये।" ऐसा मानव-धर्मशास्त्र में कहा है। आगे (अ. ६ में) तो यहां तक कहा है कि-

अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ॥
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥७५॥

अर्थात् वैदिक कर्म भी अहिंसा रूप कहे गये हैं। तब इंद्रिय लोलुपता को त्याग कर उनको करते रहने से तथा बड़ी तपश्चर्या करने से वे ईश्वर के परम पद को प्राप्त होते हैं।

कात्यायन स्मृति [१.१८ पृ. ४४] में श्राद्ध के संबंध में लिखा है कि—

"वासिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥" वसिष्ठ ऋषि की कही श्राद्धविधि से श्राद्धमें निरामिष अन्न को लेना चाहिये अर्थात् मांस को श्राद्धमें भी लेना नहीं क्योंकि अन्न से ही श्राद्ध सुसंपन्न होता है।

श्राद्ध प्रकरणमें मनुस्मृति [अ. ३.२७२-२७४] में भी "आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः" "पायसं मधु सर्पिर्भ्याम्" मुनियों के सेवन करने लायक वनस्पति जन्य अन्न से श्राद्ध करने पर पितरों को अनन्त काल तक तृप्ति होती है। और गौ के दूध से बनी हुई खीर, मधु और घृत से ही पितर प्रसन्न होते हैं।

इस से सिद्ध होता है कि जब से अन्न पैदा होने लग गया उस प्राचीन कालसे ही श्राद्ध में मांस सेवन वर्ज्य कर दिया गया है। सो यह कालि में ही वर्ज्य है अन्य युग में नहीं ऐसी बात नहीं है।

१५१. इसी प्रकार "अरणि-परिग्रह" और "मुखाग्नि धमन क्रिया" याने घर्षण से अग्नि को पैदा करनेके काष्ठ की अरणिका उपयोग और मुँह से फूंक देकर अग्नि को प्रज्वलित करने के विधान भी लौकिकाग्नि, सूर्यकांतज अग्नि मिलनेसे प्रकारान्तर में समझे गए हैं।

१५२. इस तरह कलि-वर्ज्य प्रकरण में अन्य भी कई बातें कही गई है जैसे- 'धर्म युद्धे द्विज हिंसा,' ब्रह्महत्या, (खून) करनेपर भी द्विज को मरणान्त दंड, आपद्वृत्तिका स्वीकार, एक दिन का भी घर में अन्न न रहे ऐसी स्थिति, गुरुके

इच्छित दक्षिणा, प्रयागादि तीर्थोंमें या अग्नि से देहत्याग (आत्मघात) सायंकाल में यति को घरमें रहना, पिता पुत्र के विवाद में साक्षी को दंड व संसर्ग दोष यह सर्व साधारण नीति से एवं धर्मशास्त्र से वर्ज्य की हुई बातों को भी कलिवर्ज्य की उपयोगिता व आवश्यकता बताने के लिये वर्ज्य की गई है। क्यों कि ऐसा कहीं भी लिखा नहीं है कि कृत, त्रेता व द्वापर में एक का अपराध सब देश, ग्राम या कुटुंब को भोगना पड़े। हाँ, यह बात तो सही है कि स्वतंत्र देशों के अपराधी उसी देश में दंडित हो सकते हैं कि जिस देश में उसने, अपराध किया है इससे " कलो कर्तवलिप्यते " इत्यादि वचन युगकी उपयुक्तता के द्योतक हैं। बाकी कृतादि युगों में भी कर्ता को ही दोष लगता था अन्य को नहीं।

१५३. यहां तक कलि वर्ज्य की बातें कही गई। किंतु यह कोई श्रुति, स्मृति व भारतादि पुराण ग्रंथों में कहीं नहीं है जैसे जैसे टीकाकारोंको ठीक दिखा वैसे-वैसे धर्म ग्रंथों में मिलाई गई हैं। फिर भी वह अपूर्ण व संबंध रहित होनेसे वृहत्, वृद्ध नामक विशेषण लगाकर नये २ ग्रंथ बनाकर उन में कही है।

ब्राह्मणोंपर भी कलि की वक्र दृष्टि।

१५४. इस कलियुगी धर्मने उछाल खाकर ब्राह्मण वर्णमें बहुत से ब्राह्मणों को व्रात्य यानी संस्कार हीन बताकर ब्राह्मण समाज में झगडा पैदा कर दिया है, जो कि कलियुगारंभमें भागवत पुराण में प्रक्षिप्त किये अध्याय में कहा गया है—

सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूद्रा अर्बुद मालवाः।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥३८॥

[भाग. पु स्क. १२ अ. १]

(१) सौराष्ट्र= काठियावाड का गुजरात देश
(२) आवन्त्य= उज्जयनी का उत्तरीय भाग, नेमाड
(३) आभीर= वऱ्हानपुर का पश्चिमीय भाग, खानदेश
(४) शूद्र देश= बुंदेलखंड, झांसी, चित्रकूट आदि के समीप का प्रदेश
(५) अर्बुद= आबू के पहाड़ी प्रदेश
(६) मालव= इन्दौर आदि मालवा देश

अर्थात् गुजराती, नेमाड़ी, खानदेशी, बुंदेलखंडी, काश्मीरी, नेपाली, मालवीय और नार्मदीय ब्राह्मण संस्कार हीन होने से व्रात्य होवेंगे।

इस तरह के प्रक्षिप्त श्लोकों को अर्वाचीन टीकाकारोंने एवं निर्णयसिंधु आदि निबंधकारोंने लेकर देश भेदानुसार ब्राह्मणादि वर्णोंमें जातिभेद का कुतूहल खड़ा कर दिया है। जैसे संवत् १६१३ में महिदास नामक ब्राह्मणने शौनक ऋषि प्रोक्त चरणव्यूह परिशिष्ट सूत्र के याजुष् शाखा भेद निरूपण की टीका में इस नृसिंह पराशर का प्रमाण देकर—

तत्रापि कर्मनिष्ठाश्च ग्राह्यायज्ञादि कर्मसु ।
हीना द्विजातयः सर्वे त्याज्याः सर्वत्र कर्मसु ॥१॥

अर्थात् उनमें भी जो द्विज कर्मनिष्ठ होवें उनको यज्ञादि कामों में लेना चाहिये। और जो ब्राह्मण अपने कर्म से हीन हैं उनका संपूर्ण कर्मों में परित्याग करना चाहिये " ऐसा उक्त श्लोक का शुद्ध अर्थ होते हुए भी आप [महिदास लिखते हैं कि—"हीना द्विजातयः अभीरादयः " अभीर आदि देश के नाम से विख्यात हीन ब्राह्मण हैं। " बड़ा आश्चर्य है कि जहां कर्मनिष्ठ से हीन अर्थ लेनेका प्रसग है, वहां मनः कल्पित दूसरे देश के द्विजाति मात्र को हीन कहना कितना अनर्थकारी है।

१५५. निर्णय सिंधुकार कमलाकर भट्टने तो श्राद्धमें वर्ज्य ब्राह्मणों के कहते हुए अत्र मामकाः श्लोकाः कह के। श्राद्ध में कई धंदा करनेवाले ब्राह्मणोंको अपांक्तेय कह के इस उच्च नीच भेदको बहुत ही बढ़ा दिया है। आगे हेमाद्रि का आश्रय लेकर मत्स्य व सौर पुराण के नाम की छाप लगाकर—

त्रिशंकून् बर्बरानंध्रान् चीनद्रविडकौंकणान् ।
कर्णाटकॉस्तथा भीरान् कालिंगॉश्च विवर्जयेत् ॥१॥
अंगवंगकलिंगांश्च सौराष्ट्रान्गुर्जरांस्तथा ।
आभीरान्कौंकणांश्चैव द्राविडान्दाक्षिणायनान् ।
आवन्त्यान्मागधॉश्चैव ब्राह्मणाँस्तु विवर्जयेत् ॥२॥

अर्थात्

१ त्रिशंकु=त्रिचनापल्ली तंजावर का प्रदेश
२ बर्बर=कच्छभुज, कच्छारण वगैरे का प्रदेश
३ आन्ध्र=मद्रास इलाखा
४ चीन=चीन देश, नेपाल, भूटान
५ द्रविड़=महाराष्ट्र व केरल देश
६ कौंकण=कोकण पट्टी सावंतवाडी वगैरे

७ कर्णाटक=कर्णाटक देश दक्षिण में प्रसिद्ध है
८ अभीर=खानदेश व नर्मदा तीरका प्रदेश
९ कलिंग=उड़ीसा, छोटा नागपूर व निझाम राज्य
१० अंग=दार्जिलिंग व कुचविहार, आसाम
११ बंग=कलकत्ता, बंगाल प्रांत
१२ सौराष्ट्र=उत्तर गुजरात काठियावाड द्वारका प्रांत
१३ गुर्जर=दक्षिण गुजरात व मुंबई इलाखा
१४ आवंत्य=मालवा मेवाड़ आदि प्रदेश
१५ मागध=गया के पूर्व की ओर का मुर्शिदाबाद आदि प्रदेश

१५६. इन पंद्रह प्रदेशके ब्राह्मणों को पंक्तिबाह्य कहनेसे इस में ९⁄१० नौ-दशांश भारत वर्ष का भाग हो गया। फिर क्या था जो सिर्फ चार ही वर्ण कहलाते थे वहां देश भेद से सैंकडों हजारों प्रकारकी जाति मानी जाने लगी विन्ध्य पर्वत को मध्य सीमा मानकर उन के दो वर्ग माने जाने लगे जो कि जातिभास्कर और ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तंड नामक वर्तमान कालिक ग्रंथों में कहे गये हैं जैसा कि सारस्वताः कान्यकुब्जाः गौड़मैथिलउत्कलाः पंचगौडा समाख्याता विंध्यस्योत्तरवासिनः ॥१॥ कर्णाटका महाराष्ट्रा आंध्रद्रविडगुर्जराः॥ द्राविडा पंचविख्याता विंध्यदक्षिण वासिनः ॥२॥ अर्थात् सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, मैथिल व उत्कल देशवासी यह पंच गौड और कर्णाटक, महाराष्ट्र, आंध्र, द्रविड व गुजरात देशवासी यह पंच द्राविड़ कहाते हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण वर्ण के १० खंड [टुकड़े] करने बाद भी कलिकाल के भ्रांति-पूर्ण धर्मने वर्ण धर्म के खंडखंड करने में कसर न रखी जैसे गौड़ोंमें भी आदिगौड़, गुर्जरगौड़, श्रीगौड़, सारस्वत गौड़, दायमा, खंडेलवाल, पारीख-पुरोहित, सिखवाल आदि भेद कर उसमें भी कुंड गोलक यानें दस्से बीसे आदि भेद करके सब की आपस में बेटीरोटी बंद की गई।

१५७. वाहरे कलि धर्म! कहाँ तो हमारे श्रुति, ‡ स्मृति. § व पुराण † आदि कुल धार्मिक ग्रंथ अंत्यजों को छोड़कर चारों वर्ण की रोटी व्यवहार पर कह रहे हैं। और तिसो ब्राह्मणस्यवर्णानु पूर्व्येण, द्वेराजन्यस्य एका वैश्यस्य सर्वेषाश्शूद्रामप्येके मंत्रवर्ज्यम् [पारस्कर गृ. १.४ सू. ८.११]

‡ [म. स्मृ. राघवानंद टीका ९.२३] मनुस्मृति ३.११ § तथा सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥ आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते " इस याज्ञवल्क्य स्मृति के कथनानुसार उसकी संतान उसी जाति की कहलाती थी कि जिस वर्ण का पिता है। † भागवत व भागवत आदि पुराणों में अनुलोम विवाह भेद कहा है।

वासिष्ठस्मृति १.२४-२५, याज्ञवल्क्य [स्मृति १.५७, मनुस्मृति ३ १३, नारदस्मृति १२.५-६, अनुलोम विवाह यानी ब्राह्मण का चारों वर्णों की, क्षत्रिय का तीन वर्ण की, वैश्य का दो वर्ण की और शूद्र का एक वर्ण की, अनुलोम याने नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करना कह रहे हैं। और वह नीचे के वर्ण की स्त्री भी उत्तम वर्णके साथ विवाही जाने से उत्तम हो जाती थी जैसा कि मानव धर्मशास्त्र [अ. ९] में कहा है कि अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारंगी मंदपालेन जगामाऽभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥ अर्थात् वसिष्ठ ऋषिने अक्षमाला को और मंदपालने शारंगी नाम की स्त्री को व्याही थी। ये दोनों अंत्यजों की कन्याएँ थीं। ऐसी बहुतसी नीचकुल की स्त्रियां भी गुणवान् पति के साथ विवाही जानेसे उत्कर्ष को प्राप्त हो गई और ऊँचे वर्ण की कहलाने लगी।

वैदिक कालमें जात्युत्कर्ष।

१५८. किंतु इस प्रकारके श्रुतिस्मृति वचनों को एक बृहन्नारदीय पुराण के प्रक्षिप्त श्लोकोंने असवर्णा विवाह कलियुग में वर्ज्य कर के स्त्रियों का उत्कर्ष बंद कर दिया। इस से दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार भिन्न जाति की स्त्रियों की संतानों के वंशधर आज अनेक जाति के नाम से कहलाने लग गए और दूसरी जाति की बेटी-रोटी बंद की गई। हेमाद्री, पृथ्वीचंद माधव व कमलाकर भट्टने जो कह दिया उसी को प्रमाण में कई लोग लेने लग गए। ऐसे ही याज्ञवल्क्य स्मृति का कहा हुआ उच्च वर्णानुसार आचरण करनेसे जो जाति का उत्कर्ष माना जाता था जैसे " जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पंचमे सप्तमेऽपि वा " अर्थात् पांचवें या सातवें युग में याने पांच वर्ष के युग से २५ या ३५ वर्ष में अथवा बारह वर्षके युग मानने से ६० या ८४ वर्ष में उच्च वर्णका प्रतिरूप ज्यात्युत्कर्ष मानना कहा है। स्मृति व भारत पुराणादिकों में इस उत्कर्षापकर्ष के ज्ञापक कई ऐतिहासिक प्रमाण लिखे हैं। जैसे भागवत पुराण नवम-स्कंध में-(अ. ६ श्लो. ३) तथा तस्य क्षेत्रे ब्रह्मजज्ञे (१०.११) तत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे (२०.१) ' क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ' ' ये ब्राह्मणगतिं गताः ' ' अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः

(२०.१९-२१) मुद्गलाद् ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् [२१.३३] इस तरह के उत्कर्ष के प्रमाण और " कर्मणा वैश्यतां गतः " " कर्मणा शूद्रतां गतः " ऐसे अपकर्ष के प्रमाण भी कई उपलब्ध होते हैं और चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः (भ. गीता ४.१३) सात्विकादि गुण और वर्णों के कर्म इनका वर्गीकरण करके मैं (ईश्वर) ने चारों वर्णों की व्यवस्था की है। और उनके कर्म भी कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः [भ. गी. १८-४१] स्वभाव-जनित गुणों के अनुसार उन के कर्म भी कहे गए हैं । किंतु कलिकल्पना का मजा यह है, कि चाहे आजन्म उच्च वर्ण के गुणानुसार कर्म करता रहे पर बृहन्नारदीय के प्रक्षिप्त श्लोकों के सामने याज्ञवल्क्य के उपर्युक्त जात्युत्कर्षापकर्षक प्रमाण रद्द ठहरने के कारण (!) उच्च वर्ण का नहीं माना जाता। इसीलिये वर्तमान काल में स्मृति पुराणादिक में कहा हुआ जात्युत्कर्षापकर्ष युगांतरीय विषयक याने कृत, त्रेता, द्वापर युग विषयक है ऐसा कह देते हैं। वाहरे कलि !

६५९. किंतु विचार की बात है, कि एक समय वह था कि जिस के पिता का वर्ण [जाति] मालूम नहीं ऐसे सत्यकाम नाम के बालक के सत्य वचन को सुन कर गौतम ऋषिने उस को ब्राह्मण मान यज्ञोपवीत संस्कार कर वेद पढ़ा उसे ब्राह्मण माना है। जिसका इतिहास छांदोग्यब्राह्मण के चौथे अध्याय में इस तरह है—

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रोन्वहमस्मीति । सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नामस्त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥ स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ तं होवाच किंगोत्रोनुसोम्यासीति सहोवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामोनामत्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति । तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति ॥

अर्थः—जबाला नामक स्त्री का पुत्र सत्यकाम नामक प्रसिद्ध था वह अपनी माता से पूछने लगा कि माताजी मेरी इच्छा गुरु के पास जाकर वेद पढ़ने की है, तब मैं किस गोत्र का संतान हूँ सो मुझे मालूम कीजिये । तब वह बोली वत्स, मैं तेरे गोत्रको नहीं जानती; क्योंकि, यौवन अवस्था में बहुतेरों की परिचर्या में रही हूँ उस अवस्था में तू मुझसे हुआ है। तब तू किस गोत्र का

वंश है यह मैं जान नहीं सकती इसलिये तू गुरुजी के पास इस प्रकार बोलना कि मैं ज़बाला का बेटा सत्यकाम हूं। तब वह हारिद्रुमंत के पुत्र गौतम नामक ऋषि के पास जा कर बोला कि हे भगवन्, मै आप के पास ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ने के लिये रहना चाहता हूँ; सो आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये। तब वे बोले कि हे बालक, तुम किस गोत्र के हो? तब वह बोला कि मैं यह नहीं जानता कि मैं किस गोत्र का हूँ; किंतु इसके संबंध में मेरी मातेश्वरी से मैंने पूछा था, तब वह बोली कि यौवन अवस्था में बहुतेकों के पास रहते और उनकी परिचार्या करते हुए मुझसे तू हुआ। तब यह मैं नहीं जानती कि किस गोत्र का बालक तू है। किंतु जबाला मेरा नाम और सत्यकाम तेरा नाम है, इसलिये महाराज इतना मै कह सकता हूँ, कि जबाला का बेटा मैं सत्यकाम हूँ। ऐसा सुनकर वे ऋषि बोले-जब कि सत्य बात तूने कह दी तब ब्राह्मण जाति के सिवाय ऐसा अपनी उत्पत्ति की सत्य बात और जाति नहीं कह सकती। अतः तुम होम के लिये समिधा ले आओ। हम तुह्मारा उपनयन संस्कार कर के ब्राह्मणोचित विद्या पढावेंगे। क्योंकि तुमने सत्य का परित्याग नहीं किया है।

इस जाबाला का पुत्र सत्यकाम का भाषण पढ़ते विश्वास होता है, कि प्राचीन कालमें सत्य कह देने से पाप नहीं समझते थे। और यह बात सच भी है कि कार्य भला हो या बुरा, उस के सच कहने में कोई दोष नहीं है, दोष होता है उस के छिपाने में। किंतु आज कल कलियुग नें सब मामला उलटा कर दिया। अबतो लोग बात के छिपानेमें अपना गौरव समझतें हैं। और चार लोगोंमे हटात प्रौढ़ी मिलाते हैं। और कहते हैं हम निर्दोष हैं। तब पाप बढ़े नहीं तो क्या हो। क्योंकि सच कहें गे तो जातिच्युत का डंडा बरसेगा।

सारांश में कहने का तात्पर्य यह है, कि कलियुग का प्रभाव ही प्रकृति पर वज्रलेप की तरह चढ़ गया। चारों तरफ जिधर देखो उधर वही कलियुग सूझने लगा। आह! इस कलिनें हमारे वेद-कालीन उत्कृष्ट से उत्कृष्ट वैज्ञानिक शोधों को अज्ञानांधःकार तिमिर में डुबो दिया। जिस योग बल से योगी याज्ञवल्क्यने सुवर्ण की गायों में प्राण-संचार किया था। जिस पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सुवर्ण बनता था, जिस सोमवल्ली से काया-कल्प [बूढ़ेका जवान] होता था, जिस अमृत संजीवनी से लक्ष्मण को चेतना हुई थी, जिस मंत्र सामर्थ्य से कुण्डमें अग्नि प्रदीप्त होती थी, जिन अश्विनी कुमारों द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा से च्यवन ऋषि की फूटी आखें दुरुस्त हुई थीं, जिस दिव्य दृष्टि में समस्त जगत् की नाना लीलाएँ देखने का सामर्थ्य था, हा! ऐसी कई बातों को मटियामेट करनेवाला यह कलियुग ही है।
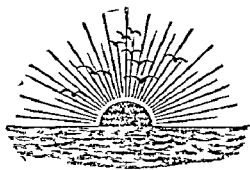
सतयुग संधि का कुछ परिचय।

१. अब जब गणित इत्यादि के पिछले कई प्रकारोंसे हम सिद्ध कर चुके कि युगों का नाप बारह हजार वर्ष के मान-दण्ड (स्केल) से नापना ही शास्त्र सिद्ध है। तब हमें यह देखना भी परमावश्यक हो गया है कि क्या उन लक्षणोंका इस में पता चलता है, जिनको हम दूसरे भाग में कृतयुग के लक्षणों में कह आये हैं।

इस ओर जब दृष्टि डालते हैं। तब साम्प्रत में ज्ञानोत्क्रांन्ति के लक्षण वारवार दिखाई देते हैं। और कृतयुग के लक्षणों में जहांतक हमने खोज लगाई है; उससे यही निष्पन्न होता है, कि ज्ञान की उत्क्रान्ति और अपक्रांति ही कृतयुगी लक्षणों को समझने के लिये प्रधान कारण है।

२. इतिहास के मर्मज्ञ इस बात को अच्छी तरह जानते हैं, कि भारत में ज्ञान जागृति वह किसी रूप में भी क्यों न हो; किंतु दिनोदिन उन्नत दशा ही पर दौड़ती चली जा रही है। वैसे ही समाज में हानिकारक कुरीतियोंने जो अड्डा जमा रखा था, उस के लिये तो समाज एकदम जागृत हो उठा है। और उसने यहांतक खलबलाहट मचादी है कि प्रत्येक जाति-जाति में आल इण्डिया परिषद्-प्रांतिक परिषद्-जिला परिषद्-तालुका परिषद्-ग्राम सभा आदि संघ शक्ति बढ़ाने के लिये जिधर देखो उधर उद्योग शुरू हो रहे हैं। इन सबों की प्रेरणा का प्रधान कारण क्या ?

३. यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि आज-कल जिन यात्रा और उत्सवोंमें सैकड़ों-हजारों जीवों की हिंसा और हत्या आखों देखते-देखते हो रही थी, उनके प्रति ऐसा स्फुरण जनता के मनमें उमग उठा, जिसके फल स्वरूप सैंकड़ों और हजारों की तादाद में स्वयंसेवक गण, लोगों को मंत्रणा देने; और उनकी प्रवृत्ति हत्या से हटाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। और उसमें खासा सिद्धि भी प्राप्त हो रही है।

४. यह भी हम कैसे भूल सकते हैं, जो हमारी भारतीय वैदिक संस्कृति अज्ञानांधःकार के प्रगाढ़ तिमिर में डूब गई थी, उसको पुनः उन्नत दशामें लाने के बीजांकुर जगह २ अंकुरित हो रहे हैं। इसी के फल स्वरूप सायन्स, भूगोल, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, स्मृतिशास्त्र, व्याकरण, वेदांत, न्याय,

मीमांसा काव्य कहांतक कहें थोड़ेमें इतना ही कथन बस है, कि कई शास्त्रीय ग्रंथों के मर्मज्ञ रात-दिन इस धुन में लगे रहते हैं कि कठिन और क्लिष्टता से भरे शास्त्रीय विषय को कैसे सरल और सुगम बनावें! इस प्रेरणा के ही फल स्वरूप कतिपय विद्वानोंने गंभीर भाव पूर्ण ग्रंथ बनाये हैं। यह प्रेरणा कैसे ?

५. जब हम पहिले कह आये हैं, कि ऋक्-यजु, साम, अथर्वण आदि वेदों की समस्याएँ अपृथक् (प्रत्यक्षतापूर्ण) कृतयुग में ही हुआ करती हैं; तब अब यह नहीं कह सकते कि इन समस्याओं का स्फुरण लोगों को नहीं है। बहुतसी जगह यह बात पैदा हो चुकी इतना ही नहीं इस महत्व को दृष्टि-सम्मुख रख कतिपय संस्थाएँ खड़ी हो रही हैं। यह प्रेरणा कैसे ?

६. जब कि हाल ही में वेदों के संबंध में एक ऐसी अद्भुत खोज लग गई है, और उसका पता लग जानेसे वह क्षति एकदम दूर हो गई है, कि वेद-ऋचाओंका सुसंगतवार अर्थ नहीं लगता था; यह सवाल ही कतई हवा हो जाता है। + इसमें विशेषता यह है कि सम्पूर्ण देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन भी इन के इस नवीन शोधसे होते हैं। यह प्रत्यक्षता दिखानेवाला कार्तयुगी धर्म की प्रेरणा क्यों ? क्योंकि यह पहिले ही हम बता आये हैं, कि महाभारत-काल में ही बहुतसी बातें कूट हो गई थी और उसी से व्यास स्वयं लिखते हैं।

७. "नहीं समझमें आता कि कृतयुग में देवताओं के (नक्षत्रों के) विभाग किस प्रकार हुए हैं। सूर्य उनमें अपनी प्रखर शक्ति द्वारा परिमाणू कैसे नियोजित करता है ? यज्ञों में देवताओं से विभाग किस कार्य के हेतु और कैसे किये जाते हैं। देवता अपना अपना विभाग लेकर पुनः उसका फल प्रदान किस प्रकार करते है और उसका समाधान कृतयुगी धर्मज्ञ ही जानते हैं।" यों कह कर इस प्रकार बतलाया है। यही उलझनमें पड़ी समस्याएँ प्रत्यक्ष प्रयोग सहित समझाने और दिखानेवालों का प्रादुर्भाव होना, इस बात का स्मरण दिलाता है, कि युग-क्रांति हो गई! क्योंकि इस बातका पता लग चुका है कि भूगोल और खगोल इसका कितना तादात्म्यभरा निकट और घनिष्ठ संबंध है यह वेद ही के आधारों से सिद्ध हो गया है। यहां अधिक विस्तार, विषयांतर के भय से नहीं कर सकते। फिर भी संक्षिप्त में * बता दिया है। इस अतींद्रिय ज्ञान की प्रेरणा का कारण क्या ?

---

* सूर्यो वा अकामयत। नक्षत्राणां प्रतिष्ठास्यामिति स एतं सूर्याय नक्षत्रेभ्यः चरुं निर्वपत्। ततो वै स नक्षत्राणां प्रतिष्ठाऽभवत्। 'अथैतस्मै नक्षत्राय चरुं निर्वपति यथायं देवानामासि। एवमहं मनुष्याणां भूयासमिति। यथाह वा एतेद्वानां। एव ह इवा एव मनुष्याणां भवति, य एतेन हविषा यजते। य उ चैनदेवं वेद।" [तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१.६.४-५]

+ वि. भू. पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट् कृत 'वेदार्थ का दिग्दर्शन' देखो।

युग-परिवर्तन यही है।

८. अब हमें यह देखना है कि जब-जब युग का परिवर्तन होता है तब कोई विशेष घटना होती है क्या ? जिस से हम निश्चय कर सकें कि युग परिवर्तन हो गया। जब हम इस ओर देखते है तब पता चलता है किः-

युगान्त सदृशैः रूपैः शीलोच्चलितबंधनाः।
जलोत्पीडा कला स्वेदं धारयन्ति मुहुर्मुहुः॥

म. भा. ह. प. ५२-१९

अर्थात् युगान्त के समय रूप और शीलता के बंधन उच्चलित [ढोले] हो जाते हैं। (१) जलोत्पीड़ा और (२) रोग पीड़ा भयंकर रूप को वार वार धारण करती है। जैसे कि जल की जगह-जगह अधिक वर्षा से हानी, और सार्व देशिक भयंकर बड़ा रोग का उत्पन्न होना; यह महाभारत के कथन के मुताबिक युगान्त के लक्षण बताता है।

९. जब कि महाभारत में युगांत के समय की घटना बताई है; तब वैसी घटना कोई हुई क्या ? इसका जब हम विचार करते हैं, तब युगांत मे समस्त जगत् में शके १८३९ के समय जगह जगह भयंकर जलोत्पात और सार्व दैशिक भयानक रोग 'इन्फ्ल्यूएंझा' शके १८४० में हुआ मिलता है।

१०. जब जब प्राचीन वैदिक कालमें युग की तुलना हुई, तब तब तत्व ज्ञाता ऋषि मुनि; प्रत्यक्ष प्रयोगों और यज्ञों द्वारा युग की स्थापना [पृथक्] अलग कर दिया करते थे। यह प्रथा सदासे ही चली आई हुई है। अथर्व संहिता में कहा है कि—

सीराः युञ्जन्ति कवयः युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ। यज्ञो वै सुम्नं धीराः देवेषु यज्ञं तन्वानाः॥

(अथर्व सं. कां. ३ पृ. ४३६)

इस वचनसे इस बात को पूर्ण पुष्टि मिलती है कि जिसका शरीर यज्ञ (वैज्ञानिक प्रयोगों) से बनता है, वैसे युगको वे अलग ठहराते थे। आगे और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है कि—

सूर्यो देवी मुष संरोचमानां मर्योन योषामभ्येति पश्चात्॥
यत्र नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिऽभद्राय भद्रम्॥

(अथर्व. सं. कां. २०.१०७.१५)

स्त्रियोंकी लावण्यता चित्तको जिस तरह संतोष पहुँचाती है, उसी तरह सूर्य की गति स्थिति द्वारा मनुष्य लोग देवतुल्य ऐसे (कृतयुग) युगों को प्रवृत्त करते हैं। उस में बुरा भी भला होने से सतोष होता है।

११. महाभारत में एक जगह यह भी वर्णन किया है कि ¶ कलि समाप्ति के सध्यांशके समय प्रचड रोग खड़ा होता है। और प्रजा में असंतोष तथा युद्ध भी होता है। जिस में प्रजाका क्षय होता है। पाप बहुत ज्यादा हुए बिना सतयुग का प्रादुर्भाव नहीं होता वास्ते पाप ज्यादा दिखता है तब कहीं समझना कि कलि क्षीण हुआ। फिर सुधरी परिस्थिति कृतयुग रूप होकर प्रवृत्त होती है। इस में प्राचीन वेद तथा पुराणों के रहस्य भरे तात्विक सिद्धांतोंका प्रादुर्भाव होता है। और सब लोक ब्रह्मज्ञानी एवं ब्रह्मवादी होने लगते हैं।

ते परावरदृष्टार्था महर्षिसमेतजसः ।
भूयः कृतयुगं कर्तुमुत्सहंते नराधिपाः ॥
तेषामेव प्रभावेण शिवं वर्षति वासव. ॥

[महा भा. ह. प. १ अ ५२.२९]

इधर राजा लोग भी सत्ययुग ही राज्य में कायम हो; ऐसी नीति न्याय में हवैसा दिखाने लगते हैं। महर्षियों की वर प्राप्ति की अभिलाषाएँ पूरी होने लगती हैं। उसी के प्रभाव से वसुन्धरा सस्यशालिनी होती है।

१२. न्याय नीति सब जागृत हो जाते हैं। आपस के वैमनस्य सब भूलने लगते हैं। सच बात आरम में कडवी मालूम होती है; किंतु धीरे-धीरे तत्त्वज्ञानयुक्त शांतिपूर्ण विचार करनेपर उसके अनुयायी कई लोग होते हैं।

१३ इन बातों को देखते जब यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि वैदिक और पौराणिक कालमें भी ऋषि, मुनि युग के सबध में पूरा ऊहापोह किया करते थे और उससे युग-मान की सत्यता तात्कालिक लक्षणों पर गणित सिद्धांतों से परिवर्तित कर दिया करते थे। और युग को प्रवृत्त करना अपना आद्य कर्तव्य समझते थे। अर्थात् युग-स्थापना करते थे। इससे समस्त जगत्

¶ परस्पर हतश्वाथ निराक्रंदा सद् खिला । एवं कष्टमनुप्राप्ता कलिसध्यांशके तदा ॥
प्रजा ऽ र प्रवत्स्याति साध्य कालेयुगे न ह । क्षीणे कलियुगे तस्मिन्वत कृतयुगे पुन ॥
प्रा रसने यथा न्याय स्वभावादेवनान्यथा । एव चान्ये च बहवो दिव्या देवयुगे पुन ।
प्रादुर्भाव पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि । विष्णव श्रुणु मे विष्णोहरितेच कृतेयुग ॥
वैकुण्ठश्च देवेषु कृष्णत्वे मानुषेषु च ॥ [महा भारत हरिवंश प १ ४१ ०७]

के विचार उज्ज्वल होकर ज्ञान की उत्क्रांति जोरदार होती है। वेदादिकों के गंभीर एवं तात्विक विचारों के सब ज्ञाता होने लगते है। कहां तक कहें—

सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः ॥
एवं जगति वर्तंते मनुष्या धर्मकारणात् ॥२९॥
(म. हरिवंश प. १५२ २९)

सम्पूर्ण विप्रजन वेद मर्मों के ज्ञाता होते है। सम्पूर्ण मनुष्य विप्रतुल्य होते है। ऐसा जगत् भरमें केवल एक मानव धर्म चलता है। किंतु इसके उत्पादक (मुख्य कर्ता) मनुष्य ही कर्ता होंगे। अर्थात् इसमें कोई संदेह नहीं, कि अब सतयुग आरंभ होने से समस्त जगत् भरमें केवल एक वैदिक धर्म ही का डंका बजेगा।

युग-परिवर्तन की प्रत्यक्षता में अभीका एक ताजा नमूना।

१४. आकाश व्यापी दैदीप्यमान और चमचमाहट करनेवाले जो अनत मोटी तारागण दिखते है; उनका उपयोग एक भचक्र के नापने में होता है। बस इतना सब जानते थे। इसी से आजतक आकाश के नक्षत्रों और तारागणों के नापने के जो चित्रपट, नकाशे, और किताबें मिलती है; वे इन महीने के महीने आकाशीय चित्र ठीक ठीक किस प्रकार दिखते हैं; यह प्रकार दिखाने मात्र का हैं। इसका उपयोग इसी काम में आज तक के कुल विद्वान् करते आए और कर रहे हैं।

१५ कहना अत्युक्ति न होगा कि उक्त आकाश व्यापी नक्षत्रचक्र जो हम ऊपर बता आये हैं इस नक्षत्र चक्र को आज की भाषा में हमें नक्षत्र चक्र कहना पड़ता है; किंतु यह प्राचीन वैदिक कालमें दैवत क्रम से संबोधित किया जाता था। इस कल्पना का प्रत्यक्ष में प्रादुर्भाव एलिचपुर वास्तव्य पूज्य पिताश्री नि. भू. पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट इनको ही हुआ है। हाल ही में आपने वेद कालीन दैवत क्रम का अद्भुत और नया आविष्कार खोज निकाला है।

१६. इस आविष्कार के विषय में एक तो विस्तार के भय से दूसरा श्रीमान् मेरे पूज्य पिताश्री होनेसे कई लोगों का तर्क मेरे प्रति स्वस्तुति के रूप में न

हो; इस लिए इसे अधिक न बढ़ाकर इतना अवश्य कहूँगा कि इनकी तीस वर्ष की, की हुई कड़ी तपश्चर्या का फल ही वेद कालीन दैवत क्रम का आविष्कार और वेदकाल-निर्णय ग्रंथ है।

१७. अर्थात् इस आविष्कार के जरिये वेदार्थ जैसा क्लिष्ट विषय अतीव सरल और सुगम हो गया है इतना ही नहीं जिन्हें आजतक हम भावनामय देवता समझतेथे वे वास्तव में वैसे न होकर प्रत्यक्ष में दृग्गोचर होनेवाले देदीप्यमान देव हैं ऐसी उलझन भरी समस्या को सुलझाना ही आविष्कार के कहने में बस है। अतः आकाशीय संसार का परिचय देनेवाला ऐसा अनोखा हाल ही में आपने आविष्कार किया है। इनके इस नये शोध से आकाश स्थित देवताओं का समग्र व्यवहार शीघ्रही यहां के आबाल वृद्ध जनों को दृष्टि गोचर होने लगेगा। ऐसा वेदों की अप्रत्यक्षता में अपृथक्ता बताने वाला अतींद्रिय ज्ञानका प्रादुर्भाव भी साक्षी देता है कि युग परिवर्तन हो गया।

१८. इस नूतन शोध का उपयोग वेद का अर्थ करनेवालों को बहुत ही अच्छा होनेसे वेदों का अर्थ करना उन के लिए बहुत ही आसान होगा। दूसरा हाल ही में आपने वेदोंका काल तीन लाख वर्ष से पुराना सिद्ध करनेवाला 'वेदकाल निर्णय' नामक ग्रंथ बनाया है। इतना पुराना काल प्रमाण सहित सिद्ध करनेवाला संसार भर में कोई अन्य ग्रंथ नहीं है। यह भी ज्ञान क्रांतिका प्रत्यक्ष नमूना है।

१९. अंतमें हमारा इतना ही कथन बस है कि उच्चतम हमारे कृत्यों का सत्यानाश करनेवाला, कलहाग्नि को जगहजगह भड़कानेवाला यह कलियुग का कलुषित प्रभाव संवत् १९८१ शाके १८४६ के पौष कृष्णा ३० से खतम हो चुका। अतः तुम अब सत्ययुगी मैदान में खड़े हो; इस लिए ज्ञान क्रांति की ओर दृष्टि फैलाओ और यत्न करो। सिद्धि तुम्हें हाक मार मार कर कह रही है, कि नए नए तत्वों का शोध करो उठो! जागो!! कमर कस के तयार हो जाओ!!! अब कृतयुग लग गया है सो कृति करने लगो और देखो कि मैं कैसी शीघ्रता से तुम्हारे पास दौड़ी चली आती हूँ।

भविष्यत्‌में ज्ञान क्रांति
क्या होगी ?

१ यह कहने में अब कोई आपत्ति नही कि जबसे सतयुग की संधि लगी है, तबसे भारत वर्ष में नई शिक्षण पद्धति हो ऐसे अकुंर लोगों के मनमें खड़े हुए हैं अर्थात् धीरे धीरे शिक्षण शैली उलट-पुलट होगी। यानी आज-कलके शिक्षण के फल स्वरूप में हमें नौकरी मिलती है; किन्तु भविष्य के सुधरे हुए शिक्षण में हमें नौकरों की दरकार होगी।

२ ईश्वर-भक्ति भी जिसे आज-कल भक्ति कह के लोगोंने मान रखा है, सो भक्ति भी, किसी कामकी नही समझी जायगी, और लोग सच्ची भक्ति के उपासक होंगे। जो स्वतः के शरीर से कृति-पूर्ण राम और कृष्णादिकों की तरह निरपराध-गरीब-निराश्रित आपत्ति ग्रस्त-दीन-दुःखी जनों के संकटों में शामिल हो; उनपर आए संकट दूर करने की कृति के अवलंबन करने को ही ईश्वर भक्ति-समझेंगे।

३. मंदिरों और देवस्थलों में जाकर ईश्वर के पास केवल स्तोत्र पाठको ही मोक्ष का मार्ग न समझ कर; प्रत्यक्ष कृति पूर्ण हमारे इस देहसे; हे प्रभो! हम गरीब मनुष्यों के संकट, और दुःख मिटाने में सामर्थ्यवान् हों। हम में ऐसा बल दो, जिस से प्रत्येक संकट मिटाने में हम योग्य हों।

४. आज कल वकील और ब्यारिस्टर आदि डिग्री प्राप्त करने की जो धुन लगी हुई है, इसे जो शिक्षा सम्पन्न समझते हैं; इस से भी लोग मुख मोडने लगेंगे। और वैसे ही नये से नये तरीके खोजने की कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगेंगी। और उस में लोग सिद्धि भी प्राप्त करेंगे। वकीली कामों से घृणा होने लगेगी और भूस्तर शास्त्र भूगर्भ शास्त्र-रसायन शास्त्र-यंत्र शास्त्र विद्युत्-वायु-चुंबन-धातु अधातु खनिज द्रव्य-आकर्षण आदि शास्त्र वेत्ताओं का प्रादु-र्भाव होगा। अर्थात् विज्ञान का शिक्षण विशेष जोरदार और स्वभाषा में मिलने लगेगा।

५. हमारी साम्पत्तिक हालत अच्छी होने लगेगी, और स्वतः के बाहुबल से पैसा कमाने, एवं द्रव्योपार्जन करने का घमंड रखनेवाले लोग होंगे। कोर्टीय झगड़ों में भी बहुतसा परिवर्तन हो जायगा। एक तो भाई का धन

भाई खावेगा ही नहीं, यदि खाया भी तो उतनी उदारता का अंकुर खुद ही अंतःकरण में उमगने से अदालत में जाना अयोग्य समझने लगेगा।

६. जब कि शिक्षण शैली ही बदल जायगी तब उस में शिक्षा पाये विद्यार्थी माता और पिता आदिकों की सेवा करने, और बड़े-बूढ़े का आदर रखने, एवं गुरु जनों से जन्मभर अपने को उऋण समझने, सच्चे पातिव्रत्य धर्म की पहिचान करने वाले वीर होंगे।

७. इधर वेदोंके संबंधमें तो श्रद्धा एकदम जोरसे बढ़ने लगेगी। वेद यह प्राचीन ज्ञानकोष है; यह बात समझ वेद में बताई हुई सब बातोंकी खोज में लोग लगेंगे। वेद का अर्थ सुसंगति रीति से नहीं लग सकता? यह प्रश्न दूर कर वेदके सच्चे रहस्यके बतानेवाले पैदा होने लगेंगे। और उन बातोंकी लोगोंको खोज लगने लग जायगी जिसका आज अपने को सपना तक नहीं था जैसे कि—

" भूगोलीय जगत्- खगोलीय जगत् समष्टि रूप सृष्टि-व्यष्टि रूप, सृष्टि-परिमाणुओंका अणुरूप होना । परिमाणुओंका आंदोलन-उनका व्यापार-अणुरुप में उनका आगमन-उनके आगमन से वस्तु निष्पत्ति याने सृष्ट जगत्में प्रवेश-पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति-भूतोंके अद्भुत कार्य-अणु को तावेमें रखनेवाले देव-देवोंका अद्भुत प्रावल्य-उनके शक्तियोंका कोश-उन देव शक्तिका दीप्ति और विंब रूप में दर्शन ज्योतिष चक्र मालिका में उनकी पहिचान-और पहिचान करनेका तरीका,उनके तरफ भिन्न भिन्न बटे हुये कार्य-और अधिकार,उनके आगम निर्गमसे पृथ्वीपर होनेवाला प्रभाव, विकार भेदसे देवोंके बँटे हुये कार्य-उन कार्योंको करनेवाले ऋतु देव-इनके पाससे होनेवाली अणु रूप प्रबल वृष्टि-अणु वृष्टि का दृश्य जगत् में प्रवेश-पंच प्राणों में होनेवाला रुपान्तर, अन्नोत्पत्ति और भूतोत्पत्ति, पंच तन्मात्राके कार्य-कर्ता दूत-प्राण-अपान-समान उदान व्यान रूप वायू भेद। स्वेदज, अंडज, जारज, उद्भिज, जीवोंकी उत्पत्ति पंचेंद्रियों का तन्मात्रामय होना-दृश्य सृष्टिका अदृश्य में जाना, छोटी मोटी कुल शक्तिका अखण्ड शक्तिमें प्रवेश, ऐसे अनन्त कोटी ब्रह्माण्डका संचालक सूत्रधार -ब्रह्म दर्शनार्थ ज्ञान चक्षु-वेदमय दिव्य चक्षुसे ही देवोंका साक्षात्कार, आदि वैज्ञानिक और प्रापंचिक व्यावहारिक ज्ञानसे ओतप्रोत वेदोंके सच्चे रहस्य समझने और समझानेवाले लोग होंगे।"

८. सिर्फ चार वर्ण के सिवा प्रति शाखायें जितनी भी देश भेदसे या अन्य कारणों से बेहिसाब फैल गई है। वे कम होने लगेंगी और चारों वर्ण गुण और कर्म विभाग से चालू रहेंगे। ब्राह्मण तत्व शोधों के, क्षत्रिय शरीर से रक्-

पात करने तक का प्रसंग आनेपर भी, बेधड़क छाती ठोक सामना करने के, वैश्य लोग भी बड़ी से बड़ी व्यापार विषय में फायदे बंद ऐसी संस्थायें खड़ी करने के लिये और शूद्र लोग इनकी लगाई संस्था निरंतर चलाने आदि कामों के लिये भरसक प्रयत्न करने लगेंगे।

९. भारत वर्ष के स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध सभी वेद महिमा के तज्ञ होने लगेंगे। स्त्रियों का आधुनिक शिक्षण भी योग्य शिक्षण न समझा जाकर उन्हें पूर्ण तात्विक और मार्मिक उपदेशजन्य शिक्षण दिया जायगा। आठ प्रकार की विवाह प्रणाली भी वैदिक रीति से कायदों के अनुसार जायज समझी जायगी। इसी प्रकार, याज्ञवल्क्य मनु आदि के कथनानुसार १२ प्रकार के पुत्र पुत्राधिकारी होंगे।

१०. मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति को आधार मानकर सब धर्माचरण इसी के अनुसार होंगे, सम्पूर्ण व्रत, उपवास आदि की उत्पत्ति सायन्स सिद्ध बताने-वाले होने से उनका जोर शोरसे प्रचार होगा। तुलसी इत्यादि महत्व पूर्ण वृक्षों के न रहने से विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य को कितनी अनिष्टता सिरपर लेनी पड़ती है? लोगों को यह पूर्णतया समझे जानेपर स्वाभाविक ही उसके महत्व को पहिचान कर उसकी उपासना से प्रेम करेंगे।

११. अब जो हम को चिल्लाकर यह कहना पड़ता है कि अमुक २ धर्म करो!! किन्तु अभी हमारे में सिर्फ कहनेवाले मात्र ही रहे है। उसके न करने और करने से हमें क्या हानि लाभ? इसकी समझूत तात्विकता से समझानेवाले न होना ही हमारे में धर्म ग्लानि होने और करने के कारण हैं। अतः आगे अब इसको तात्विकता से ललकार कर कहनेवाले एवं प्रत्यक्ष प्रयोग सिद्ध दिखानेवाले पैदा होने लगेंगे।

१२. वैदिक समस्याएँ जब आखों के सामने दृष्टि गोचर प्रत्यक्ष होने लगेगी, तब सब लोग ही आनंद में मग्न रहा करेंगे। नौकर तथा हीन दीन लोगों की अवस्था अच्छी रहेगी। गर्विष्ट-अहंभाव पूर्ण-दांभिक एवं घमंड करने-गरीब जनों को व्यर्थ सताने-अन्याय से उसकी सम्पत्ती हड़प करने-पाखंड पनेसे मनमानी रकम बढ़ाकर उसका घर लेनेवालों की पूरी खबर लेनेवाले लोग होंगे, और दयावान्-दीन जनों के सहायक-उदारता पूर्ण सम्पत्ति का उपभोग लेनेवाले, धनवानों का मान बढ़ानेवाले, इतना ही नहीं; उस दीन रसक पर कठिन से भी कठिन परिस्थिति आ खड़ी हो गई तो सब मिल कर उस को पूरा साथ देनेवाले लोग होंगे।

१३. आयुष्य मर्यादा भी प्रमाण से बड़ी होने लगेगी। यानी सर्व साधारण सौ वर्ष की आयुष्य के भोक्ता लोग होन लगेंगे। ब्रह्मचर्य का

महात्म्य दिनोदिन तरक्की पर आवेगा। उस से शक्तिशाली आयुष्मती प्रजा होगी। शक्तिशाली प्रजा के होने से रोग पीड़ा ज्यादा न होगी। मरनेवालों की [अल्पायुदीयी] संख्या दिनोदिन कम होने से पूर्ण आयुष्य के भोक्ता लोग होंगे। इस से विधवाओं की संख्या कम होने लगेगी वैसे ही प्रौढ़-विवाह को लोग पसंद करेंगे और बाल-विवाह से घृणा होगी इस प्रौढ़-विवाह से विधुरों की संख्या भी कमी तादात में रहेगी।

१४. लोग हर एक कार्य में संघशक्ति को ही पसंद करेंगे, तदनुसार क्रांति पूर्ण कार्य को अधिक गौरव युक्त समझेंगे, और केवल लेक्चर बाजीपर भी घृणा होने लगेगी। क्रांति से काम करने का अधिक शौक बढ़ने से इष्ट सिद्धियाँ विशेष दृष्टि गोचर होंगी।

१५, नूतन मंदिरों के बनाने से जीर्णोद्धार को बेहेतर समझने लगेंगे। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र आदिकों की महिमा दिनोदिन बढ़ती रहेगी। केवल स्पृश्या-स्पृश्य और छुआछूत में ही धर्म मर्यादा उतर पड़ी यह भ्रम दूर होता हुआ, सच्चा, धर्म मर्यादा का परिचय होने लगेगा। और बने वहांतक शीघ्र ही वैदिक धर्म संस्थापना होगी। प्रत्येक मनुष्य जीवन साफल्य अपना किस बातमें है, इसको समझने लगेगा। मनुष्य मात्र को वेदाध्ययन करने और पढ़ने का अधिकार होगा। प्रत्येक मनुष्य कर्मवादी और दीर्घोद्योगी तथा खूब परिश्रम करने, अविश्रांत श्रम से कार्य को साधने-एक क्षणभर भी निरर्थक न जाने देने बाबत पूरी खबरदारी रखनेवाले होंगे। जीवनेंद्रिय और आत्म-तत्व को अच्छी तरह पहिचाननेवाले लोग होंगे।

१६. सब जगह सत्य व्यवहार चलने लगेगा। भाई भाई में पिता पुत्र में इष्ट मित्रों में कुटुंबी जनों में सख्यत्व बढ़ता रहेगा-सच्चे और शुद्ध बातके ही उपासकोंकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जायगी-केवल ढोंग-छलबाजी-कपटबाजी-राजसी पेश आराम-विलास वैभव दिखाऊ आडंबर-अकृतिपूर्ण झूँठी धाचलता-आदि बातों के उपभोक्ता कपटी साधु-सन्यासी-स्वामी-आचार्य आदिकोंका उपमर्द होगा और जो सच्चे दीन रक्षक-दुःखी जनों में सामिल हो उन के संकटो और दुःखों को दूर करने में पूरी कोशिस तथा धर्म के अभ्युत्था में सच्चे भावसे पूरी सह कारिता पहुंचायगे ऐसे साधू-संन्यासी-स्वामी-और आचार्य कृपा पात्र बनेंगे। और उनका आदेश सर्वमान्य समझा जायगा।

१७. उसी तरह जगह जगह ब्रह्मकुल आश्रम स्थापन होंगे। विद्वान्-बुद्धिमान्-सत्पात्र उत्तम विद्या सम्पादित-गुणी सदसत् विवेकी,' समय पड़नेपर

योग्य सलाह देनेवाले–अहंकार रहित, अहंभाव को परित्याग किये हुये ऐसे ब्राह्मण आदर की दृष्टि से देखे जायंगे–वे ही मान के पात्र होंगे। अन्यथा अहंभाव एवं गर्व में रहनेवाले ब्राह्मणोंको वह मान नहीं मिलेगा जिसे हम ऊपर कह आये हे।

१८. जिस विषय में अर्थार्थी कोई लाभ नहीं है ऐसी बातों की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे–और जिसकी आज विशेष जरूरत है ऐसे बातों के लिये चाहि कुछ हो; मर भी गये तो कोई हानी नहीं; किंतु कार्य सिद्ध होना चाहिये। ऐसी प्रबल तपश्चर्या करनेवाले लोग होने लगेंगे। ज्ञान और विज्ञान की जागृति घरघर आदमी आदमी के पास होगी। यह सब घटना ४०० वर्ष की जब तक कृत सांधि पूरी नहीं होगी तब तक धीरे धीरे उन्नति होती रहेगी। और फिर तो उत्तर ध्रुव-की देखते मंगल-चंद्र-शुक्र-आदि लोगोंपर की सब घटना प्रत्यक्ष देखने लगेंगे।

१९. यंत्र शास्त्रमें भी बड़े बड़े आविष्कार होंगे–बिना एंजिन या किसी हार्स पावर के जिसमें की कोयला-पेट्रोल क्रोडाइल-इलेट्रीक वगैरह कोई भी द्रव्य न लगते हुए स्वयं चलनेवाले यंत्र भारत वर्ष में शुरू होंगे। विमान बनाने की क्रिया भी भारत के तत्वज्ञ लोग निकाल लेंगे, अग्नि-वायु-सूर्य-बादल-वर्षा आदि प्रचंड शक्ति से मनमाना काम लेने लगेंगे, मृत आत्मा से भाषण–मरे आदमी को जरूरत पड़ने पर कुछ काल तक जीवित रखना आदि बातों का प्रादुर्भाव वेदों के बल से होने लगेगा।

२०. जगह जगह प्रयोग शाला–उद्यम–शाला आदि स्थापन होंगी। गायों का भी पालन घरघर विज्ञान की सूक्ष्म दृष्टिसे होगा। सब देश कला–कौशल्य-वान होगा। विज्ञान–सायन्स–ज्योतिष–वेद–वेदांत–उपनिषद्–श्रुति-स्मृति-पुराण–धर्म शास्त्र-न्याय मिमांसा आदि ग्रंथों का छान-बीन के साथ परिशीलन और उपयोग होगा।

२१. आजकल समाजके अंदर प्रायः तीन पक्ष नजर आते हैं। एक तो **रूढ़ी-भक्त**, दूसरा **उच्छृखल**, और तीसरा **सत्य युगीन**। इसमें पहिला पक्ष कहता है चाहे प्राचीन ऋषियों की आज्ञा हो, या वैदिक प्रमाण हो; किन्तु हम 'यद्यपि शुद्धम् लोक विरूद्धं ना करणीयं नाचरणीयं' इसको तनिक भी नहीं छोड़ेंगे। हमारे बड़ों-बूढ़ों से जो रूढ़ी चली आ रही है, वह भली हो या बुरी वही हमारी भाग्य विधाता है। ऐसा कहनेवाला पक्ष **रूढ़ी भक्त है**। और जो कहता है प्राचीन जो भी कुछ बातें हैं, उन सबों को उखाड़ फेंक दो। वेदों के चिल्लाने में क्या पड़ा है, धर्म किस चिड़िया का नाम है। ज्योतिष की भी क्या जरूरत, मुहूर्तकी क्या आवश्यकता, पश्चिमी चकाचौंध से विसित हुए कई

विद्वान् तो कहते हैं; मनुष्य को किसी प्रकार का भी बंधन नहीं होना-चाहिए। ऐसा बिना ब्रेक की गाड़ी की तरह का जो पक्ष है सो उच्छृंखल है। और प्राचीन वैदिक सर्वोत्कृष्ट विषय जो श्रुति-स्मृति-पुराणों की संगति युक्त है, आज चाहे उसे रूढ़ी का स्वरूप हो, या न हो; उन्हें संग्रहीत करना? एवं नवीन विचारों में से भी, ग्रहण करने योग्य कोई बात हो तो उसे भी संग्रहीत करना चाहिए। रूढ़ी तथा उच्छृंखल पक्ष का कूड़ा कचरा निकाल फेंकने एवं तात्विक दृष्टि से तोलनेवाला जो पक्ष है वही सत्य युगीन पक्ष है। यही पक्ष सदा सर्वदा चिरस्थाई रहा है और रहेगा। कुछ ही दिनों में उपरोक्त अलग हुए दोनों पक्षवाले भी इसी सत्य युगीन पक्षमें आजायंगे। अर्थात् सत्य युगीन पक्ष मात्र ही केवल एक रहेगा। बाकी के धीरे धीरे रूढ़ी और उच्छृंखल यह दोनों पक्ष सत्य युगीन पक्ष में विलीन हो जायंगे।

अंतिम निवेदन।

अब संक्षेप में इतना ही कहना बस है कि यह कलि वर्ज्य प्रकरण और इसका महात्म्य तथा इसका बताया भविष्य सब श्रुति स्मृति-बाह्य है। उदाहरण के लिए भागवत के द्वादश स्कंद में ही देखिये कि जहाँ कलियुग का वर्णन किया है, वे तीन अध्याय बोपदेव पण्डित की बनाई हैं। और वे इस द्वादश स्कंद में जोड़ दी गई। इसी प्रकार अन्यान्य विद्वानों ने भी कलि प्रभाव से प्रेरित हो सब ही पुराणों में तत्कालीन प्रक्षेप मिला दिये।

सच तो यह है कि युग महात्म्य ने उन की बुद्धि ही वैसी युगानुसार बनादी थी, जिससे उन को चारों ओर कलि ही कलि सूझने लगा। इस में उन का कोई दोष नहीं। अब दोष तो हमारा है; जो केवल कलियुग मान के लिए निर्मित किये हुए विधानों को, सदा के विधान समझ बैठे हैं।

हमारे इस ग्रंथ को जो बाह्य दृष्टि से देखेगा वह यह सोचने लगेगा, कि यह ग्रंथ घोर कलियुग प्रवृत्तक है या सतयुग प्रवर्तक? क्योंकि विधवा-विवाह समुद्र-यात्रा, नियोग-विधि, स्पृश्यास्पृश्य स्त्रियों का सतीत्व एवं खान-पान आदि किसी भी बात में यह तो दोष ही नहीं बताता। क्या ऐसा ही सतयुग होता है?

किंतु यहां स्थूल सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने का है। बाह्य दृष्टि को त्याग कर जब हम आभ्यंतरिक दृष्टि को फैलाकर देखते हैं, तब पता चलता है कि

स पुस्तक में एक अमौलिक रत्न है— " आत्माका एक मय स्वरूप "
ब आत्मा का परस्पर में एकीकरण होता है तभी यह आत्मा परमआत्मा
विलीन होता है। और परम आत्मा (परमात्मा) में विलीनता विना
ात्मा का एक तादात्म्य हुए नहीं होती। और आत्मा का एक तादात्म्य विना
की करण के नहीं होता। ऐसे ही एकी करण भी विना संघ शक्ति के नहीं
ोता। और संघ शक्ति भी विना भेद भाव मिटे नहीं होती। इसी प्रकार भेद
ाव वैमनस्य को हटाये विना नहीं मिटता। और यह मानसिक वैमनस्य कलि
उत्पन्न हुई निराधार कल्पना को विना नेस्तनाबूत किये नहीं मिटता।
ौर जब हम वेद-कालीन सच्चा पुरातन प्रकाश वैदिक रहस्य में देखते हैं, तब
ही दिखाई पडता है; जो हम हमारे इस ग्रथ में जगह जगह कह आये है।

वेदान्त का यह अटल सिद्धान्त है कि मनुष्य को जिस जिस बात की
कावट होती है फल स्वरूप उसकी प्रवृत्ति उसी और उलटी ज्यादह होती है।
से किसी बालक को मत छूओ कहनेसे वह उलटा छूनेके लिए दुगुनी चौगुनी
ोशिस करता है; और जब उसे कहना ही बंद कर दो तब कुछ ही समय में
सकी निवृत्ति हो जाती है। ठीक ऐसा ही प्रकार धर्म का भी है। पुराने वैदिक
माने में उसी सच्चे तत्व को सामने रखते थे। जिससे किसी बात में रुकावट
ा हो। इसी से सब के लिये ऐसी व्यवस्था रख दी। क्योंकि इस से स्पष्ट
देखता है, कि उनकी गरज ही निवृत्ति से थी न कि प्रवृत्ति से। देखो वैद्यक में
ी रेचकपर रेचक औषधी देना बाह्य दृष्टि से खराब दिखता है; किंतु
ाभ्यंतर में उसका फल सर्वोत्तम है। यही प्रकार धर्म्म ग्लानिका भी है।
लानि पर ग्लानि आना ही उसका अभ्युत्थान है अस्तु।

पाठक गण! धर्म का तत्व अतीव गहन है हमें इस ग्रंथमें प्रसंग वश यह
ी लिखना आवश्यकीय हो गया था, कि हमारे धार्मिक ग्रंथों में कितना प्रक्षेप
किया गया है। यही प्रकार युग के संबंध में भी है। वेद, वेदान्त, ब्राह्मण, आर
ण्यक, उपनिषद, स्मृति, पुराण, धर्म शास्त्र, ज्योतिष आदि सब ही सिद्धान्तों
से छान-बीन कर यही अमौलिक सार निकलता है, कि—

मानवी १२ वर्ष का एक मानवी युग
मानवी १२ हज़ार वर्ष का एक देव युग
मानवी १ कोटी २० लाख वर्ष का एक ब्राह्मदिन—

होता है। इसी क्रम से अब तक के हमारे बताये सिद्धान्तों के अनुसार
संवत् १९८१ शके १८४६ पौष कृष्ण ३० शुक्रवार तारीख २६ डिसें-